वीर संन्यासी श्रद्धानन्द

लेखक—

रामगोपाल विद्यालङ्कार

मुद्रक व प्रकाशक—

गोविन्दराम—वैदिक प्रेस

२०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

द्वितीय बार } दयानन्दाब्द १०६ { मूल्य १=)

११०० } विक्रमाब्द १९८६ { एक रुपया दो आना

सूची-पत्र

विषय सूची

चित्र सूची

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द ।

प्रथम अध्याय

वंश-परिचय ।
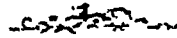
स्वामी श्रद्धानन्दजी उन महापुरुषोंमें अग्रगण्य थे जो संसारमें जन्म ही नेता बननेके लिये लेते हैं। उनके जीवनका अन्त जिस प्रकार एक संघर्षमय परिस्थितिमें हुआ, उसका आरम्भ भी इसी प्रकार संघर्षमय परिस्थितिमें हुआ था! जिस समय स्वामीजीका जन्म हुआ उस समय उनके पिता आजीविकाके लिये घर-बार छोड़कर बाहर लड़ाई पर गये हुए थे।

सम्वत् १९१३ विक्रमी (सन् १८५६) में वह सरकार अंग्रेज की फौजमें भरती होकर उसी वर्ष रिसालदारके पदपर नियत हो गये थे और जिस समय उनको अपने घर छठी सन्तान होनेका समाचार मिला उस समय वह नेपालकी तराईमें मेलाघाटकी लड़ाईमें गये हुए थे। वहीं पर उनके पास आदमी उक्त पुत्रो-

त्पत्तिका समाचार लेकर पहुंचा था। यह उनकी छठी और अन्तिम सन्तान थी और यही बालक आगे चलकर प्रसिद्ध स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी बना।

पुरखोंकी धार्मिक वृत्ति ।

स्वामी श्रद्धानन्दका जीवन लिखनेके पूर्व, उनका वंश परिचय दे देना अच्छा होगा। स्वामी श्रद्धानन्दके पिताका नाम नानकचन्द था। यह जन्म और कर्म दोनोंकी दृष्टिसे क्षत्रिय वर्णके थे। बोल चालकी भाषामें कहें तो इनकी जात विज खत्री थी। रहने वाले यह ग्राम तलवन जिला जालन्धर (पञ्जाब) के थे। तलवनमें इनके वंशमें सबसे प्रथम, स्वामी श्रद्धानन्दके परदादा सुखानन्द आकर बसे थे। सुखानन्दजीकी तलवनमें ननिहाल थी और अपने नानाकी सलाहसे ही वह तलवनमें बस गये थे। वह बहुत सरल धार्मिक और प्रसन्न स्वभावके पुरुष थे। कभी किसी पर क्रोध न करते थे। यदि कभी किसी व्यक्तिके व्यवहारको बहुत बुरा समझते तो केवल इतना ही कहते कि "स्याण्या, क्यों धरमते डिग गिया है" अर्थात्—सयाने, क्यों धर्मसे गिर गया है। सुखानन्दजी अपना बहुतसा समय भगवद्-भजनमें ही लगाया करते थे और इसका प्रभाव उनकी सब सन्तानों पर भी पड़ा था। उनके पांच पुत्र थे—१. लाला कन्हैयालाल, २. लाला हीरानन्द, ३. लाला माणिकचन्द, ४. लाला गुलाबराय और पाँचवें लाला महताब राय। इस वंशका रियासत कपूरथलासे पहिलेसे सम्बन्ध था। लाला कन्हैयालाल उस

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—

स्वामीजीके पिता श्रीनानकचन्दजी
जन्म १८८४ वि० मृत्यु १९४३ वि०

रियासतकी ओरसे महाराजा रणजीत सिंहके दरबारमें वकील थे और उनके छोटे भाई लाला गुलाबराय रानी हीरादेवीके मुखतार-कार थे। जब कपूरथलेकी गद्दीपर महाराजा नौनिहालसिंह बैठे तब उनसे कुछ झगड़ा हो जानेके कारण रानी हीरादेवी अपने दोनों पुत्रों, सरदार विक्रमसिंह और सरदार सुचेतसिंह सहित जालन्धर आ बसीं। उसी समय लाला गुलाबराय भी उन्हींके साथ जालन्धर चले आये। लाला गुलाबराय बड़े भक्त, धार्मिक और स्पष्ट-वक्ता थे। नित्य प्रातःकाल उठकर स्नानादिसे निवृत्त हो उच्च स्वरसे सुखमणि और भगवद्गीताका पाठ किया करते थे। इससे सरदार विक्रमसिंहकी नींद खुल जाती। तङ्ग आकर एक दिन विक्रम सिंहने उनसे कहा कि लालाजी क्या आप ईश्वरका नाम मनमें नहीं ले सकते। लाला गुलाबरायने जवाब दिया कि मेरे मनमें तो सदा ही ईश्वर बसते हैं परन्तु जो मूर्ख पवित्र ब्राह्म-मुहूर्तमें भी सोये रहते हैं उन्हें सचेत करनेके लिये उच्च स्वरसे पाठ करता हूं। इन्हीं दृढ़ ईश्वर भक्त पुरुषके घरमें स्वामी श्रद्धानन्दके पिता लाला नानकचन्दका सन् १८२७ ई०में जन्म हुआ था। लाला नानकचन्द अपने छ भाइयोंमें सबसे बड़े थे। इन्होंने बचपनमें ही अपने पितासे शिव पूजा सीख ली थी और उसी समयसे पूजाका सामान लेकर नित्य पूजाका नियम कर लिया था। इस नियमको उन्होंने अपने अन्तकाल तक निभाया।

जीविकाकी खोज।

लाला नानकचन्द जब १८ वर्षके थे तभीसे उन्होंने स्वयं

स्वतन्त्र जीविका करनेका निश्चय कर लिया था। उस समय तक उनका शिक्षण उस समयकी रीतिके अनुसार साधारण उर्दू का ही हुआ था। जब वह जीविकाकी खोजमें अपने ग्राम तलवन-से बाहर निकले तब उनके ताया लाला कन्हैयालालजी कपूर्थला के शहरके कोतवाल थे। लाहौर पर अंग्रेजोंका कब्जा हो जानेके कारण महाराजा रणजीत सिंहके दरबारसे वह उस समय अलग हो चुके थे। लाला नानकचन्द नौकरीकी तलाशमें सीधे उन्हींके पास पहुंचे। लाला कन्हैयालालजी अपने भतीजेको बिना किसी पदपर नियुक्त किये भी उनसे सरकारी काम लेने लगे। रियासत के कठोर कानूनी पाबन्दीसे बड़ी कारबारमें उन्हें ऐसा करनेसे रोकने वाला कोई न था। परन्तु लाला नानकचन्दजीके लिये पुलिसका काम सीखनेको यह एक अच्छा ट्रेनिङ्ग स्कूल साबित हुआ और इसी मुफ्त ट्रेनिङ्गकी बदौलत उनको आगे जाकर रियासत कपूर्थलाको पुलिसमें नौकरी भी मिली।

एक बार महारानीके यहां कोई बड़ी चोरी हो गई। शहर कोतवाल कन्हैयालालजीने इसकी जांचका भार अपने भतीजेको सौंपा। लाला नानकचन्दजीका सन्देह महारानीके ही एक विश्वा-सपात्र नौकर पर गया और उसको उन्होंने उलटा टंगवाकर पिट-वाया। अपने नौकर पर इस तरह सख्ती होते देख कर पहिले तो महारानी नाराज हुई, परन्तु जब अन्तमें उस नौकरके ही पाससे चोरीका माल बरामद हुआ तो महारानीने ही लाला नानकचन्द की महाराजसे शिफारिश कर दी जिससे वह थानेदार बना दिये

गये। परन्तु वह इस पदपर देरतक नहीं रह सके। अपने सच्चे और स्पष्टवादी स्वभावके कारण उनकी वज़ीर दानिशमन्दसे कुछ कहा सुनी हो गयी और नौकरीसे इस्तीफा देकर वह घर चले आये। फिर उन्होंने कुछ समय तक सियालकोटमें ठगी डकेती के महकमेमें खजानचीका काम किया और वहाँ भी अपने ऊपरके अंग्रेज अफसरसे न निभनेके कारण काम छोड़ दिया। वहांसे आकर अमृतसरकी तहसीलमें मुहासिब बने। उन दिनों अमृतसरकी पुलिस रिशवतखोरीके लिये बड़ी बदनाम थी। तहसीलदार शोभाराम लंगड़ा लोगोसे जोर जबरदस्तीसे रिशवत लिया करता था। आखिर भण्डा फूटा और जांचके बाद तहसीलके सब नौकरोंको अलग कर दिया गया। परन्तु लाला नानकचन्द किसीसे मांगकर रिशवत नहीं लेते थे। जो कोई खुशीसे दे देता तो ले लेते और अगर किसीका काम न हो सकता तो उसकी नज़र वापिस भी कर देते। इस कारण इनके खिलाफ किसीने कुछ शिकायत नहीं की और यह नौकरी पर वैसे ही बहाल रहे। पीछे जी न लगने पर स्वयं ही इस्तीफा दे दिया और लाहौर जाकर चौकीदारोंके बख़शी बन गये।

भाग्य-परीक्षा।

लाहौर जानेसे पहिले लाला नानकचन्द अपने सब परिवारसे अलग हो गये थे इस कारण उनको अपने गृहस्थीका सब खर्च आप ही जुटाना पड़ता था। उसी समय इन्हें अपनी बड़ी लड़कीके विवाहकी चिंता हुई। तलवन ग्राम उन दिनों तमाम जाल-

न्घर दुआवामें अपनी व्याह शादियोंकी धूमधाम और फजूल खर्चियोंके लिये मशहूर था। लाला नानकचन्दकी आमदनी तो मामूली थी और लड़कीका व्याह घरकी पुरानी शानो-शौकतको कायम रखते हुए करना चाहते थे। ऐसा न करनेसे उन्हें नाक कट जानेका डर था। इसलिये वह कहींसे आय बढ़ानेकी फिक्र में थे। उनके सौभाग्यसे एक अनुकूल अवसर भी आन उपस्थित हुआ।

उन्हीं दिनों (सन् १८५६ में) संयुक्त प्रांतके कानपुर मेरठ आदि और देहली तथा आसपासके स्थानोंमें अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध आरम्भ हो गया। भारतीय सेनाओंने अंग्रेजी शासनके विरुद्ध क्रांति कर दी। पंजावी सिपाहियोंने इस क्रांतिमें अंग्रेजोंका साथ दिया। एक सिख सवारोंका दस्ता अंग्रेजोंकी मददके लिये हिसारकी तरफ जा रहा था। लाला नानकचन्द भी एक टट्टू मोल ले उस पर अपना जरूरी सामान लाद अपनी भाग्य-परीक्षाके लिये उसी सिख सवारोंके दस्तेके साथ हो लिये। जब यह दस्ता हिसार पहुंचा तो स्वातंत्र्य युद्धके सिपाही सलाह मशविरेके लिये शहरकी दीवारसे अलग एक मैदानमें जमा थे। सिख सवारोंने इसे अच्छा मौका समझा और विना किसी रुकावटके शहरमें दाखिल हो गये। लाला नानकचन्द भी साथ ही शहरमें गये और भीतर जाकर उनको बसेरे के लिये जगह तलाश करनेकी सूझी। इसी फिक्रमें अपने काले टट्टू पर सवार शहरमें घूम रहे थे कि सामनेसे एक अंग्रेज अफसर

घवराया हुआ आया जिसे नज़दीक आने पर लालाजीने सलाम किया। अंग्रेज उनको अपनी ही फौजका आदमी समझकर बोला कि फौज तो वहुत आयी है परन्तु उनके खानपानका इन्तज़ाम अभी नहीं हुआ, उसका वन्दोवस्त करना चाहिये। लाला नानकचन्द इसी गश्तमें शहरके एक चौधरीके यहां खूब पकवान आदि वनते हुए देख आये थे। साहेवका हुक्म पाकर तुरन्त उस चौधरीके पास पहुंचे और उसे कहा कि आज लड़ाईके कारण तेरे श्राद्धमें ब्राह्मण तो कोई खाने आवेगा नहीं, अंग्रेजी फौजको खाना खिला कर उनकी नजरमें नेकनामी क्यों न हासिल की जाय? चौधरी राजी हो गया और उसी वक्त कई मजूरोंके सिरपर लदवाकर पकवान अंग्रेजी फौजके डेरे पर पहुंचाये गये। साहव वहादुर फौजके लिये वना वनाया खाना पाकर वड़ा खुश हुआ और लाला नानकचन्दको वुलाकर पूछा—"क्या तनख्वाह मिलती है?" उन्होंने जवाव दिया, ",कुछ नहीं, आज ही रोजगारकी तलाशमें हिसार पहुंचा हूं, अभी तो रहनेका भी ठिकाना नहीं।" साहवने उसी समय इनको फौजके पड़ावमें रहनेकी जगह दे दी और नाम नोटवुकमें दर्ज कर लिया। शामको हमलेकी तैयारी होने लगी। सवार केवल तीन सौ थे और क्रांतिकारी फौज वड़ी तादादमें शहरके वाहर जमा थी परन्तु अंग्रेज अफसरने घुड़सवारोंको जमा करके शहरकी फसीलके नीचे जो चारों तरफ तेजीसे घेरा दिया तो वाहरकी सेनाने समझा कि घुड़सवार वहुतसे हैं और वे हमला होते ही घवड़ा कर भाग खड़े हुए। शहर पर अंग्रेजों

का पूरा कब्जा हो गया और लाला नानकचन्दको शहर कोतवाल बनाया गया। इस नौकरी पर रहते हुए इन्होंने रिशवतसे खूब धन कमाया और न केवल लड़कीके विवाहकी चिन्तासे ही छुट्टी पाई बल्कि कई घोड़े खरीद कर २५ सम्बन्धियोंको रिसालेके अफसर बनवा दिया और बहुतसे जाटोंको घुड़सवारीके लिये साथ लेकर मेरठ पहुंच गये। वहाँसे रिसालदार बनकर सहारनपुर गये, जहां कि तीन महीने लगाकर सब लोगोंसे शस्त्र छीननेका काम किया और वहांसे इनको नेपालकी तराईमें मेलाघाटकी लड़ाईपर भेजा गया। मेलाघाटकी लड़ाई समाप्त होने पर इनके रिसालेको बरेली (बांसबरेली) पहुंचनेकी आज्ञा हुई। परन्तु उस समय स्वातन्त्र्य-युद्धकी आग शांत हो चुकी थी, इसलिये फौजी पलीसके रिसालेको तोड़ दिया गया तथा जिन लोगोंने सरकारकी विशेष नमक-हलाली की थी उनको सिविल पुलिसमें नौकरियां दी गयीं। लाला नानकचन्दके सामने १२०० बीघा जमीनका इनाम और पुलिस इन्सपेक्टरकी नौकरी ये दो विकल्प रखे गये, जिनमेंसे इन्होंने पिछला स्वीकार किया और बरेलीमें ही पुलिस लाइन्सके इन्सपेक्टर बन गये।

दूसरा अध्याय ।

बचपन और शिक्षाका आरम्भ ।

'होनहार बिरवानके, होत चिकने चिकने पात ।"

ऊपर लिखा जा चुका है कि लाला नानकचन्दजीको मेला-घाट में अपने घर छठी सन्तान उत्पन्न होनेका समाचार मिला था । इस बालकका जन्म फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी संवत् १९१३ विक्रमीके दिन हुआ था और नाम इसका मुन्शीराम रखा गया था । जब मुन्शीरामके पिता बरेलीमें पुलीस लाइन्सके इन्सपेक्टर बन गये तब वह अपनी माता और बड़े भाइयोंके सहित बरेलीमें अपने पिताके पास आ गया । और इस कारण बालक मुन्शी-रामका बचपन बरेली और उस प्रान्तके उन अन्य जिलोंमें व्यतीत हुआ जिनमें कि उसके पिताको नौकरीके सम्बन्धमें जाना पड़ा । बरेली पहुंचने पर मुन्शीरामकी अवस्था लगभग तीन वर्षकी थी और लाला नानकचन्दजी बरेलीमें तीन वर्ष तक पुलीस लाइन्समें इन्सपेक्टर रहे, इस कारण अपना ग्राम तलवन छोड़नेके बाद मुन्शी-रामके खेल कूदके प्रथम तीन वर्ष बरेलीमें ही व्यतीत हुए । बरे-लीमें लाला नानकचन्दजीने अपने बड़े दो पुत्रोंको पढ़ानेके लिये एक मौलवी साहबको नियत किया था । बालक मुन्शीराम

अपने बड़े भाइयोंके पाठको सुन सुन कर बहुतसी बातें याद कर लिया करता और अपने खेल कूदमें उन्हें दोहराता रहता। कहना चाहें तो इसीको मुन्सीरामके शिक्षणका आरम्भ कह सकते हैं। परन्तु इस खेल कूदके शिक्षणसे भी हमारे चरित्र-नायककी बुद्धि की प्रखरताका परिचय मिलने लग गया था। जिस पाठको मुन्शो-रामके बड़े भाई यत्न करके भी याद नहीं कर पाते थे, मुंशीराम उसे बिना यत्नके सुना दिया करता था।

परिस्थितिका प्रभाव।

बरेलीसे एक दरजा तरक्की पाकर लाला नानकचन्दकी बदली सम्वत् १९१९में बदायूंको हो गयी। वहां इनको कोर्ट-इन्सपेक्टरका काम करना पड़ता था। बालक मुंशीराम भी उनके साथ अदा-लत जाता और जब लाला नानकचन्द अदालतके काममें लगे होते तब मुंशीराम इधर उधर घूमता फिरता। बरेलीमें ही पुलिस लाइन्समें रहते हुए उसने फौजी सलाम करना सीख लिया था। बदायूंकी अदालतके अनेक कर्मचारी बालकसे फौजी सलाम कर-वाकर उसे कागज और कलम इनाममें देते। इस प्रकार इनाम में मिले हुए कागजों और कलमोंने भी बालक मुन्शीरामके स्वाभाविक स्वतन्त्र शिक्षणकी प्रगतिमें सहायता दी। वह घर पहुंच कर कोई पुस्तक ले उसके अक्षरोंकी कागज पर नकल करनेका यत्न करता रहता। एक बार लाला नानाकचन्दजी ने अपने छोटे पुत्रके इस खेलको देखा तो उनको यह जान बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुन्शीराम फारसी लिपिके बहुतसे अक्षर लिखना

सीख गया है। उन्होंने पास ही देखा तो "करीमा" और "खालिकवारी" नामकी फारसी पुस्तकोंको पड़ा पाया और तब उनको मालूम हुआ कि बालकों पर परिस्थितिका कैसा प्रबल प्रभाव हुआ करता है।

बनारसमें प्रथम वार।

लगभग सम्वत् १९२२ में लाला नानकचन्दजीकी फिर एक दर्जा तरक्की हुई और उनको विजिटिंग पोलीस इन्सपेक्टर बनाकर बनारस भेजा गया। बनारसमें उनका काम ही इस प्रकारका था कि उनको अपना समय अधिकतर घरसे बाहर दौरेमें बिताना पड़ता था। परन्तु परिवारको उन्होंने एक मकान किराये पर लेकर उसमें ही रख दिया था। मकान बड़ा था, इस कारण गृहपत्नी (बालक मुन्शीरामकी माता) ने एक और पञ्जाबी परिवारको बिना भाड़ा लिये ही अपने साथ उसी मकानमें बसा लिया था। इस परिवारको बनारसी हिन्दुओंके छुआ छूतका भूत पूरी तरह चिपट चुका था और इस स्पर्श-सम्बन्धी परम पवित्रताका शिकार प्रायः लाला नानकचन्दजीके दोनों पुत्रोंको होना पड़ता था। प्रातःकाल शौचको जाओ तो ठण्ठ होने पर भी सब कपड़े उतारकर जाओ चलते फिरते मोरीपर पांव पड़ जाय तो स्नान करके वस्त्र बदलो, किसी घड़ेकी पुरानी ठीकरी पर पांव पड़ जाय तो स्नान करो इत्यादि प्रकारकी धार्मिक व्यवस्थायें प्रायः इन दोनों बालकोंके लिये निकलती रहा करती थीं। मुन्शीरामजीकी माताजीने आखिर शुद्धिकी इन व्यवस्थाओंसे

तङ्ग आकर अपनी पड़ोसिन देवीको विदा कर दिया। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बरेली और बदायूंकी परिस्थितिने जहां मुन्शीरामकी किताबी तालिमका आरम्भ करा दिया था वहां बनारसकी परिस्थितिने उसके मनकी उपजाऊ भूमिमें कपोल-कल्पित छुआ छूतके विरुद्ध एक भावका बीज बो दिया। बनारसमें ही उक्त प्रकारकी व्यावहारिक शिक्षाके अतिरिक्त मुन्शी रामकी पुस्तक-शिक्षाका गुरुमुखसे आरम्भ हुआ। सम्वत् १६२३ में मुन्शीरामका यज्ञोपवीत कराया गया। यज्ञोपवीतके विषयमें भी एक बात ऐसी हुई जिसका मुंशीराम जैसे बुद्धिमान बालकके मनपर विशेष प्रभाव पड़ा। यज्ञोपवीत धारण करनेका जो वास्तविक अभिप्राय है उसपर आचरण तो अब कई सदियोंसे हिन्दू समाजमें से उठ चुका है। परन्तु अब भी हिन्दू संस्कारका नाटक अवश्य पूरा कर लेते हैं। यज्ञोपवीत धारण करना चिह्न तो इस बातका था कि बालक उस समय माता पितासे विदा होकर विद्याध्ययनके लिये गुरुके चरणोंमें जाता था; पर बाल-विवाह आदिकी कुरीतियाँ प्रचलित हो जाने और गुरुकुल-प्रणा-लीके उठ जानेसे उसकी नकल ही बाकी रह गयी। आजकल बालकसे यज्ञोपवीत धारण कराके हाथमें दण्ड और बगलमें पु-स्तक आदि देकर गुरुके पास जानेका नाटक कराया जाता है और उससे कहलाया जाता है कि "मैं काशीको विद्याध्ययनार्थ जाता हूं।" तब उसकी बहिन आकर झट उसको रोक लेती है और कहती है कि नहीं भाई तुमको यहीं पढ़ा लेंगे। यही

नाटक मुंशीरामके यज्ञोपवीत संस्कारमें भी पूरा पूरा खेला गया उस समय बनारसमें उनकी दोनों वहिनोंमेंसे कोई भी मौजूद न थी, इस कारण एक पड़ोसी सज्जनकी कन्याको ही कल्पित वहन बनाया गया और क्योंकि संस्कार काशीमें हो रहा था इसलिये बालकके मुखसे कहलाया गया कि मैं काश्मीरको पढ़नेके लिये जाता हूं। इस घटनाने मुन्शीरामके हृदयमें हिन्दू संस्कारोंके इस प्रकार नाटक रचनेके विरुद्ध भाव उत्पन्न किये। अस्तु, इसी वर्ष यज्ञोपवीतके बाद मुंशीराम और उनके बड़े भाई, दोनोंको हिन्दी पढ़ानेके लिये एक पण्डित नियत किया गया और थोड़े दिन बाद उक्त पण्डितको हटाकर दोनों बालकोंको हिन्दी पाठशालामें भरती करा दिया गया। बनारसमें ही इस शिक्षाके अतिरिक्त इन दोनों भाइयोंने, बालकोंके नकल करनेके स्वाभाविक गुणके द्वारा, एक शिक्षा और प्राप्त की। अपने पिताजीको नित्य शिव-पूजा करते देखकर दोनों भाई एक पुराने टूटे फूटे मन्दिरमेंसे एक शिवलिङ्ग उठा लाये और उसकी नियमसे पूजा आरम्भ कर दी। इस पूजाने और पाठशालासे वापिस आकर नित्य तुलसीरामयणके पाठने मुन्शीरामकी मनोवृत्तिका झुकाव धर्मकी ओर करनेमें अवश्य ही बहुत सहायता दी होगी। बनारस छोड़ कर आगे बढ़नेसे पूर्व बनारसके विषयमें ही एक बात और बतला देना आवश्यक होगा। इन्हीं दिनों काशीमें प्रसिद्ध हुआ कि शास्त्रोंका बड़ा पण्डित एक नास्तिक जादूगर आया है। उसके दोनों ओर दिनमें भी मशालें जलती रहती हैं। जो कोई उसके

पास जाता है उसके प्रभावसे उसका चेला बन जाता है। यह खबर सुनकर मुन्शीरामकी माता अपने पुत्रोंको नास्तिक जादूगर के चङ्गुलसे बचानेके लिये घरसे बाहिर नहीं जाने देती थीं। पीछेसे मालूम हुआ कि यह नास्तिक जादूगर और कोई नहीं, स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती थे, जिनका दृढ़ अनुयायी अपने भावी जीवनमें उनका पुत्र बना।

रामायणका प्रभाव।

बनारसमें डेढ़ वर्ष बितानेके अनन्तर लाला नानकचन्दजीको बांदा जानेकी आज्ञा हुई। बांदामें स्कूलकी शिक्षाकी भाषा बदल कर उर्दू फारसी हो गयी, परन्तु एक और परिस्थिति ऐसी उत्पन्न हो गयी जिससे हिन्दीका अभ्यास और हिन्दू धर्मके प्रति दृढ़ भावनाओंकी हृदय पर छाप बराबर जारी रही। बांदामें एक बार मुन्शीराम बीमार हुए। कई हकीमों डाक्टरों आदिकी दवासे फायदा न हुआ तब लोगोंके कहने पर बुद्धू भगत नामके एक कौड़ियोंके व्यापारीको औषधोपचारके लिये बुलाया गया। इसकी औषधिसे बहुत जल्द लाभ हुआ। बुद्धू भगतसे परिचय बढ़ने पर मालूम हुआ कि वह जातके बनिये हैं और पहले बड़े भारी मुकद्दमेबाज़ थे। परन्तु एक बार रामायणकी कथा सुनकर मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि सब चालबाजियां और लड़ाइयां छोड़कर कौड़ियोंकी दूकान कर ली तथा सबकी मुफ्त चिकित्सा करने लगे। यह रातको नित्य झांझ मृदङ्ग आदिके साथ रामायणकी कथा किया करते और कथामें ऊंच नीचके बिना किसी

विचारके सबको एक ही आसन पर बिठाया करते थे। लाला नानकचन्द भी दिन भर अपना काम करके रातको सब कर्म-चारियों और मुलज़िमोंके साथ इस कथामें शामिल हुआ करते थे। इस सत्संगका लालाजीके परिवार और मुलज़िमों आदि पर बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ता था। उनके कई अपराधियोंने केवल बुद्धू भगतकी रामायणकी कथा सुनकर अपने अपराधोंको स्वीकार किया था। मुन्शीराम पर भी इस कथाका इतना प्रभाव पड़ा कि वह नियमसे प्रति रविवारको तुलसी रामायणका पाठ करता और प्रति शनिवारको हनुमान चालीसाका एक टांगके बल खड़े रहकर सौ बार पाठ करके तब भोजन करता। स्वामी श्रद्धा-नन्दजीने "कल्याणमार्गका पथिक" नामक अपने आत्मचरितमें लिखा है कि "मुझपर इस सत्संगका प्रभाव अबतक वैसा ही है।" बांदामें रहते हुए ही लाला नानकचन्दजी अपने सब परिवार सहित एक बार चित्रकुट नामक प्रसिद्ध तीर्थके दर्शनों को गये थे। वहांकी एक घटना इस प्रसङ्गमें विशेश रूपसे उल्लेखनीय है। चित्रकूटमें एक छोटीसी चट्टानका नाम लछमन जतीकी पहाड़ी है। इसके विपयमें प्रसिद्ध है कि लक्ष्मणजीने बारह वर्ष वहां पर तप किया था और तप करते हुए अपने शस्त्र उस चट्टान पर रख दिये थे, जिसके कारण अभी तक उस चट्टान पर धनुप बाणका निशान बना हुआ है। वहांके पण्डे बतलाते हैं कि यह निशान जमीनके नीचे तक चला गया है। परन्तु वहांके एक युरोपियन असिस्टेएट सुपरिण्टेण्डेण्टको इस बातपर

विश्वास नहीं हुआ और उसने पण्डोंसे यह शर्त बदी की कि यदि खुदाई करने पर यह निशान बीस फीट तक इसी प्रकार निकलता जायगा तो मैं ५०० पांच सौ रुपया पण्डोंको इनाम दूंगा। पण्डोंने यह शर्त मंजूर कर ली और खुदाई करने पर धनुष बाणका निशान केवल ६ फुट तक निकला, आगे मामूली रेत निकलने लगी। इस ६ फोटके विषयमें भी देखा गया कि मिट्टी विशेष रूपसे सतह पर सतह जमाई हुई थी। अन्तमें उक्त युरोपियनने पण्डोंको शर्मिन्दा करके उन्हें हरजानेके तौरपर ५० पचास रुपया दे दिया। इस घटनाको सुनकर भी यद्यपि लाला नानकचन्दजीकी श्रद्धा उसी प्रकार रही, परन्तु मुन्शीरामके मन में सन्देहने घर कर लिया।

बांदासे बदल कर लाला नानकचन्दजी मिर्जापुर गये। वहां मुन्शीरामने स्कूलमें अरबी पढ़ना आरम्भ किया। परन्तु मिर्जापुरमें केवल डेढ़ वर्ष रहनेके कारण और उतने समयमें भी विंध्यवासिनी देवीकी मेलों आदिमें अपने पिताजी के साथ जाते रहनेके कारण मुन्शीराम की पढ़ाई का सिलसिला नियम-पूर्वक नहीं चला। इस प्रकार मेलों आदि में जाते रहनेके कारण यद्यपि स्कूलकी किताबी पढ़ाईमें विघ्न पड़ता था परन्तु स्कूलकी पढ़ाईसे बढ़कर अनुभवका पाठ बहुत बड़ा मिलता था और यही विविध प्रकारके अनुभवों का पाठ था, जिसने वस्तुतः मुन्शीरामको सर्व-मान्य स्वामी श्रद्धानन्द बनाया।

मिर्जापुरके नजदीक विन्ध्याचलकी पहाड़ी पर प्रतिवर्ष चैत्रके

नवरात्रोंमें विन्ध्यवासिनी देवीका बड़ा मेला लगता है। मुन्शी-रामको भी अपने पिताजीके साथ उस मेलेमें जानेका अवसर हुआ। वहांपर उन्होंने थानेकी छतपर चढ़कर एक वाममार्गी राजाके डेरोंमें नग्न स्त्रीका पूजा होते हुए देखी, जिससे उनको सभी धनियांसे बहुत घृणा हो गयी और यह घृणा बहुत दिनों तक क़ायम भी रही। एक और मनोरञ्जक दृश्य जो हिन्दू ब्राह्मणों के धर्माचरण के विषय में यहां दिखाई दिया उसे उन्हीं के शब्दोंमें सुनाना ठीक होगा। "कल्याण मार्गका पथिक' में लिखा है—"उसी स्थानमें पिताजीके अरदली सारजण्ट जोखू मिसरकी लीला देखी। देवीपर जो बकरे चढ़ते उनमेंसे सातकी सिरियें मिसरजी की पेट पूजाके लिये भेंटमें आतीं। सात बकरोंके सिर मुफ्त, कन्डों (उपलों) की आग मुफ्त, मिट्टीकी हण्डिया मुफ्त, नमक व हल्दी भी मुफ्त, हां पावभर चून (आटा) मोल लेना पड़ता। जोखू मिसर जितने लम्बे उतने ही चौड़े थे। सातों सिरियोंका सफाया करके शेष थाली पाव भर चूनकी लिट्टीसे पोंछ और कुल्ला करके पेटकी तुंवड़ी पर हाथ फेर दिया करते थे। एक दिन हण्डिया पकते पकते पिता जीका नौकर चिमटेसे चिलममें आग धर लाया। मिसिरजी आग बबूला हो गये और जब कारण पूछा गया तो बोले—'अरे सरकार, हम आपन धरम कबहूं नहीं छाड़ा, अरे! झूठ बुआला, जुआ खेला, गांजाका दम लगावा, दारु चढ़ावा, रिसवत लिहा, चोरी दगाबाजी किहा, कौन फ़न फरेब बाटे जौन हम नाहीं किहा,

मुल सरकार आपन धरम नाहिं छाड़ा। इसी प्रकारकी घटनायें थीं जो कि मुन्शीरामके स्वच्छ तथा युक्ति पर चलने वाले मनकी मनोरञ्जनके सिवाय विचारमें भी प्रवृत्त करती थीं।

संवत् १९२८ विक्रमीके आरम्भमें लाला नानकचन्दजीकी और भी तरक्की हुई और उन्हें शहर कोतवाल बनाकर बनारस भेजा गया। जिन दिनों वह बनारस पहुंचे उन दिनों बरसातकी मौसमकी समाप्तिका समय था। इस समय हिन्दुओंके बहुतसे त्यौहार एक साथ आकर पड़ते हैं। इसलिये बनारसमें भी तब जिधर देखो उधर आनन्द और उत्सवकी बहार थी। इसपर फिर नये कोतवालकी अगवानीके लिये रईसों और शहरके मालदार बाशिन्दोंकी भेंट पूजा और खुशामदकी धूम। मुन्शीराम और उनके भाइयोंके दो एक महीने हाथियों और बजारोंकी सैर तमाशों और रामलीलाओंको बहार तथा फलों और पकवानोंके भोजन आदिकी मौज बहारमें हो बीते। इसके बाद लाला नानकचन्दजीका ध्यान अपने पुत्रोंकी शिक्षाकी ओर गया। एक कायस्थ मुन्शी घरपर ही फारसी पढ़ानेके लिये रखे गये। यह मुन्शीजी बहुत दिनोंसे बेरोज़गार थे, इसलिये बहुत फूंक फूंककर क़दम रखते थे कि कोतवाल साहबके लड़के किसी भी बातसे नाराज़ न होने पावें, नहीं तो कहीं इस रोजीसे भी हाथ धोना पड़े। नतीजा यह हुआ कि लाला नानकचन्दजीने जब एक बार मुन्शीजीके शिष्योंकी परीक्षा ली तब उनको बिल्कुल कोरा पाया और मुंशीजीको एक घण्टेके भीतर ही हिसाब करके विदा कर दिया गया। मुंशीजीके पीछे "करण घण्टा स्कूल"के मास्टर देवकीनन्दनजीकी बारी आयी। इन्होंने थोड़े दिन घर पर पढ़ाकर दोनों बालकोंको

अपने स्कूलमें दाखिल करके वहाँ अंग्रेजीका पाठ आरम्भ करा दिया। परन्तु इस स्कूलमें भी होली आदिके त्यौहारों पर पूरी छुट्टी मनानेके कारण पढ़ाई सर्वथा नियमपूर्वक नहीं चली। हां, इतना अवश्य हुआ कि स्कूलकी पढ़ाईसे मुंशीरामका जीवन नियमित हो गया। इन दिनों वह नित्य प्रातःकाल उठता और गङ्गाके किनारे जाकर वहांके एक अखाड़ेमें दण्ड बैठक कुस्ती आदि व्यायाम करता और फिर विश्वनाथ आदि सब देवी देवताओंके दर्शन करता हुआ घर पर वापिस आकर कलेवा करता। स्कूल जानेमें चाहे विघ्न हो जाय परन्तु इस नियममें प्रायः किसी प्रकारकी रुकावट नहीं होती थी।

संवत् १६२६ के मध्यमें फिर लाला नानकचन्दजीकी बलिया को बदली हो गयी। बलिया यद्यपि शहर बड़ा नहीं है तथापि वहां के स्कूलके मुख्याध्यापक मुखर्जी योग्य शिक्षक थे। उन्होने मुंशीरामको अपने स्कूलमें दाखिल कर लिया और इसी स्कूलमें अपनी अंग्रेजीकी योग्यताके कारण उसने दो बार पारितोषिक भी पाया। इस शिक्षाके अतिरिक्त बलियामें ही गदका, कुस्ती और अन्य शारीरिक व्यायामोंके सीखनेमें भी बहुत सा समय लगने लगा। बलियामें पटना सिख संगतके शिष्य सिख क्षत्रियों की बस्ती बड़ी तादादमें थी। इन्हींमेंसे श्यामसिंह और अजितसिंह नामके दो सिख मुंशीरामके शारीरिक व्यायामके उस्ताद बने। परन्तु लाला नानकचंदजी अपने सबसे छोटे पुत्रकी तीव्र बुद्धि देखकर उसे उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे, इस कारण उन्होंने उसे किसी अच्छे स्कूलमें दाखिल करके नियम-पूर्वक शिक्षा दिलानेका विचार किया।

तीसरा अध्याय
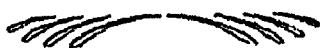
स्वतन्त्र जीवनका आरम्भ ।

"संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति ॥"

अभी तक मुंशीरामका जीवन नाटक अपने पिताजीके कार्य-क्षेत्रके रङ्गमञ्च पर ही खेला जा रहा था, पर अब उसका स्थान बदल कर स्वतंत्र जीवनका आरम्भ होता है। संवत् १९३० के पौष मासमें लाला नानकचन्दजीने उसको उच्च शिक्षाकी प्राप्तिके लिये बनारसके क्वीन्स कालेजके हाई स्कूलमें भरती करवाया। क्वीन्स कालेज उन दिनों संयुक्त प्रांत भरमें पहले दर्जेका कालिज था। इसकी इमारत, शिक्षक-विभाग और प्रबन्ध आदि सभी बहुत उत्तम थे। इसमें रहकर एक वर्ष तक मुंशीरामकी पढ़ाई बहुत नियमपूर्वक चली। पढ़ाईके अतिरिक्त रहन सहनका नियम भी दृढ़ हो गया था। वह प्रातःकालही ब्राह्म मुहूर्तमें चार बजे उठ कर गङ्गाके किनारे स्नानके लिये जाता, वहीं व्यायाम करता, वापिसीके समय देव दर्शन और लौटकर कलेवा करके दो ढाई घण्टा स्वाध्याय करता, फिर भोजन करके स्कूल जाता और स्कूल से लौटकर शौचादिसे निवृत्त हो सायंकालको भ्रमणके लिये जाता तथा रात्रिके भोजनसे पूर्व फिर देव-दर्शन करता यह एक नैत्यिक नियम हो गया था जो कि एक वर्ष तक बराबर जारी रहा। नित्य व्यायाम करनेके कारण स्वभावतया उत्तम डौल डौल वाला

मुंशीरामका शरीर खूब मज़बूत बन गया था। उसपर फिर बनारसी गुण्डों की नकलमें बाहर जाते समय कमरमें छूरी बांधने के कारण मन और हृदय और भी निर्भीक बन गये थे। इन्हीं गुणों के कारण विद्यार्थी मुंशीरामने कई बार अपने कई सहपाठियों की बनारसके दुष्ट पुरुषों से रक्षा की। इन्हीं दिनों विद्यार्थी मुंशीरामको अनुभव हुआ कि बनारसमें अनेक लोग अनेक प्रकार के पापाचार करनेके लिये ही निवास करते हैं। इसी प्रकारके एक वेदपाठी पण्डित थे, जो कि मुंशीरामके एक सहपाठी विद्यार्थीके पीछे पड़े हुए थे। इस विद्यार्थीको पकड़नेके लिये इस वेदपाठी पापीने कई गुण्डों को लगाया था परन्तु मुंशीरामने अपने घरमें रखकर तथा अपने साथ इक्केमें स्कूल ले जाकर इस निर्बल विद्यार्थीकी रक्षा की। इस वेदपाठी पण्डितकी यह लीला देखकर मुंशीरामके मनमें संस्कृतके विद्वानों के प्रति घृणाके भाव अभीसे उठने लगे थे।

पहली गिरावट।

इन दिनों स्वतन्त्र जीवन आरम्भ हो जानेके कारण जहां मुंशीरामका स्वतन्त्र अनुभव बढ़ रहा था वहां वह लोगोंके बहकानेमें आकर कभी कभी किसी किसी गिरावटका शिकार भी होने लगा था। इस प्रकारकी सबसे पहली गिरावट संवत् १९३० की वसन्त पञ्चमीके समय हुई। स्कूलमें वसन्त पञ्चमी की छुट्टी होने पर मुंशीराम बनारससे अपने पिताजीके पास बलियाको चला गया। बलियामें उक्त अवसर पर वहांके सिख

रईसोंने रण्डीका मुजरा करानेका निश्चय किया और उसमें मुंशी-रामको भी निमन्त्रण दिया। जब उसने मुजरेमें हाजिर होनेके लिये पिताजीसे आज्ञा न मिल सकनेकी आपत्ति पेश की तब सिख सरदारोंने बतलाया कि पिताजीके सो जानेपर चुपकेसे उठ कर मुजरेमें शरीक हो जाना। मुन्शीरामने ऐसा ही किया। पहिले तो मनमें खटका होता रहा परन्तु थोड़े समय बाद सब संकोच दूर हो गया।

परीक्षामें प्रथम असफलता।

सम्वत् १९३१ के कार्तिकमें इन्ट्रेन्सकी श्रेणीसे पहली परीक्षा होनेवाली थी। उन दिनों जो विद्यार्थी इस परीक्षाको पासकर लेते थे वही इन्ट्रेंसकी श्रेणीमें बैठ सकते थे मुंशीरामकी परीक्षा की तैयारी पूरी थी, परन्तु एक घटनाने उसको इस परीक्षामें उत्तीर्ण न होने दिया। इन्हीं दिनो उसे अपने पिताजीकी चिट्ठी मिली कि तुम परीक्षा देकर तलवनमें अपनी माताजीके पास चले जाना वहाँ तुम्हारी शादीका शगन पल्ले डाला जायगा। जालन्धर के रईस और तहसीलदार राय शालिग्राम अपनी कन्याका विवाह मुंशीरामसे करनेके लिये तीन वर्षसे अनुरोध कर रहे थे और इस वर्ष शगन पल्ले डालनेकी रस्म होनेवाली थी। अस्तु, जब सब विषयोंकी परीक्षा हो चुकी और फारसीका अन्तिम प्रश्नपत्र विद्यार्थियोंको बांटा गया तब परीक्षाके सुपरिण्टेण्डेण्डने बतलाया कि अंग्रेजीके परचे पहले ही निकल गये थे इस कारण दो दिन बाद उस विषयकी परीक्षा फिर होगी। मुंशीरामने सब प्रश्नोंके उत्तर अच्छी तरह लिखे थे इस कारण पास होनेकी पूरी आशा

थी, परन्तु फिर परीक्षा होनेकी इस सूचनाने सब किया कराया खेल बिगाड़ दिया। पहिले तो दिलमें आया कि दो दिन और ठहर कर दुबारा परीक्षा भी दे डालें, परन्तु माताजीसे जल्दी मिलनेके उतावले पनने बनारसमें अधिक न ठहरने दिया और दुबारा परीक्षाके दिनकी प्रतीक्षा न करके मुंशीराम तलवनके लिये रवाना हो गया।

स्वतन्त्र यात्राके प्रथम अनुभव।

इस यात्रामें दो एक भूलें ऐसी हुईं जो केवल अनुभवके अभावके कारण थीं। पहिले तो सीधा गाज़ियाबादका टिकट लेनेकी जगह मुंशीरामने इलाहाबादको टिकट लिया और इलाहाबादसे गाड़ा बदलकर जब दूसरी गाड़ीमें सवार हुए तो अपने सामानका पूरा ध्यान न रखा जिससे रास्तेमें किसीने दरी उड़ा ली और आगे गाड़ीमें जाड़ा लगने पर शादीके लिये जो रुईदार कोट मिला था उसे पहिनकर गुज़र करना पड़ा। इसी प्रकार का एक अनुभव बनारससे बलियाको जाते हुए भी हो चुका था उस बार मुंशीरामको असावधान देखकर रास्तेमें किसी गिरहकटने जेब काट लिया था और बलिया पहुंचनेमें बड़ी कठिनाई हुई थी। तलवन ग्राम जानेके लिये फिलौरके रेलवे स्टेशन पर उतरना होता था। पिताजीने लिख दिया था कि फिलौर पहुचने पर बाबा पञ्जाबदासकी धर्मशालामें उतरना, वहीं तलवन जानेके लिये सवारी आदि मिल जायगी। परन्तु बाबा पञ्जाबदासका नाम भूल जानेके कारण मुंशीराम कुलीको लिये एक दूसरे ही बुर्ज वाले पञ्जाबी बाबाके यहां पहुंच गये और तकलीफके साथ

तलवन पहुंचे । वहां विवाहका शकुन पल्ले डलवा कर माताजीसे मिलकर और दस पन्द्रह दिन तलवनमें बिताकर, बलियामें पिता जीसे मिलते हुए मुन्शीराम विद्यार्थी बननेके लिये फिर बनारस पहुंचे ।

विद्यार्थी अवस्थाकी आवारागर्दी ।

इस बार उसके बड़े भाईको भी पिताजीने पढ़नेके लिये बनारस भेज दिया था । भाई दो बरस बड़े थे इस कारण अपने छोटे भाईके ही स्कूलमें उससे नीचली जमातमें कैसे पढ़ते । पांच छः दिन बनारसमें इधर उधर मटरगस्त करनेके बाद वह एक दिन खबर लाये कि मैं लण्डन मिशन स्कूलमें दाखिल हो गया हूं । इधर मुन्शीरामने भी फिर उसी श्रेणीमें पढ़ना आरम्भ किया जिसमें एक साल पहिले पढ़ चुके थे । परन्तु पुराने साथी सब आगे बढ़ चुके थे, नये विद्यार्थियोंके साथ पढ़नेमें लज्जा आने लगी पाठ भी सब पुराने ही थे । इस लिये पढ़नेमें दिल न लगा । स्कूलसे गैरहाज़री आरम्भ हो गयी । दो तीन बार गैर-हाजिरीका जुरमाना दिया परन्तु जब जुरमाना भी बहुत बढ़ने लगा तो स्कूलसे नाम ही काट दिया गया । मुन्शीरामने इसकी सूचना तो पिताजी को दी नहीं और कबाड़ियोंकी दुकानोंसे अंग्रेजोंके उपन्यास खरीदकर उनके पाठमें समय बिताना शुरू कर दिया । इधर पिताजीको खबर मिली कि मुन्शी-रामके बड़े भाई बिना किसी स्कूलमें दाखिल हुए अपना समय सैर सपाटेमें ही खराब कर रहे हैं । अतः उनको पढ़ाई समाप्त करके अपनी धर्मपत्नीको विदा करा लानेकी आज्ञा हुई । इधर

मुंशीराम भी छुट्टियां समीप आने पर बहुतसे नये उपन्यासादि खरीद कर अपने पिताजीके पास बलिया चला गया और वहाँ उपन्यास पढनेका शौक यहां तक बढा कि रातको चांदकी रोशनीमें पढ़ाई होने लगी। दीपककी रोशनीमें पढ़ाई इस लिये न की कि गरमी और पतंगे सताते थे। लाला नानकचन्द यही समझते रहे कि बेटा परीक्षाकी तैयारीमें लगा हुआ है।

छुट्टियां समाप्त होने पर मुंशीराम फिर बनारस पहुंचा और, और किसी दूसरे स्कूलमें दाखिल हों या न हों, इसी विचारमें तथा दसहरा और दीवालीके त्योहारोंकी बहार देखनेमें दो तीन मास निकाल दिये। इतनेमें लाला नानकचन्द भी किसी सरकारी कामसे बनारस गये और उन्हें मालूम हुआ कि हमारा पुत्र अभी किसी स्कूलमें दाखिल नहीं हुआ है। तब उन्होंने उसे समझा बुझाकर और क्वींस कालिजके हेडमास्टर मथुराप्रसाद मिश्रसे सिफारिश कराके फिर उसी स्कूलमें दाखिल करा दिया। परन्तु इस बार सारा वर्ष व्यर्थ बिता देनेके कारण परीक्षामें पास होनेकी आशा ही न थी इस कारण परीक्षा नहीं दी और स्कूलसे नाम कटा लिया।

अगले वर्ष नये स्कूलकी खोज हुई और ईसाइयोंके जयनारायण कालिज—उस समयके बनारसियोंके बोलचालमें रेवड़ी तालाब—के स्कूलमें भरती हो गये। इण्ट्रेंसकी पढ़ाईमेंसे एक बार पहिले गुजरा हुआ होनेके कारण रेवड़ी तालाबकी स्कूलमें पढाईकी विशेष कठिनाई नहीं हुई और स्कूलका समय आरम्भसे ही खेल कूदमें बीतने लगा। परन्तु इसी वर्ष मुंशीरामकी माता

तलवनसे बनारस होती हुई बलिया गयीं। जब वह बनारसमें मुन्शीरामसे मिली तब ही बीमार थीं और उनके अधिक जीनेकी आशा कम थी। बलिया पहुंच कर उनका देहांत हो गया। इस एक घटनाके अतिरिक्त इस वर्ष पढ़ाईमें विशेष विघ्न नहीं हुआ और मुन्शीराम द्वितीय विभागमें प्रथम रहकर परीक्षोत्तीर्ण हुआ।

धार्मिक श्रद्धाके लोपका आरम्भ ।

इसी वर्ष एक और घटना हुई जिसका उल्लेख भी इसी प्रसंग में करना उचित होगा। पहले लिखा जा चुका है कि बनारसमें रहते हुए देव-दर्शनादिका मुन्शीरामका नियम हो गया था। एक दिन सायंकाल जब भ्रमणके पश्चात् मुन्शीराम विश्वनाथजीके दर्शन करने पहुंचे तब द्वार पर खड़े सिपाहीने यह कह कर रोक दिया कि भीतर रीवां महाराजकी रानी दर्शन कर रही है। अभी ठहर जाओ। इस घटनासे मुन्शीरामजीके मनपर बहुत चोट लगी और मनमें इस प्रकारके विचार उठने लगे कि क्या यह विश्वनाथ हो सकते हैं जो अपने भक्तोंके साथ ऐसा ऊंच नीचका व्यवहार करते हैं और फिर ऐसी मूर्तियां बनाते हुए तो दिन रात मैं संग-तराशोंको देखता हूं, इस मूर्तिमें क्या विशेषता हो सकती है इत्यादि। फल यह हुआ कि हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजाके विरुद्ध ईसाइयोंकी जो दलीलें सुनी थीं वे ठीक मालूम होने लगीं और दूसरे दिन रेवड़ी तालाब स्कूलके प्रिन्सिपल ल्यूपोल्टसे शंका समाधान किया परन्तु उनकी बातोंसे मनको संतोष न हुआ। एक दिन छावनीकी ओर घूमने जाते हुए एक रोमन केथोलिक पादरीसे भेंट हो गयी। उनकी बातोंका तथा विनयशील व्यव-

हारका मुन्शीरामके मन पर असर हुआ और उनसे सम्पर्क बढ़ते बढते यहां तक नौबत पहुंची कि फाल्गुन संवत् १९३२ के अन्तमें एक दिन मुन्शीराम उक्त रोमन केथोलिक पादरी फादर लीफूंके पास बपतिस्मा लेनेकी तिथि नियत करनेको पहुंचे परन्तु तब पादरी लीफूं कहीं बाहर गये हुए थे। उनके रहनेके कमरेका पर्दा उठाकर देखा तो एक अन्य रोमन केथोलिक पादरी और एक नन (केथोलिक ब्रह्मचारिणी) को ऐसी बुरी अवस्थामें देखा कि ईसाइयोंसे घृणा हो गयी। इन घटनाओंका फल यह हुआ कि मुन्शीरामको किसी भी धर्मपर श्रद्धा न रही और वह अपनेको कबीरजीके निम्न पद्यमें वर्णित लोगोंको श्रेणीमें गिनने लगे।

आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा।
गुरुके सबद प्याला हरि रस पीऊंगा॥
कोई जावे मक्के लौ कोई जावे काशी।
देखो रे लोगों दोहू गल फांसी॥
कोई फेरे माला लौ कोई फेरे तसबी।
देखो रे लोगों ये दोनों ही कसबी॥
यह पूजें मढिया लौ वह पूजें गोरां।
देखो रे लोगो ये लूट लई चोरां॥
कहत कबीर सुनो री लोई।
हम नाहीं किसीके हमरा न कोई॥

इस प्रकार पूजा पाठका सिलसिला तो छूट गया परन्तु स्नान व्यायाम आदिका नियम बराबर चलता ही रहा; और स्नान भी किसी भक्तिसे प्रेरित होकर नहीं होता था परन्तु एक अभ्यास पड़ जानेके कारण।

चौथा अध्याय।

कालेजमें प्रवेश और विवाह।

संवत् १६३२ के अन्तमें मुन्शीराम क्वीन्स कालिजमें प्रविष्ट हुए। इनके रेवड़ी तालाव स्कूलके कई मित्र भी इनके साथ ही कालिजमें दाखिल हुए। इसो मित्र मण्डलोंके साथ कालिजी जीवन बोतने लगा। आजकलके कालिजके विद्यार्थी जिन कई बातोंका अपनो शानके लिये अपनेमें होना आवश्यक समझते हैं वे इस समय तक मुन्शीराममें आ चुकी थीं। इण्ट्रेन्सकी परीक्षा देकर जब वे बलिया गये तो वहां इनको तलवन ग्रामसे रोज़गारकी तलाशमें लाला नानकचन्दके पास आये हुए नत्थूमल नाम के आदमीने हुक्का पीनेका अच्छा अभ्यास करा दिया था। बनारसमें इनके एक मामा दुकान करते थे। उन्होंने बोतलवासिनी देवीकी पूजा सिखायी थी। बनारसमें यह भोई बीबी नामकी जिस विधवा स्त्रीके मकानमें रहते थे, उसके कारिन्दे पण्डित रामाधीन मैथिलने जुआ खेलना सिखाया था और भेष और भाषामें परिवर्तन बनारसमें रहनेसे स्वयं ही आगया था। इनके मित्र भी प्रायः सभी 'खानदानी' घरोंके लड़के थे। इसलिये इनके यहां प्रति रविवारको मित्रोंकी बैठक लगती, जिसमें शतरञ्जका खेल, उपन्यासोंका पाठ कवि सम्मेलन आदि नाना प्रका-

रका मनोरञ्जन होता था। इस मित्र-मण्डलीने अपना नाम रखा हुआ था गाढ़ी कम्पनी। इन सबने मिलकर एक सांकेतिक भाषा बनाया था। परन्तु इस विविध मनोरञ्जनके साथ साथ मुन्शीरामका नैत्यिक नियम बराबर जारी रहा। उसमें प्रायः कोई विघ्न न पड़ा। हां, अंग्रेजी उपन्यासोंके निरन्तर पाठने कई एक कल्पित भावोंकी मनमें सृष्टि अवश्य कर दी थी। सर वाल्टर स्काटके उपन्यास पढ़कर मुन्शीरामके मनमें भी नाइट (*KNIGHT*) बननेकी लहरें उठने लगी थीं। इसी भावने जहां दो तीन बार उनके हाथसे निर्बल पुरुषों व स्त्रियोंकी दुष्ट गुण्डोंके हाथसे रक्षा करवाई वहां एक बार यही भाव उनकी गिरावटका भी कारण हुआ। इन उपन्यासोंके पाठोंसे एक और लाभ यह हुआ कि अंग्रेजी साहित्यकी योग्यता खब बढ़ गयी और वर्षके अन्तमें परीक्षा होनेपर उनको अंग्रेजीमें ६७ प्रति सैकड़ा नंबर मिले।

बनारससे विदाई।

इसके बाद एक वर्ष और मुन्शीरामका शिक्षण बनारसमें हुआ, जिसमें उन्होंने अपनी मित्रमण्डलीके साथ बनारसके होली बुढ़वामङ्गल आदि उत्सवोंमें अनेक प्रकारसे आनन्द मनाया और फिर उनको बनारस सदाके लिये छोड़ देना पड़ा। संवत् १९३४ में मुन्शीरामके पिताजीकी बदली बलियासे मथुराको हो गयी। मथुरा जानेसे पूर्व उन्होंने बहुतसा सामान तो बलियासे सीधा ही तलवन भेज दिया और कुछ सामान, जिसका विशेष

सावधानताके साथ जाना आवश्यक था उसे, उन्होंने बनारसमें अपने पुत्र मुन्शीरामके पास रख दिया और कह दिया कि ज्येष्ठ-में हमारे पास मथुरा ठहर कर अपने विवाहके लिये तलवन पहुंच जाना और तभी यह सामान लेते जाना। इसलिये जब मुन्शीराम बनारससे विदा हुए तब आशा तो यह थी कि विवाह आदिके अनन्तर फिर बनारस आना होगा, परन्तु हुआ ऐसा नहीं।

मथुरामें दस दिन मुन्शीरामको अपने पिताजीके पास रहनेका अवसर हुआ और वह समय प्रायः मथुराकी सैरमें ही बीता। मथुराकी दो घटनायें मनोरञ्जक होनेके अतिरिक्त मनपर प्रभाव करनेवाली और हिन्दू समाजकी पतित अवस्थाका चित्र खींचने वाली हैं। इसलिये उनका वर्णन यहां "कल्याण मार्गका पथिक" से उद्धृत किया जाता है।

'मथुराकी दो बातें नहीं भूलेंगी। एक तो चौबोंका ब्रह्म-भोज (नहीं चौबे भोज) और दूसरी गोकुलिये गुसाईंजी की लीला। चौबे भोजका मेरे जाने पर पिताजीने विचार किया। हमारे चौबेजी बोले—"यजमान, मनके दस निमन्त्रित किये जायं वा मनके चार।" ऐ! क्या तौलमें चार चार और दस दस सेरके चौबे भी होते हैं? नहीं मतलब यह कि मनभर उत्तम भोज्य पदार्थ दस बांट कर खायं या चार हो चट्टम कर जायं। यही ठहरी कि मनके चार निमन्त्रित हों। चारोंकी जुण्डी थी और उनके नाम थे—(सोटा + मोटा + छोटा × लङ्गोटा) चौबे निमन्त्रणके साथ ही एक एक दतवन और छटांक भर भङ्ग भेज

दी गई। भङ्ग इसलिये कि प्रातः विश्राम घाटपर पहुंचते ही चौबेजी पत्थरपर भङ्गका रगड़ा लगा गोली बांध कण्ठसे नीचे कर लें। इस भङ्गका नाम था कागावासी। आठ बजे चारों चौबे कृष्णगोपीलीला गाते और नाचते कूदते हुए हमारे डेरे पर पहुंचे। उनके चरण पखारकर आसन दिये। आज्ञा हुई—'लाओ यजमान भोगविलासी।' डेढ पाव भङ्ग भिगो रखी थी। चौबेजी ने धोई। खूब रगड़ा लगाया। फिर उसमें बादाम और इलायची मिलाकर पीस डाला, दूध छोड़ दो लोटे पानीमें गड्डमड्ड करके पहिले द्वारिकाधीशको भोग लगा। एक छोटी कटोरी भर वहां निकाल कर बांटी गई। एक कटोरी भर हमें मिली जो पिताजी मैं, पाचक, कहार और अरदली बांट कर पी गए। शेष चारो चौबोंने चढ़ा ली। ११ बजे भोजन तैयार हुआ—"चलो चौबेजी, बालभोग तैयार है।" चौबेजीकी आंखें बन्द हैं। बोले "यजमान! आसनपर ले चल।" हाथ पकड़ उठाया, चरण धोए और आसन पर बैठा दिया। पहले डेढ़ डेढ़ सेर लच्छेदार मलाई अन्दर गई, आंखें खुली और मांग शुरू हुई। दो दो सेर पेडे, उनपर भाजी पकौड़ी आदिके साथ तीस तीस पूरियोंकी तह, फिर खुर्चन, फिर उतनी ही पूरियोंकी तह, फिर हलवा और अन्तमें मलाईकी पूर्णाहुति। हाथ धुलाकर हथेलियोंपर एक एक रुपया दक्षिणा रखी गई और चौबेजीको प्रणाम किया। परन्तु चौबे अभी खड़े हैं "यजमान! अब सत्यानासी भी मिल जाय।" छटांक छटांक भर भङ्ग और दी गई तब चौबेजी हिले। पिताजीको भय था कि कहीं

इन चौबोंका पेट न फट जाय और ब्रह्महत्याका पाप उन्हें लगे, परन्तु जब शामको मैं विश्राम घाट पहुंचा तो सत्यानासीके रगड़ेमें सब कुछ भस्म करके चारो चौबे कुत्तो लड़ रहे थे और इस प्रतीक्षामें थे कि कोई 'लडुआ खिलाने वाला यजमान' मिल जाय ।

"दूसरी गुसाईंजीकी लीला थी। दक्षिणके एक डिप्टी कलेक्टर ब्रज यात्राको आये थे। उनकी धमपत्नी और एक लड़का और एक लड़की साथ थे। पुत्र ६ वा ७ वर्षका और पुत्री १४-१५ वर्षकी। यह कुमारी अंग्रेजी भी पढ़ी हुई थी। मुझसे उनका परिचय भी हो चुका थ, क्योंकि काशी तीर्थ-सेवा करके वह मेरे साथ ही मथुरामें पहुंचे थे। एक दिन गोपाल मन्दिरकी झाकी थी। मैं भी साथ गया था। ५ बजे शामका समय था। मेरे साथ एक सफेदपोश पुलिस कांस्टेबल था। उससे गुसाईंजी दबते थे, क्योंकि वह था उनके घरका भेदी। मुझसे उसने कहा— "चलो बाबू! गुसाईंजीके अन्दर महलकी सैर करा लाऊं।" मैं साथ हो लिया। दरवानने यह कहकर रोका कि विशेष चेले दर्शन कर रहे हैं, जानेकी आज्ञा नहीं। परन्तु "संन्यासी, गुरु चपरासी" को कौन रोकनेवाला था। हम दोनों अन्दर गये। बहुत कमरे और उतनी ही भूल-भुलैयांवाली गलियाँ। अभी ५ मिनट ही घूमे थे कि चीखकी आवाज सुनाई दी। पासवाले कमरेका दरवाजा धक्केसे खोलकर अन्दर गये। एक अबला कुमारीको गुसाईं अपनी ओर खींच रहे थे और वह छुड़ा कर भागनेको चेष्टा कर रही थी। पास एक अधेर स्त्री खड़ी थी। गुसाईंने

कुमारीको छोड़ खड़ी कृष्ण मूर्तिकी ओर इशारा करके कहा--"भगवानके दर्शनसे यह घबरा गई थी मैं चुप कराता था।" कुमारी बोली—"इसका विश्वास न कीजिये। मैं इसके चरण स्पर्श कर रही थी तब इसने मुझे पकड़ लिया। तब मैं चिल्लाई। आह! मुझे पिताके पास ले चलो।" जमादार साहबको तो गुसाईंजीसे समझौता करते छोड़ा और मैं उस कुमारीको सीधा उसके पिताके पास ले गया जो उसे नीचे न पाकर ऊपर तलाश कर रहे थे। मालूम होता है कि ये सब फैले हुए घूम रहे थे कि वह अधेर स्त्री कुमारीको कृष्णपूजाके लिये अन्दर ले गई। स्वयं गुसाईंजीके चरणस्पर्श करके अलग हो गई और कुमारीको चरणस्पर्शके लिये आगे बढ़ा दिया। यह वही दक्षिणी डिप्टी कलेक्टर थे जो मेरे साथ आये थे। उनको बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। उसी समय गुसाईंजीके यहां से उठकर दूसरे मकानमें चले गये। मुझसे उन्होंने कहा कि इस मूर्तिपूजासे ही उनका विश्वास उठ गया है और वह अब अन्य किसी तीर्थ पर न ठहर कर सीधे अपने देशको चले जायेंगे।"

मथुरासे चलकर मुंशीराम तलवन पहुंचे और लाल नानकचन्दजी भी विवाहसे तीन दिन पहिले पहुंच गये। विवाहमें विशेष कोई बात न हुई। जैसा कि हिन्दुओंमें साधारण रीति है उसीके अनुसार विवाह हुआ। विवाहके अनन्तर बालिका वधूको नाइनके पहरेमें तलवन पहुंचाया गया और फिर शीघ्रही ससुरालका दूत उसे जालन्धर वापिस ले गया। मुंशीरामने अंग्रेजी

उपन्यास पढ़कर अपने मनमें अपनी भावी पत्नीके विषयमें नायक नायिकाके नाना प्रकारके कल्पना-चित्र खींचे थे, परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहारमें उनमेंसे एक भी आँखोंके सामने न उतरा। और तो और वधूका मुख भी वरको भली भांति देखना नहीं मिला। फिर एक मास बाद गौना हुआ। परन्तु तब भी नव-वधूको दो दिन घरमें रखकर विदा कर दिया गया। उस समय नवयुवक मुंशीरामको मालूम हुआ कि अंग्रेजी उपन्यासोंमें लिखी काल्पनिक बातों और भारतीय समाजकी यथार्थ परिस्थितिमें बड़ा भेद है। लाला नानकचन्दजी विवाहके बाद ही अपने नये काम पर बरेली चले गये थे और वहांकी कोतवालीका चार्ज उन्होंने सम्भाल लिया था। मुंशीरामकी इच्छा विवाहके अन्तर शीघ्र बनारस चले जानेकी थी परन्तु अपने पिताजीकी आज्ञाके कारण उनके पास बरेली जाना पड़ा।

बरेलीका अन्धकारमय जीवन।

बरेलीकी इस यात्राने मुंशीरामके जीवन में एक नये ही अध्यायकी सृष्टि कर दी। बनारस में मुन्शीरामकी सोसायटी बहुत कुछ बन चुकी थी, प्रत्येक मनुष्यके निकट परिचितोंका जो दायरा होता है वह प्रायः खिंच चुका था, इस दायरेके अन्दर शामिल होने वाले मित्रों और परिचितोंका चुनाव बहुत कुछ हो चुका था और इनके बुरे या अच्छे प्रभावसे मनुष्य के विचारों कार्यों और व्यवहारोंमें जो परिवर्तन आया करते हैं वे आ चुके थे। मुंशीरामको भी अपनी बनारसकी परिस्थिति

और मित्रमण्डलीसे प्रेमसा हो गया था। वह उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। इसीलिये विवाहके बाद वह बनारस जानेको उत्सुक थे। परन्तु बरेली जानेके कारण उनके जीवनमें नये परिचय और नयी परिस्थिति उत्पन्न हो गयीं। बरेलीके सभ्य और धनी समाजका उन दिनों विचित्र हाल था। घोड़ा गाड़ी रखना घरमें एक आध वेश्याको पालना, नाच मुजरोंकी पार्टियां करना, और शराब पीना उस समय सभ्य और शौकीन कहलाने के लिये आवश्यक समझा जाता था। इन करतूतोंके बिना कोई सभ्य-समाजका अङ्ग नहीं समझा जा सकता था। मुंशीराम का भी बरेली पहुंच कर धीरे धीरे इस सभ्य समाजमें प्रवेश हो गया। सबसे पहिले उनका परिचय राय छदम्मीलाल साहब कायस्थसे हुआ। इनके चार पांच फीटन गाड़ियां, दो हाथी और दो वेश्यायें सदा पले रहते थे। उस समय तक यह ऋणी नहीं हुए थे परन्तु बादको सब जायदाद स्वाहा करके बहुत बड़े ऋणी हो कर मरे। दूसरे मित्र लल्लाजी हकीम थे। यह उस समयके नामी जुआरी थे। जब बीमारोंको देखते और नुसख़ा लिखते तब भी हाथमें पासा रहता। लाला नानकचन्द जब पहिली बार (संवत् १९१९ में) बरेलीमें थे तब उन्होंने इनकी जुएकी फडको पकड़ कर सज़ा दिलाई थी। और रईसोंका तो नाच मुजरा आदि करानेमें खूब रुपया पैसा व्यय होता था परन्तु लल्लाजीके यहां अच्छीसे अच्छी रण्डीका गाना होनेके लिये उनका हुक्म काफी था। कारण यह था कि प्रायः सब हिन्दू रण्डियोंका

इलाज लल्लाजी ही किया करते थे और इन्हींके बगीचेमें जो अनारका पेड़ था उससे सब नई रण्डियोंका विवाह हुआ करता था इनका मकान भी मुंशीरामके मकानके साथ ही दर्जी चौक मुहल्लेमें था। इन्हीं लल्लाजीने मुंशीरामका दो तीन बार बड़ी सफलतासे इलाज भी किया था। जब कई वैद्य और डाक्टर इलाज करके हार चुके थे, तब लल्लाजीकी औषधिने तुरन्त फल दिखलाया था। अन्तको लल्लाजीने मुन्शीरामके कहनेसे ही जुएबाजी छोड़ दी थी जिससे उनका तथा उनके रोगियों का दोनोंकाही बड़ा लाभ हुआ।

मुन्शीराम सं० १९३४ के आश्विनमें बरेली पहुंचे थे और अब बरेलीके ऊपर लिखे सभ्य समाज में रहते सहते उन्हें एक वर्ष हो चुका था, इस कारण लाला नानकचन्दजीको इनकी शिक्षाका फिर ध्यान आया। पहिले पिताजीने मोहवश बनारस जानेसे रोक दिया था और अब मुन्शीरामकी ही अपनेसे निचली श्रेणीके विद्यार्थियोंके साथ पढ़नेकी झूठी लज्जाने तथा बरेलीकी 'सभ्य' सोसायटी न छोड़नेकी इच्छाने रुकावट पेश की। अन्तको यह निश्चय ठहरा की इस बार पढ़ाई इलाहाबाद जाकर की जाय। तदनुसार सं० १९३५ के पौष मासमें इलाहाबादके कोर्ट इन्सपेक्टर मुन्शी भैरोदयालजीके नाम अपने पिताजीकी चिट्ठी लेकर मुन्शीराम इलाहाबादको चल दिये और वहां म्योर सेण्ट्रल कालिजमें दाखिल हो गये। कालिजमें विद्यार्थी जीवन नियम पूर्वक चला। पढ़ाई की चिन्ताने शराब आदिसे भी पीछा छुड़ा दिया और योग्य

उपाध्यायोंके प्रेमने स्वाध्यायमें भी उत्साह बढ़ाया। मुन्शीराम इन दिनों रसायनके पाठमें विशेष उत्साह प्रदर्शित करते थे, इस कारण उक्त विषयके उपाध्याय हिल उनसे बहुत प्रसन्न थे। परन्तु रसायनके अतिरिक्त मुंशीरामको मनोविज्ञान (साइकालोजी) का विषय बहुत प्रिय था और यही उनकी परीक्षामें असफलताका कारण हुआ। कालिजमें गरमियोंकी छुट्टियां होने पर यह हमीरपुर और मिर्जापुरमें वहांके थानेदार मूलराज और आत्माराम, अपने बड़े भाइयोंको, मिलते हुए बरेली पहुंचे। वहांका सारा समय और वहांसे इलाहाबाद वापिस आकर भी मार्गशीर्ष तकका सब समय मनोविज्ञानके ही ग्रन्थ पढ़नेमें लगा दिया। मार्गशीर्षके अन्तिम सप्ताहमें परीक्षा होने वाली थी। जब देखा कि समय बहुत थोड़ा रह गया है तो दिन रात परीक्षा की तैयारीमें एक कर दिये। फल यह हुआ कि अंग्रेजी, फारसी और गणितके प्रश्नोंके उत्तर अच्छी तरह लिख चुकनेके पश्चात् भी तर्कशास्त्र (लौजिक) के प्रश्नोंका जवाब देते हुए प्रबल ज्वरने शरीरको आ घेरा और परीक्षा बीचमें ही छोड़ कर घर आना पड़ा परिणाम निकलने पर पता लगा कि जिन विषयोंकी परीक्षा दी थी उनमेंसे प्रत्येकमें ७० प्रति सैकड़ा, और तर्क शास्त्रमें ५०प्रति सैकड़ा नम्बर मिले। परन्तु रसायनकी परीक्षा ही न देनेके कारण सारी परीक्षामें अनुत्तीर्ण समझा गया।

परीक्षामें असफल होकर बरेली वापिस लौट आये। बरेलीमें यद्यपि इस बार नाच रंगसे अलग रहे,परन्तु परीक्षामें असफल-

ताकी चिन्ता दूर करनेके लिये शराब का प्याले पर प्याला चढ़ने लगा। चढ़ते चढ़ते आदत यहां तक चढ़ गयी कि रातको सोनेसे पहिले एक बोतल ब्राण्डी पी जाते। इसी तरह बेफिकरीमें जब सात महिने निकल गये तब होश आया कि एफ० ए० की परीक्षा देनी हो तो किसी कालिजके ही द्वारा दी जा सकती है। मुन्शी-रामकी बनारसकी गाढी कम्पनी (मित्र मंडली) के मेम्बर रमा-शङ्कर मिश्र एम० ए० उन दिनों अलीगढ़के मुसलिम कालिजमें गणितके प्रोफेसर थे। उनको पत्र लिखा। उन्होंने बड़ी खुशीसे वहीं बुला लिया। कालिज खुलनेमें तीन चार दीन बाकी थे। यह समय रमाशङ्करके यहां मनोरञ्जनमें बीता। परन्तु कालिज खुलते ही अलीगढ़में हैजा फैल जानेके कारण फिर एक महीनेकी छुट्टियां हो गयीं और रीते हाथ बरेली लौटना पड़ा। बरेली पहुं-चने के कुछ दिन बाद ही एक ऐसी घटना हुई जिसने कमसे कम कुछ समयके लिये शराबसे मनमें घृणा उत्पन्न कर दी। दर्जी चौकके मुहल्लेमें ही कायस्थोंके यहां एक विवाह था। उसमें निमन्त्रित होकर मुन्शीराम भी गये। वहां कायस्थोंने अपनी आद-तके अनुसार बहुत शराब पी। यहां तक की दोनों समधियोंने अपनी गोदमें बिठलाकर वर वधूको भी खूब पिलाया। ऊपर स्त्रियें भी दबादब पी रही थी। नीचे नाच हो रहा था। मुजरेके लिये आयी हुई वेश्याको भी पीनेके लिये मजबूर किया गया। एक बुढऊ नशेमें उठकर रण्डीका हाथ पकड़ नाचने लगे। यह देख ऊपरसे स्त्रियोंने खूब ढोल और ताली बजाये। इसपर रण्डी

और भड़वे घबड़ा गये और वहांसे निकलकर भाग गये। मुन्शीरामने आधा प्याला पीकर बाकी पीछेको उडेल दिया था। इस कारण वह होशमें थे और सब कुछ देख रहे थे। इसी नाच कूद होहुल्लड़में एकको कै भी हो गयी। यह सब दृश्य देखकर मुन्शीरामको बहुत घृणा हुई और वह वहांसे निकलकर बाहर चले गये। इस घटनाके बाद कई दिन तक मुंशीरामने बरेलीकी सभ्य पार्टियोंका साथ नहीं दिया।

पांचवां अध्याय।

अंधेरेसे प्रकाशमें।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन'

उधर तो पूर्व अध्यायमें वर्णित घटना हुई और इधर मुंशी-रामको एक ऐसे महापुरुषके दर्शन हुए जिसकी छाप उनके दिल पर सदाके लिये लग गयी। यह महापुरुष वही नास्तिक जादूगर था जिसके प्रभावसे मुंशीरामकी माता अपने पुत्रको बनारसमें बचाना चाहती थी। मुंशीरामने स्वामी दयानन्दके अपने जीवन में एक ही बार दर्शन किये, परन्तु उसका प्रभाव उनके हृदयपर इतना गहरा पड़ा कि वह गुरुकुल कांगड़ीमें अपने शिष्योंको उक्त दर्शनकी घटनायें प्रायः सुनाया करते थे। इसी लिये यहांपर भी उस पुन्य दर्शनका वर्णन उनके अपने शब्दोंमें ही देना उचित होगा।

"१४ श्रावण संवत् १९३६ के दिन स्वामी दयानन्द बांसबरेली पधारे। ३ भाद्रपदको चले गये। स्वामी महाराजके पहुंचते ही कोतवाल साहबको हुकुम मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वतीके व्याख्यानोंके अन्दर फ़िसादको रोकनेका बन्दोबस्त कर दें। पिता जी स्वयं सभामें गये और स्वामीजी महाराजके व्याख्यानोंसे ऐसे

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जन्म १८८१ वि०   मृत्यु १६४० वि०

प्रभावित हुए कि उनके सत्संगसे मुझ नास्तिककी संशय निवृत्तिका उन्हें विश्वास हो गया। रातको घर आते ही मुझे कहा—"बेटा मुंशीराम! एक दण्डी सन्यासी आये हैं बड़े विद्वान और योगीराज हैं। उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे संशय दूर हो जायंगे। कल मेरे साथ चलना।" उत्तरमें कह तो दिया चलूंगा परन्तु मनमें वही भाव रहा कि केवल संस्कृत जानने वाला साधु बुद्धिकी बात क्या करेगा। दूसरे दिन बेगम बाग़की कोठीमें पिताजीके साथ पहुंचा जहाँ व्याख्यान हो रहा था। उस दिव्य आदित्य मूर्तिको देख कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, परन्तु जब पादरी टी० जे० स्काट और दो तीन अन्य युरोपियनोंको उत्सुकतासे बैठे देखा तो श्रद्धा और भी बढ़ी। अभी दस मिनिट वक्तृता नहीं सुनी थी कि मनमें विचार किया—'यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृत जानते हुए ऐसी युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान् दङ्ग हो जांय।' व्याख्यान परमात्माके निज नाम ओ३म् पर था। वह पहले दिनका आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लादमें निमग्न कर देना ऋषि आत्माका काम था।

"उस दिन दण्डी स्वामीसे निवेदन किया गया कि टाउनहाल मिल गया है इसलिये कलसे व्याख्यान वहां शुरू होंगे। स्वामीजीने उच्च स्वरसे कह दिया कि सवारी समय पर पहुंच जाया करेगी तो वह तैयार मिलेंगे।

"टाउनहालमें जबतक 'नमस्ते, पोप, पुरानी, जैनी, किरानी,

कुरानी' इत्यादिक परिभाषाओंका अर्थ बतलाते रहे तबतक तो पिताजी श्रद्धासे सुनते रहे, परन्तु जब मूर्तिपूजा और ईश्वरावतार का खण्डन होने लगा तो जहां एक ओर मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी वहां पिताजीने आना बन्द कर दिया और एक अपने मातहत थानेदारकीड्यूटी लगा दी। २४ अगस्तकी शामतक मेरा समय विभाग यह रहा कि दिनका भोजन करके दोपहरको ही बेगम बागकी कोठी पहुंच ड्योढ़ी पर बैठ जाता। २॥ और ४ बजेके बीचमें जब ऋषिका दर्बार लगता तो आज्ञा होते ही जो पहिला मनुष्य आचार्य्य ऋषिको प्रणाम करता वह मैं था। प्रश्नोत्तर होते रहते और मैं उनका आनन्द लेता रहता। व्याख्यानके लिये २० मिनिटसे पहले सब दर्बारी विदा हो जाते और आचार्य्य चलनेकी तैयारी कर लेते। मैं अपनी 'वेगनट' पर सीधा टाउन-हाल पहुंचता। व्याख्यानका आनन्द उठाकर उस समय तक घर न लौटता जबतक कि आचार्य्य दयानन्दको बग्घी उनके डेरे की ओर न चल देती। २५, २६, २७ अगस्तको ऋषि दया-नन्दके पादरी स्काटके साथ तीन शास्त्राथ हुए। विषय प्रथम दिवस पुनर्जन्म, द्वितीय दिन ईश्वरावतार और तीसरे दिन यह था कि 'मनुष्यके पाप बिना फल भुगते क्षमा किये जाते हैं वा नहीं।' पहिले दो दिन लेखकोंमें मैं भी था। परन्तु दूसरी रात मुझे सन्निपात ज्वर हो गया और फिर आचार्य दयानन्दके दर्शन मैं न कर सका। ३० श्रावणसे ९ भाद्रपद (१५ से २५ अगस्त) तक ऋषि-जीवन सम्बन्धी अनेक घटनायें मैंने देखीं, जिनमेंसे उन्हीं

कुछ एकको यहां लिखूंगा जिनका प्रभाव मुझपर ऐसा पड़ा कि अबतक वे मेरी आंखोंके सामने घूम रही है।

"मुझे आचार्य दयानन्दके सेवकोंसे मालूम हुआ कि वह नित्य प्रातः शौचसे निवृत्त होकर, केवल कौपीन पहिरे लट्ठ हाथमें लिये ३॥ बजे बाहर निकल जाते हैं और ६ बजे लौटकर आते हैं। मैंने निश्चय किया कि उनका पीछा करके देखना चाहिये कि बाहर जाकर वह क्या करते हैं। 'दबदब-ए-केसरी' के एडीटर भी मेरे साथ हो लिये। ठीक ३॥ बजे बाहर निकलकर आचार्य्य चल दिये। हम पीछे हो लिये। पाव मील धीरे धीरे चलकर वह इस तेजीसे चले कि मुझसा शीघ्रगामी जवान भी उन्हें निगाहमें न रख सका। आगे तीन मार्ग फटते थे। हमें कुछ पता न लगा कि किधर गये। दूसरे प्रातःकाल हम अढ़ाई बजेसे ही घातमें उस जगह छिपकर जा बैठे जहांसे तीन मार्ग फटते थे। उस विशाल रुद्र मूर्त्तिको आते देखकर हम भागनेको तैयार हो गये। वह तेज चलते थे और मैं पीछे २ भाग रहा था। मेरे पीछे बनिये एडिटर भी लुढ़कते पुढ़कते आ रहे थे। बीचमें एक आध मीलकी दौड़ भी रुद्र स्वामीने लगायी। परन्तु वहां मैदान था, मैंने भी उनको आँखसे ओझल न होने दिया। अन्तको पाव मील धीरे धीरे चलकर एक पीपलके वृक्ष तले बैठ गये। घड़ीसे मिलाया तो पूरे डेढ़ घण्टे आसन जमाये समाधिमें स्थित रहे। प्राणायाम करते नहीं प्रतीत हुए, आसन जमाते ही समाधि लग गयी। उठकर दो अंगड़ाइयां लीं और टहलते हुए

अपने तत्कालीन आश्रमकी ओर चल दिये।

"एक शनीचरके व्याख्यान पीछे श्रोतागणको बतलाया गया कि दूसरे दिन (आदित्यवारको) नियत समयसे एक घण्टा पहले व्याख्यन शुरू होगा। आचार्यने उसी समय कह दिया कि यदि सवारी एक घण्टा पहले पहुंचेगी तो मैं उसी समय चलनेको तैयार रहूंगा। आदित्यवारको लोग पिछले समयसे डेढ़ घण्टे पहले ही जमा होने लगे। हाल (व्याख्यान-भवन) खचाखच भर गया परन्तु आचार्य न पहुंचे। पाव घण्टा, आध घण्टा भी बीत गया परन्तु बग्घीको घड़घड़ाहट न सुनायी दी। पौन घण्टा पीछे ऋषि दयानन्दकी विशाल मूर्ति, उन्हीं वस्त्रोंसे अलंकृत जो उनके चित्रमें दिखाये जाते हैं, ऊपर चढ़ती दिखायी दी। मध्यकी डाटके नीचे वाली एक ओरकी दीवारमें सोंटा टेककर, ईश्वर प्रार्थनाके लिये बैठनेके पूर्व उन्होंने कहा—मैं समय पर तैयार था परन्तु सवारी न आई। बहुत प्रतीक्षाके पीछे पैदल चल दिया। मार्गमें पिछले नियत समय पर ही सवारी मिली। इसलिये देरी हो गयी। सभ्य पुरुषो! मेरा कुछ दोष नहीं है। दोष बच्चोंके बच्चोंका है जो प्रतिज्ञा करके पालन करना नहीं जानते। यह संकेत खजाञ्ची लक्ष्मीनारायणकी ओर था जिनके अतिथी होकर उनकी बेगम बागवाली कोठीमें स्वामी दयानन्द रहते थे। बाबू लक्ष्मीनारायण सरकारी पांच खजानोंके खजाञ्ची थे और बरेलीमें उस समय करोड़पति समझे जाते थे।

"एक व्याख्यानमें वह पौराणिक असम्भव तथा आचारभ्रष्ट

कहानियोंका खण्डन कर रहे थे। उस समय पादरी स्काट, मिस्टर एडवर्ड्स कमिश्नर, मिस्टर रीड कलेक्टर, १५ वा १० अन्य अंग्रेजों सहित उपस्थित थे। आचार्यने अन्य कहानियोंमें पंचकुंवारियोंकी कल्पनापर कटाक्ष किया और एकसे अधिक पति रखनेवाली द्रौपदी तारा मन्दोदरी आदिके किस्से सुनाकर श्रोतागणके धार्मिक भावोंकी अपील की। स्वामीजीके कथनमें हास्यरस अधिक होता था, इसलिये श्रोतागण थकते न थे। साहब लोग हंसते और आनन्द लूटते रहे। फिर आचार्य बोले—पुराणियोंकी तो यह लीला है, अब किरानियोंकी लीला सुनो! यह ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारीके पुत्र उत्पन्न होना बतलाते, फिर दोष सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूप परमात्मापर लगाते और ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते। इतना सुनते ही कमिश्नर और कलेक्टरके मुंह क्रोधके मारे लाल हो गये परन्तु आचार्यका भाषण उसी बलसे चलता रहा और अन्त तक ईसाई मतका ही खण्डन होता रहा।

"दूसरे दिन प्रातःकाल ही खजाञ्ची लक्ष्मीनारायणको कमिश्नर साहबके यहांसे बुलवा आया। साहबने कहा—अपने पण्डित स्वामीको समझा दो कि सख्तीसे काम न लिया करें। हम ईसाई तो सभ्य हैं, वाद-विवादकी सख्तीसे नहीं घबराते परन्तु यदि जाहिल हिन्दू मुसलमान भड़क उठें तो तुम्हारे पण्डित स्वामीके व्याख्यान बन्द हो जायेंगे। खजाञ्चीजी यह सन्देश आचार्य तक पहुंचानेकी प्रतिज्ञा करके लौटे। खजाञ्चीजी चाहते

थे कि बात छेड़नेवाला कोई अन्य मिल जाय जिससे वह आचार्य की झाड़से कुछ कुछ बच जायं। जब कोई खड़ा न हुआ तो मुझ नास्तिकको आगे किया गया। परन्तु मैंने यह कहकर अपना पीछा छुड़ाया कि खजाञ्ची साहब कुछ कहना चाहते हैं क्योंकि कमिश्नर साहबने उनको बुलाया था। अब सारी मुसीबत खजाञ्चीजी पर टूट पड़ी। खजाञ्ची साहब कहीं सिर खुजलाते हैं, कहीं गला साफ करते हैं। पांच मिनट तक आश्चर्यित रहकर आचार्य बोले—भाई, तुम्हारा तो कोई काम करनेका समय ही नियत नहीं, तुम समयके मूल्यको नहीं समझते। मेरे लिये समय अमूल्य है। जो कुछ कहना हो कह दो। इसपर खजाञ्चीजी बोले— महाराज! अगर सख्ती न की जाय तो क्या हर्ज है? इससे असर भी अच्छा पड़ता है। अंग्रेजोंको नाराज करना भी अच्छा नहीं इत्यादि इत्यादि। बड़ी कठिनाईसे अटक अटककर ये वचन गरीबके मुंहसे निकले। महाराज हंसे और कहा—अरे! बात क्या थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है। मेरा इतना समय भी नष्ट किया। साहबने कहा होगा तुम्हारा पंडित कड़ा बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जायंगे, यह होगा, वह होगा। अरे भाई! मैं हौवा तो नहीं कि तुझे खालूंगा। उसने तुझसे कहा, तू सीधा मुझसे कह देता। व्यर्थ इतना समय क्यों गंवाया एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था, बोला—"देखा! यह तो कोई अवतार है, मनकी बात जान लेते हैं!"

"उस शामके व्याख्यानको कौन सुनने वाला भूल सकता है?

मैंने बड़े बड़े वाग्विशारदोंके व्याख्यान सुने हैं, परन्तु जो तेज आचार्यके उस दिनके सीधे सादे शब्दोंसे निकल कर सारी सभाको उत्तेजित कर गया उसके साथ किसकी उपमा दूं। उस दिन आत्माके स्वरूपपर व्याख्यान था। पूर्व दिवसके सब अंग्रेज़ (पादरी स्काटके अतिरिक्त) उपस्थित थे। व्याख्यानमें सत्यके बलका विषय आया। सत्यकी व्याख्या करते हुए आचार्यने कहा—'लोग कहते हैं कि सत्यको प्रगट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवरनर पीड़ा देगा। अरे! चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।' इसके पीछे एक श्लोक पढ़कर आत्माकी स्तुति की। न शस्त्र उसे काट सकें, न आग उसे जला सके, न पानी उसे गला सके और न हवा उसे सुखा सके। वह नित्य अमर है। फिर गरजते हुए शब्दोंमें बोले—'यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षामें प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्यका जी चाहे नाश कर दे।' फिर चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर सिंहनाद करते हुए कहा—'किन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखलाओ जो मेरे आत्माको नाश करनेका दावा करे। जब तक ऐसा वीर इस संसारमें दिखायी नहीं देता तबतक मैं यह सोचनेके लिये भी तय्यार नहीं कि मैं सत्यको दबाऊंगा वा नहीं' सारे हालमें सन्नाटा छा गया। रूमालका गिरना भी सुनायी देता था।

"व्याख्यानमें कुछ देर हो गयी थी। उठते ही ऋषि दयानन्द

ने पूछा—"भक्त स्काट आज दिखायी नहीं दिये।" पादरी साहब किसी व्याख्यानसे भी अनुपस्थित न होते थे, और अलग भी प्रेम से वार्तालाप किया करते थे, इस लिये ऋषिको उनसे बड़ा प्रेम हो गया था। किसीने कहा, पासके गिरजे (चेप्ल) में आज उनका व्याख्यान था। सीढ़ियोंके नीच उतरते ही ऋषिने कहा—"चलो, भक्त स्काटका गिरजा देख आवें।" अभी तीन चार सौ आदमी खड़े थे। वह सारी भीड़ लेकर गिरजा पहुंचे। वहाँ व्याख्यान समाप्त हो चुका था। श्रोता सौके लगभग थे। पादरी साहब नीचे उतर आये, स्वामीजीको वेदी (पुलपिट) पर ले गये और कहा कि कुछ उपदेश दीजिये। आचार्यने खड़े खड़े ही बीस मिनिट तक मनुष्य पूजाका खण्डन किया।

"एक दिन आचार्यको पता लगा कि खजाञ्चीजीका सम्बन्ध किसी वेश्यासे है। उनके आनेपर पूंछा—"तुम्हारा वर्ण क्या है?" उन्होंने कहा—"क्या कहूं, आप तो गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था मानते हैं।" आचार्य बोले—"यों तो सब वर्णसंकर है परन्तु तुम जन्मके क्या हो?" उत्तर मिला कि खत्री। महाराज बोले..."यदि खत्रीके वीर्यसे वेश्यामें पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे?" खजाञ्चीजीने सिर नीचा कर लिया। इसपर महाराजने कहा..."सुनो भाई! हम किसीका मुलाहजा नहीं करते। हम तो सत्य ही कहेंगे।" खजाञ्चीजीने उस वेश्याको कहीं अन्यत्र भिजवा दिया। एक अन्तिम घटनाके साथ इस अपूर्व सत्संगकी कथा समाप्त करता हूं। यद्यपि आचार्य दया-

नन्दके उपदेशोंने मुझे मोहित कर लिया था तथापि मैं मनमें सोचा करता था कि यदि ईश्वर और वेदके ढकोसलेको पण्डित दयानन्द स्वामी तिलांजलि देदें तो फिर कोई भी विद्वान् उनको अपूर्व युक्ति और तर्कना शक्तिका सामना करनेवाला न रहे। मुझे अपने नास्तिकपनका उन दिनों अभिमान था। एक ईश्वरके अस्तित्वपर आक्षेप कर डाले। पाँच मिनटके प्रश्नोत्तरमें ऐसा घिर गया कि जिह्वापर मुहर लग गयी। मैंने कहा...“महाराज! आपकी तर्कना बड़ी तीक्ष्ण है; आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वरकी कोई हस्ती (अस्तित्व) है।” दूसरी वार फिर तय्यारी करके गया, परन्तु परिणाम पूर्ववत् ही निकला। तीसरी वार फिर पूरी तय्यारी करके गया परन्तु मेरे तर्कको फिर पछाड़ मिली। मैंने फिर अन्तिम उत्तर वही दिया—“महाराज! आपकी तर्कनाशक्ति वड़ो प्रवल है; आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वरकी कोई हस्ती है।” महाराज पहले हंसे, फिर गम्भीर स्वरसे कहा---“देखो, तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये--यह युक्तिकी वात थी, मैंने कव प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वरपर करा दूंगा। तुम्हारा परमेश्वरपर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी वना देंगे। अब स्मरण आता है कि नीचे लिखा उपनिषद्वाक्य उन्होंने पढ़ा था——

“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।"

कठ० १,२,२२॥

स्वामी दयानन्द तो चले गये किन्तु बरेली में ही दो घटनायें और ऐसी हुईं जिनका मुंशीरामके जीवन पर बहुत भारी प्रभाव हुआ। ये घटनायें भी ऐसे स्थानपर हुईं जहां कि मुंशीरामके सिवा इनको कोई नहीं जान सकता था। और यदि वह स्वयं ही इन घटनाओंको खोल कर न लिखते तो शायद इनको अन्ततक कोई भी न जान पाता। क्योंकि इनका सम्बन्ध केवल मुंशीरामजी और उनकी धर्मपत्नीसे था। साधारणतया जीवन-चरित्रों और इतिहासोंके लेखक इस प्रकारकी घटनाओंको निरी घरेलू बातें समझकर उनका उल्लेख नहीं किया करते, परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो यही घटनायें हैं जो मनुष्यके जीवनको बनाने वाली होती हैं। जन्म, शिक्षण और दुनियादारीमें प्रवेश तो छोटेसे लेकर बड़े तक सभी पुरुषोंका होता है, उनके उल्लेखमें कुछ महत्व नहीं। महत्व तो उन बातोंका है जो मनुष्य के विचारों और कर्मोंपर अपना असर छोड़ जाती हैं, फिर चाहे वह घरेलू हों या बाहरी। अस्तु, मुंशीरामजीके जीवनके विषयमें हम यहां जिन दो घटनाओंका उल्लेख करना चाहते हैं उन दोनों-का सम्बन्ध उनकी धर्मपत्नीसे है।

इन्हीं दिनों मुंशीरामजी अपने पिताजीकी आज्ञासे अपनी धर्मपत्नीको बरेली लिवा लाये थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम शिवदेवी था। शिवदेवीजी नित्य रातको अपने पतीको भोजन

कराकर तब आप भोजन किया करती थीं और जिस दिन मुन्शो-रामको घर आनेमें देर होते देखतीं उस दिन उनका तथा अपना भोजन ऊपर मंगाकर रख लेतीं और पति देवके घर आने पर उन्हें उसी भोजनको गरम करके खिलातीं। एक बार मुंशीराम लगभग रातके आठ बजे बाहरसे सैर करके घरको लौट रहे थे कि बरेलीके रईस मुन्शी जीवनसहायके लड़के मुन्शी त्रिवेनीसहाय ने उनको रोक लिया। मुंशीजीका मकान मुंशीरामके घरके साथ लगा हुआ था। त्रिवेणीसहायने भीतर ले जाकर उनके सामने शराबका प्याला रखा और पीनेका अनुरोध किया। इनके इनकार करने पर कहा कि "तुम्हारे लिये ही खास तौर पर ये दो-आतशा खिंचाई गई है। इसे जरूर पियो।" इसपर मुंशीराम एक गिलास पी गये और जब पीनेके बाद गप्प शप्प चलने लगी तो उसीके दौरमें मना करते करते भी तीन चार गिलास और पी गये यह शराब बहुत नशीली थी। इससे वह अपने काबूमें न रहे और थोड़ी बहुत आवारागर्दीके बाद गिरते पड़ते अपने घरमें पहुंचे। वहां नौकरोंने सम्भालकर ऊपर पहुंचाया तो शिवदेवीजीने आकर सहारा दिया। बरामदमें ही कै होने लगी थी। धर्मपत्नीने कुल्ला कराकर सहारेसे भीतर पहुंचाया और पलङ्ग पर लिटाकर चादर ओढा दी तथा स्वयं पैरोंकी ओर बैठकर पांव दाबने लगीं। थोड़ी देर बाद जब गरम दूध पीनेसे अच्छी तरह होश हुआ तब आंख खुलीं और शिवदेवीको पास खड़े देखकर उनके उपकारका अनुभव हुआ। उस समय अंग्रेजी उपन्यासोंके

नायक नायिका दिमाग़से निकल गये और गोसाँई तुलसीदास जीकी रामायणके पति-भक्तिके वर्णन आँखोंके सामने आ गये। मुंशीरामजीने शिवदेवीसे भोजन करनेको कहा तो उन्होंने जवाब दिया कि आपके भोजन किये बिना मैं कैसे खा सकती हूं। वस्तुतः उस समय शिवदेवी अपनी मातासे सुने हुए पति-सेवाके उपदेश पर अमल कर रही थीं और इसीलिये उन्होंने पतिके दोषों पर ध्यान न देकर अपने कर्तव्यका पालन किया।

दूसरी घटना इन्हीं दिनों यह हुई कि बरेली छावनीके जिस पारसी दुकानदारके यहां से मुंशीराम शराब मंगाया करते थे उसका बिल बढ़कर बड़ी रकम उधार चढ़ चुकी थी। ऊपर वर्णित घटनाके अनन्तर अब मुंशीराम किसी बातको अपनी धर्मपत्नीसे छिपाते तो थे ही नहीं, उन्होंने अपनी यह चिन्ता भी शिवदेवीजीसे प्रकट कर दी। शिवदेवीजीने बिना विलम्ब अपने हाथोंके सोनेके कड़े लाकर पतिके सामने रख दिये और उन्हें बेचकर कर्ज अदा कर देनेका प्रस्ताव किया। जब मुंशीराम इसपर राज़ी न हुए तो उन्होंने जोर देकर कहा कि मुझे कड़ोंकी दो जोड़ियां मिली थीं—एक अपने पिताजीसे और दूसरी श्वसुरसे, एक जोड़ी व्यर्थ पड़ी है; यदि वह काम आ जाय तो क्या हानि है। आखिर मुंशीरामने धर्मपत्नीके अनुरोधसे कड़े बेचकर शराबका बिल अदा कर दिया और शेष धन अपनी धर्मपत्नीकी पेटीमें रखकर मनमें संकल्प कर लिया कि धन कमानेमें समर्थ होते ही इस धनकी पुनः पूर्ति करके धर्मपत्नीके आभूषण वापिस कर देंगे।

इन दोनों घटनाओंने मुंशीरामजी को भारतीय स्त्रियोंकी उच्चताके आदर्शकी शिक्षा दी और शिवदेवीजीसे परिचय होनेके पहिले तक मनमें अंग्रेजी उपन्यासोंके कारण नायक नायिका आदिके जो काल्पनिक चित्र बैठ गये थे वे सब काफूर हो गये।

छठा अध्याय।

नौकरी और वकालतकी तैयारी।

मुंशीरामको परीक्षाओंमें इस प्रकार अनेक विघ्न और उनके जीवनका प्रवाह दूसरी ओर जाते देखकर लाला नानकचन्दजीने समझ लिया कि अब यह पढ़ाईके योग्य नहीं रहा। अतः वह अपने सबसे छोटे पुत्रको किसी रोजगारमें लगानेकी चिन्तामें रहने लगे। बरेलीके कमिश्नर एडवर्डस उनपर देरसे कृपालु थे। उन्होंने एक दिन मुंशीरामको बुलाकर पूछा कि तुमको तहसील-दारीकी परीक्षा देकर उस महकमेमें काम करना स्वीकार है या नहीं। इन्होंने स्वीकार कर लिया। इस समाचारसे लाला नानकचन्दजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। क्योंकि उनके सबसे बड़े पुत्र सीताराम तलवनमें भूमि और साहूकारीका प्रबन्ध करते थे; दूसरे और तीसरे मूलाराम और आत्माराम मिर्जापुर और हमीरपुर जिलोंमें थानेदार थे, रह गये चौथे मुंशीराम सो इनको भी इस तरह कामपर लगता देख पिताको कैसी खुशी हुई होगी इसका प्रत्येक संसारी पुरुष अनुभव कर सकता है।

कमिश्नरने उधर तो मुंशीरामका नाम तहसीलदारीके लिये भेज दिया और इधर तात्कालिक नायब तहसीलदारके छुट्टीपर

चले जानेके कारण इनको अस्थायी नायब तहसीलदार बना दिया। तहसीलदार मुनीरुद्दीन इनको काम सिखाने लगे। यह लाला नानकचन्दजीकी बड़ी इज्जत करते थे, क्योंकि इनके पिता संवत् १९१७—१८ में बरेलीके डिप्टी मजिस्ट्रेट थे और उनसे इनसे अच्छा मेल था। इसी प्रकार काम सीखते सीखते और तहसीलदारीकी परीक्षाकी तैयारी करते करते एक महीना बीत गया कि तहसीलदार मुनीरुद्दीन भी १५ दिनकी छुट्टी गये। तब नायबी और तहसीलदारी दोनोंका काम मुंशीरामके सपुर्द हुआ परन्तु इतने ही दिनमें उनको कलेक्टर और जोइण्ट मजिस्ट्रेटका व्यवहार अपमानजनक प्रतीत हुआ। मुनीरुद्दीनके लौटने पर उन्होंने अपने ये भाव उनपर प्रकट किये। मुनीरुद्दीनने जवाब दिया कि 'भाई अंग्रेज़ तो बादशाह हैं। काला कितना ही बढ़ जाय फिर भी महकूम ही है। ऐसी उपजकी लेनेसे काम न चलेगा।' इसी तरह एक महीना और बीत गया। इसी समय बरेलीसे आठ दस मीलकी दूरीपर एक अंग्रेजी गोरोंकी सेनाने अपना पडाव किया। नायब तहसीलदारको पडावमें रसद आदि पहुंचानेका हुक्म हुआ। परन्तु रसद बेचनेवाले दुकानदारोंके पहुंचते ही गोरोंने अण्डोंवालोंके अण्डे बिना दाम दिये लूट लिये। नये नये न्यायप्रिय नायब तहसीलदारने सेनाके करनलसे जाकर शिकायत की कि अगर गरीब अण्डोंवालोंके दाम तुरत ही अदा न किये गये तो मैं सब दुकानदारोंको वापिस कर दूंगा। कर्नल साहब चिढ कर बोले कि तुम ऐसा करोगे तो नुक्सान उठाओगे,

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—

मुन्शीरामजी
नायब तहसीलदार बरेली।

इस गुस्ताख़ीका मतलब क्या है ? नये जोशवाले नायबने जवाब दिया, अच्छी बात है मैं अपने आदमियोंको ले जाता हूं आप जो कर सकते हों कर लीजिये, मैं यह अपमान नहीं सह सकता। निहत्थे कर्नल साहब आगे बढे तो नौजवान नायबने अपना हण्टर सम्भाला, जिसे देखकर कर्नल तो वहींके वहीं रुक गये और हमारे नायब साहब दौड़कर घोड़ेकी पीठपर सवार हो छू मंतर हो गये तहसीलमें पहुंचकर मुंशीरामजीने सब हक़ीक़त मुनीरुद्दीन तह— सीलदारसे कहीं, जिसे सुनकर उनके चेहरेका रंगही उड़ गया। रातको मुंशीरामने सारी रिपोर्ट लिखकर उर्दूकी नकल तो तह- सीलदारके हवाले की और अंगरेजीकी नकल लेकर सीधे कल- क्टर साहबके यहां पहुंचे। करनल वहाँ पहिले ही मौजूद थे। पहिले तो कलक्टर बहुत गरम होने लगे परन्तु रिपोर्ट पढ़कर और करनल साहबसे सलाह करके मामला इतने पर ही ख़तम करनेको तैयार हो गये कि नायब तहसीलदार करनलसे क्षमा मांग ले। मुंशी- रामने झुककर करनलको सलाम किया और झटसे कलक्टरके दफ़्तरसे बाहिर आ गये। इधर घर पहुंचते ही कमिशनर साहब का बुलावा आया। वह नायब तहसीलदारीकी ही नौकरी स्थिर करके मुंशीरामको किसी बाहरकी तहसीलमें भेजना चाहते थे। परन्तु मुंशीरामने करनलकी घटनावाली सारी कच्ची हकीकत सुनाकर सरकारी नौकरीसे छुट्टी चाही। परन्तु मेहरबान कमि- श्नर साहबने और१५ दिन रोक कर कलक्टरके हुक्मको रद्द करके मुंशीरामको निर्दोष अवस्थामें नौकरीसे मुक्त कर दिया।

संवत् १६३७ में लाला नानकचन्दजीकी बदली खुर्जाको हो गयी। उनको वहांका सब डिविजनल पुलीस आफिसर बनाया गया। मुन्शीराम भी अपनी धर्मपत्नी सहित पिताजीके साथ खुरजा गये। मुन्शीरामने अपनी तीन महीनेकी नायब तहसीलदारीमें २००) बचाये थे। उनको पिताजीके सामने रखकर अपनी कड़े वेचनेकी सब कहानी सुनाई और निवेदन किया कि शिवदेवीजी को नये कड़े बनवा दिये जायं। लाला नानकचन्दजी अपने पुत्रकी इस सचाई और सरलतासे बहुत प्रसन्न हुए। लाला नानकचन्द जीके खुरजा रहते हुए ही सी० पी० कारमाइकेल साहब सीनियर मेम्बर आव दि बोर्ड आव दि रेवेन्यूकी हैसियतसे अपने महकमे का निरीक्षण करने बुलन्दशहर आये। यह पहिले बनारस आदिमें कमिश्नर रह चुके थे और लाला नानकचन्दजीके कामसे बड़े प्रसन्न थे। लालाजी मुंशीरामको साथ लेकर इनसे मिलने के लिये बुलन्दशहर गये। वहां मुन्शीरामके विषयमें भी बात चीत हुई। निश्चय हुआ कि मुन्शीरामको दीवानी महकमे में नौकर रखा दिया जाय। कारमाइकेल साहबने मुंशीरामको बुलाकर कहा कि तुमको मैंने तुम्हारे पितासे मांग लिया है, अभी तुमको १५०) २००) के दरजेमें नौकरी मिलेगी और चार बरसमें तुम डिपटी कलक्टर बन जाओगे अभी मेरे साथ चले चलो। मुन्शीरामने इस कार्यको स्वीकार कर लिया और दो मासके बाद इलाहाबादमें साहबसे मिल जानेकी प्रतिज्ञा की। परन्तु मुन्शीरामके भाग्यमें अपने पिताकी भांति विदेशी सरकार

की गुलामी न लिखी थी, उनको अपने राष्ट्र और समाजके लिये कई उच्च कार्य करने थे। इसलिये कारमाइकेल साहबसे नौकरी का निश्चय हो जानेपर भी अदृष्टने घटना चक्रको दूसरीही दिशामें गति दी। लाला नानकचन्दजीको कार्य-वश मेरठ जाना पड़ा। वहां उनकी जालन्धरके वकील लाला डूंगरमलजीसे भेंट हुई। उन्होंने मुन्शीरामको वकील बनानेकी सलाह दी जो कि लाला नानकचन्दजीको भी पसन्द आयी। खुर्जा वापिस आनेपर उन्होंने यह विचार अपने पुत्रसे प्रकट किया। मुन्शीराम भी इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उस समय लाला नानकचन्दजीके सबसे बड़े पुत्र सीतारामने माता पिताके परिवारसे अलग होकर अपनी दूकान कर ली थी, अतः उन्होंने मुंशीरामको तलवनकी भूमि और लेन देनके सब प्रबन्धका काम सौंपकर उसे तलवन भेज दिया तथा आज्ञा दी कि संवत् १९३७ के पौष मासमें नया पाठ आरम्भ होनेपर लाहोर जाकर कानूनकी श्रेणी में दाखिल हो जायं। मुंशीराम भी इस आज्ञाके अनुसार तलवन चले गये और पौष माससे पहिले तकका अपना समय शतरञ्ज आदि मनोरञ्जनों द्वारा ग्राममें बिताकर पौष मासमें लाहोर जाकर कानूनकी श्रेणीमें दाखिल हो गये। दो तीन सप्ताह तो कानूनकी पुस्तकोंकी पढ़ाईमें ध्यान दिया, परन्तु पीछे अपनी आदतके अनुसार अधिक समय अंग्रेजीके उपन्यासोंकी पढ़ाई और इधर उधर को मटरगश्तमें बीतने लगा। होलीकी छुट्टियोंमें तलवन जाकर वहां भी कई दिन अधिक लगा दिये। इधर लाहोरमें बखशीश-

सिंह नामक एक आवारागिर्द मिल गया था। उसने लालच दिलाया कि यदि अनारकली (लाहोर) में सौदागरी व विला-यती शराबकी दुकान खोली जाय तो बहुत फायदा होगा। मुन्शीराम इस झांसेमें आगये और होलीके बाद लाहोर जाते हुए तलवनसे ५००पांच सौ रुपये लेते गये। विचार यह किया कि दुकान जब चल निकलेगी तब यह रुपया वापिस कर देंगे, पिता-जीसे पूछनेकी क्या आवश्यकता है। जब कई दिन बाद भी विशेष लाभ न हुआ और बखशीशसिंहसे इसका कारण पूछा गया तो बोला कि विलायती शराबका लाइसेन्स मिल जानेसे दूकान खूब चलेगी। मुंशीरामजीने लाइसेन्सके लिये एक दरख्वास्त लिखी भी परन्तु स्वयं ही लज्जाके मारे फाड़ डाली। पीछे नजदीकके दुकानदारने इनको बखशीशसिंहकी दुकान पर आते जाते देखकर सावधान किया कि इसको तो इसके बापने अपने घरसे निकाल दिया है, यह आवारागिर्द है, आप अपना माल सम्भाल लें। मुन्शीरामजीने उस दुकानदारको धन्यवाद किया और तुरन्त ही जाकर बखशीशसिंहसे सब हिसाब किताब मांगा जब यह वहां पहुंचे तब भी एक आदमी बहुत सा माल बांध-कर चलनेकी तयारी कर रहा था। उससे वह माल वहीं रखा लिया। उस आदमीने बखशीशसिंहसे ८०) अस्सी रुपये वापिस लिये। उसके पास ३५) और थे, जो मुन्शीरामने लेकर उसको विदा कर दिया और सब सामान चार आना घाटा उठाकर बेच-कर भी यही समझा कि सस्ते छूटे। हां इसकी सूचना उन्होंने

अपने पिताज़ीको दे दी, और उन्होंने भी सत्य व्यवहारसे प्रसन्न होकर इस नुक्सानको क्षमा कर दिया। सौदागर बननेके इस विफल प्रयत्नके बाद फिर पढाई नियमपूर्वक आरम्भ हो गयी। परन्तु अभी पूरे दो महीने भी न बीतने पाये थे कि पिताजीने लिखा कि लाला मूलारामकी पुत्रीका विवाह है, तलवन जाकर उसकी तैयारी कराओ। विवाह हो चुकनेपर पिताजीने एक और आज्ञा यह दी कि भाई आत्मारामकी धर्मपत्नीको ग़ाज़ीपुर पहुंचा दो। आत्माराम उन दिनों ग़ाज़ीपुरमें थानेदार थे, उनकी लाला नानकचन्दजीके पास शिकायत पहुंची थी और वह अपनी भतीजीके विवाहमें भी सम्मिलित न हुए थे। मुंशीराम अपनी भौजाईको साथ लेकर रास्तेमें खुर्जा बरेली और बनारस आदि ठहरते हुए गाजीपुर पहुंचे। एक तो इस कारण अधिक समय लग गया और फिर जब वापिस होने लगे तब खुर्जामें पिताजीने और एक काम बहुतसा सामान बंधवाकर साथमें तलवन ले जानेको सौंप दिया, क्योंकि तब वह पेंशन लेनेका प्रार्थनापत्र भेज चुके थे। इन सब कारणोंसे इस वर्ष कानूनकी पढ़ाईमें उपस्थिति बहुत कम रही। नियम यह था कि केवल वही विद्यार्थी परीक्षा में बैठ सकते थे जिन्होंने कमसे कम ७५ सैकड़ा व्याख्यानोंको सुना हो। इसपर एक और विपरीत कारण यह हो गया कि एक अध्यापक छुट्टी लेकर चले गये और जिन विद्यार्थियोंकी उपस्थिति कम थी उनको अपनी उपस्थितियोंकी संख्या पूरी करनेका अवसर न मिला। मुंशीरामकी उपस्थितियां भी ऊपर

वतलाये कारणोंसे कम रही थीं, अतः यह परीक्षामें न बैठ सके। निराश हो.तलवन लौट गये।

अनिश्चित जीवनके उतार-चढ़ाव।

संवत् १९३८ के पौषमें फिर कानूनकी श्रेणीमें नाम लिखाया और इस वार उपस्थिति तो पूरी कर ली परन्तु परीक्षाकी तैयारी में कुछ और विघ्न उपस्थित हो गये। उपस्थितियां पूरी हो जानेपर मुंशीराम घर लौट आये थे और तलवनमें शिक्षित पुरुषोंकी सोसायटी कम देखकर परीक्षाकी तैयारीके लिये जालन्धर चले गये। वहाँ अधिकतर सङ्ग अपनी ससुरालवालोंका रहा जिनको मद्य और मांसका बड़ा व्यसन था। उनकी संगतिमें इधर शराब उड़ने लगी और उधर कानूनी पुस्तकोंकी जगह उपन्यासोंका पाठ आरम्भ हो गया। दिनभर उपन्यास पढ़ते और रातको उनकी कथा अपने साले लाला वालकराम आदिको सुनाते। इस तरह समय बीत रहा था कि पिताजीकी खुरजेसे चिट्ठी आयी कि मुझे पेंशन मिल गयी है यहाँ आकर सब सामान आदि बंधवाकर तलवन ले जाओ। खुरजेसे जालन्धर वापिस आकर फिर वही मद्य मांस और उपन्यासोंका दौर चलने लगा। परन्तु जब परीक्षा सिर पर आयी दिखायी देने लगी तो जालन्धरमें उसकी तैयारी होते न देखकर लाहोर पहुंचे। लाहोरमें भाटी दरवाजेके जिस चौबारेमें मकान लेकर ठहरे उसीमें एक 'सर्वहितकारिणी सभा' खुली हुई थी। उसमें शरीक होने लगे और उसके द्वारा ब्राह्मोसमाजके अधिवेशनोंमें भी आने जाने लगे। इस तरह सभी सोसायटियों

में जाना और परीक्षामें केवल १५।२० दिन बाकी, तैयारी होती तो क्या होती। परीक्षामें बैठते ही उसका परिणाम मालूम हो गया। अनुत्तीर्ण होकर फिर जालन्धर आ गये। वहीं पिताजी मिले, जो अपनी छमाही पेंशन लेने वहां आये थे। उन्होंने तसल्ली दी और साथमें तलवन ले गये। इस समय मुंशीरामजी के यहाँ एक पुत्रीका जन्म हो चुका था। इस कारण गृहस्थके सुखमें कुछ देर तो कोई दुःख या चिन्ता नहीं प्रतीत हुई परन्तु धीरे धीरे फिर आजीविकाकी तलाशका विचार सताने लगा। फिर जालन्धर आये। चिन्ताको शराबके प्रवाहमें बहानेका यत्न किया। परन्तु यदि चिन्ता इतनी ही सुगमतासे दूर हो सकती तो शायद संसारमें शराबियोंसे बढ़कर सुखी कोई व्यक्ति न होता। गृहस्थ जीवनसे भी शान्ति न मिली। फिर सरकारी नौकरीके स्वप्न आने लगे। विचार किया रियासतोंमें ही कोई नौकरी मिल जाय तो अच्छा हो। नौकरीके लिये कई प्रार्थनापत्र लिखे और फाड़ डाले। अन्तको निश्चय किया कि नौकरीकी तलाशमें बाहर चलना चाहिये, परन्तु यह विचार किसीसे प्रकट नहीं किया। बड़े साले लाला बालकरामजी रेलवे स्टेशनपर विदा करने गये थे, इसलिये टिकट लाहौरका लिया। परन्तु रास्तेमें ही फिर विचारोंने पलटा खाया और मनने कहा कि एक बार और हिम्मत करके देखो, बिना परीक्षा दिये भाग गये तो लोग क्या कहेंगे। बस, लाहौर पहुंचकर मुख्तारकी परीक्षा की तैयारीमें लग गये और जहां पहले उपन्यासोंके पाठमें रातको

जागरण होता था वहाँ मुखतारीकी तैयारीमें रातें बीतने लगीं। इस बार लाहोरका जीवन भी नियमित रहा। परीक्षा देकर मुन्शी-राम घर चले आये थे, लाला बालकरामजीका परीक्षाकी सफल-ताका तार फिल्लौर होता हुआ वहीं पहुंचा। लाला नानकचन्द बड़े प्रसन्न हुए और खूब उत्सव मनाया गया यहां तक कि उन्होंने एक शादीपर तलवनमें आई हुई एक रण्डीके नाचकी भी इस समय इज़ाजत दे दी।

कानूनी पेशाका आरम्भ।

अब मुखतार बनकर मुन्शीराम जालन्धर चले गये और वहीं अपने श्वशुर-गृहमें रहते हुए वक़ालत (मुखतारी) करने लगे। इनको धर्मपत्नीके सबसे बड़े भाई लाला बालकरामजीने एक चलते पुरजे नौजवान मुसलमान मौलाबख्शको इनका मुन्शी रखा दिया। मौलाबख्श था तो ठुण्डा परन्तु मुकदमेबाज़ मुवक्किलोंको फंसानेमें होशियार था। उसकी सहायतासे काम पर्याप्त मिलने लगा। एक बार एक मुकदमा तहसील फिल्लौरका आया। उसके सम्बन्धमें फिल्लौर जाना पड़ा। फिल्लौड़में उन दिनों तह-सीलदार सैयद आबिदहुसैन थे। सैयद साहिबके पिता बरेलीमें लाला नानकचन्दजीके साथ काम कर चुके थे इस कारण सैयद साहब भी इनकी हर तरह भलाई चाहते थे। उनकी सलाहसे निश्चय हुआ कि कानूनको दुकान फिल्लौरमें ही खोली जाय। फिल्लौरमें उन दिनों कोई वकील या मुखतार नहीं था। इस कारण काम खूब चलने लगा। माघ और फाल्गुनके महीनेमें

सब खर्च उठाकर भी २००) दो सौ रुपयेकी बचत हुई। मुन्शी-रामजीने ये रुपये और अपनी आय व्ययका सब हिसाब अपने पिताजीकी सेवामें उपस्थित कर दिये। पिताजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि अब तुम अपना गृहस्थ स्वयं चलाने योग्य हो गये हो, स्वतन्त्र रूपसे कमाओ और संसार चलाओ। इसलिये इसी महीने निश्चय हुआ कि मुन्शीराम अपना परिवार आदि भी फिल्लौर ही ले जांय। परन्तु फिल्लौर बसना इनके भाग्यमें नहीं लिखा था।

फिल्लौर बसनेके लिये अपनी पुत्री और धर्मपत्नीको जालन्धर से ले जाकर अभी तलवन ही पहुंचे थे कि पिताजीने बतलाया कि मेरठमें लाला मूलराज पर एक मुकदमा चल गया है तथा उनको नौकरीसे मुअत्तल करके पुलिस लाइन्समें लाकर रखा गया है। उसी समय उनके नाम भागलपुरसे एक पुराने मुकद-मेमें गवाही देनेके लिये समन्स आया। अतः निश्चय हुआ कि मुन्शीराम भी अपने पिताके साथ मेरठकी ओर यात्रा करेंगे। मेरठ पहुंचकर लाला नानकचन्दजी तो आगे भागलपुर चले गये और मुन्शीराम वहीं ठहर कर अपने बड़े भाईके मुकदमेकी तैयारी करने लगे। बीस दिन पीछे लाला नानकचन्द भी भागलपुरसे वापिस आ गये और उन्होंने उच्च पुलिस अधिकारियोंसे लिखा पढ़ी आदि करवाकर लाला मूलराजको अपराध-मुक्त करा दिया तथा सलाह दी कि अब ऐसी अवस्थामें नौकरीसे त्यागपत्र दे देना ही ठीक है। लाला मूलराजने भी यह सलाह मान ली और कुछ

दिन बाद नौकरी छोड़कर अपने ग्राम तलवनमें ही आ रहे। उस समय तक वह रिशवत आदिसे काफी रुपया जमा कर चुके थे, इस कारण कमाईकी उनको विशेष चिन्ता ही क्यों होती?

मुंशीराम मेरठ जाते हुए ही मौलाबखशको नौकरीसे अलग कर गये थे, क्योंकि वह उनकी अनुपस्थितिमें उनके नामपर दुकानदारसे बासमतीके चावल, घी आदि रसदका सामान और सौदागरसे शराब आदि लेता रहा, तथा रातको बैठकमें सोनेकी जगह रण्डीके घर सोता था। उसको वेतन रूपसे १०) मासिक जेबखर्च, भोजन और रहनेकी जगह मिलती थी। इसके सिवाय वह मुक़द्दमे वालोंसे भी ३०) ३५) मासिक ले लिया करता था। इतने पर भी जब दुकानदारों आदिका हिसाब करके उसे नौकरीसे अलग किया गया तो वह कई लोगोंका देनदार था। परन्तु ये सब लोग मुन्शीरामजीके फिल्लौर छोड़ देने पर उनके मकान पर आये, इस कारण कुछ नहीं हो सकता था। अस्तु, मेरठसे लौटकर इन्होंने मुखतारीकी दुकान जालन्धरमें खोली। इस बार जालन्धरमें अपना ही मकान किराये पर ले लिया था। मुखतारी तो भली भांति चलने लगी परन्तु जालन्धरमें बिगड़े हुए शहरी लोगोंका साथ होनेसे शराबका रोग फिर पीछे लग गया। अदालतके बार-रूममें (वकीलोंका बैठकखाना) अश्लील उर्दू नज़मोंका शौक इन दिनों बहुत चढ़ चढ़ रहा था। इनके उर्दूके केन्द्र स्थानोंमें घूमा हुआ होनेके कारण यह इन मुशायरोंमें भी मुखियाकी गद्दी पर बिठाये जाने लगे। साथ ही शराबका दौर चलने लगा। इन बुरी

आदतोंसे यद्यपि पहिले तो शारीरिक शक्तिपर कोई प्रभाव प्रतीत नहीं हुआ परन्तु दिमाग़ी ताक़तमें साफ साफ कमज़ोरी नज़र आने लगी। आधा घण्टेसे अधिक लगातार पढ़ने लिखने अथवा सोचने विचारनेका कार्य कठिन प्रतीत होने लगा।

शराबखोरीको अन्तिम नमस्कार।

इसी प्रकार संवत् १९४१ का अन्त समय समीप आ गया। पौषके अन्तमें पता लगा कि एक वर्षके बाद कोई भी व्यक्ति बिना बी० ए० पास किये वकालत (प्लीडर) की परीक्षामें सम्मिलित न हो सकेगा। और यह वकील जरूर बनना चाहते थे, क्योंकि मुख़तारको सब मुकद्दमोंमें पैरवी करनेका अधिकार न था। अदालत जब जिस मुकद्दमेमें चाहे उसे पैरवी करनेसे रोक सकती थी। इसलिये इन्होंने वकालतकी परीक्षा देनेका निश्चय कर लिया और लाहोर जाकर उक्त श्रेणीमें नाम भी लिखा दिया। परन्तु 'हम-प्याला हम-निवाला' दोस्तोंकी दावतों ने नयी मुश्किल पेश कर दी। रोज ही गोश्त और शराबके दौरे चलने लगे। रोज ही लाहोरके लिये रवाना होनेका इरादा होता और रोज ही नयी दावत रास्तेमें खड़ी हो जाती। लेकिन जिसको किसी ऊंचे लक्ष्य पर पहुंचना हो उसके मार्गको इस प्रकारकी तुच्छ बाधायें सदाके लिये नहीं रोक सकतीं। अन्तको एक दिन आया जब कि शराबको मुन्शीरामसे सदाके लिये अन्तिम विदाई लेनी पड़ी। एक बार शामको किसी बड़े वकील के यहां निमन्त्रण था। वहां सबको मन भरकर शराब पिलायी

गयी । भोजनके अन्तमें और सब तो अपने अपने घर चले गये, केवल मुन्शीराम तथा इनके साथके अन्य एक मद्यप मित्र पीछे रह गये । यह मित्र पीकर बुरी तरह बेहोश हुए हुए थे । मुंशीरामजीने इनको सही सलामत घर पहुंचा देना अपना कर्तव्य समझा । यह सहारा देकर जब उनको ले चले तो तब रास्तेमें उनकी बुरी हालत देखी । पैर इधर उधर लड़खड़ाते जाते थे; शरीर झूम रहा था, मुखसे निरर्थक अप्रासंगिक निर्लज्जता भरे शब्दोंकी बौछार हो रही थी और कपड़ोंका कोई ठिकाना न था । रास्तेमें यह मित्र मुंशीरामजीका सहारा छोड़कर एक वेश्याके घर जा घुसे । वहां दोनों पर खूब गालियोंकी वर्षा हुई । खैर जब अपने मित्रको उनके घर पहुंचा कर डेरे पर आये तो यहां भी खुली हुई बोतल हाजिर मिली । फिर रंग जम गया । परन्तु अभी थोड़ा ही पीया था, कि जिनके यह अतिथि बने हुए थे, वह मित्र आपेसे बाहर होने लगे और अपने स्थानसे उठकर साथके कमरेमें चले गये । इधर इनका पीना वैसे ही जारी रहा । एक प्याला पीकर दूसरा भरकर तैयार था कि चिल्लानेकी एक आवाज आयी । साथके कमरेका दरवाजा खोलकर देखा तो बड़ा घृणित दृश्य दिखाई दिया । मद्यसे मतवाले मित्र महाशय एक युवति पर बलात्कार करनेकी चेष्टा कर रहे थे । मुन्शीरामजी की आखोंके सामने तुरन्त अपनी स्वीकृत (मानी हुई) बहिन और धर्मपत्नी शिवदेवीजीका चित्र उपस्थित हो गया । शराबी मतवालेको पकड़कर एक तरफको

ढकेल दिया। बेचारी युवती अपना सतीत्व बचाकर दूसरे घरमें चली गयी। बाहर आकर बैठे तो पिछले जीवनमें शराबियोंकी जितनी दुर्दशायें देखी थीं वे सब सम्मुख उपस्थित हो गयीं। विचार किया कि इस बोतलको समाप्त कर फिर कभी शराबको हाथ न लगावेंगे। गिलास भरकर तैयार किया ही था कि स्वामी दयानन्दकी विशाल मूर्ति कौपीन लगाये, विभूत रमाये, हाथमें लोटा लिये आँखोंके सामने खड़ी दिखायी दी। ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो स्वामीजी पूछ रहे हैं कि क्या अब भी तुमको परमात्मा पर विश्वास नहीं हुआ! होशमें आनेपर देखा कि मूर्ति तो कहीं न थी किन्तु अब हृदय हिल चुका था। गिलास और बोतलको उठाकर सामनेकी दीवारमें दे मारा। मनमें तीव्र आत्मग्लानि हो आयी। मुंह हाथ धोकर आत्म-चिन्तन करने लगे और उसीमें नींद आ गयी। सुबह उठे तो तबियत साफ हो गयी थी। शौच स्नानादिसे निवृत्त होकर सब सामान साथ ले सीधे स्टेशनकी ओर चल दिये और लाहोरका टिकट लेकर रेलगाड़ीमें बैठ गये। सारा रास्ता आत्म-चिन्तनमें ही निकल गया और इसलिये समय बीतता प्रतीत भी न हुआ। लाहोर पहुंचकर अपना सब सामान पहिलेसे ठीक किये हुए कमरेमें सजा करके रख दिया। तब रात हो चुकी थी। इस कारण थोड़ी देर कुछ पढ़ा लिखा और फिर निद्रादेवीकी शरण ली। दूसरे दिन प्रातःकाल उठे तो तबियत और भी हरी मालूम हुई। शरीर और मनमें स्फूर्ति थी। दृढ़संकल्प कर लिया कि अबसे नियमित जीवनका पुनः आरम्भ होगा।

सातवां अध्याय।

आर्यसमाजमें प्रवेश।

लाहोरमें रहकर प्लीडरकी परीक्षाकी तैयारीके लिये नियमपूर्वक कानूनका अध्ययन आरम्भ हो गया। साथही नियमपूर्वक अध्ययनके लिये आवश्यक दिनचर्याका नियम भी वैसेही चलने लगा जैसे एक वर्षतक बनारसमें चला था। भेद केवल इतना था कि अब प्रातःकालके व्यायामके स्थानपर भ्रमण होता था और नित्य मन्दिरोंमें देव-दर्शनके स्थानमें प्रति रविवारको प्रातः सायं आर्यसमाज और ब्राह्म समाजके सत्संगोंमें जाकर उपदेश श्रवण करते थे। ब्राह्मसमाजके स्थानीय उपदेशक और आचार्य श्री० शिवनाथ शास्त्रीके भक्ति-रस-पूर्ण व्याख्यानोंका इन दिनों आपपर विशेष प्रभाव हुआ और ब्राह्मसमाजकी ओर इतना अधिक झुकाव हो गया कि ब्राह्म-समाज सम्बन्धी साहित्यके प्रायः सभी ग्रन्थोंको खरीदकर आपने उनका नियमपूर्वक स्वाध्याय आरम्भ कर दिया। आप इन ग्रन्थोंको पढकर ब्राह्म-समाजमें प्रवेशकी तैयारी कर रहे थे कि पुनर्जन्मके प्रश्नने रास्तेमें रोड़ा अटका दिया। उस समय लाहोरके लाला काशीरामजीने

पुनर्जन्मके खण्डनपर एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी। उनसे मिलकर इस विषयपर शङ्का-समाधान किया परन्तु मनको संतोष न हुआ। तब विचार किया कि आर्यसमाजियोंका मत जानने के लिये 'सत्यार्थप्रकाश' का अध्ययन करना चाहिये। उसी समय 'सत्यार्थ प्रकाश' खरीदनेके लिये आर्यसमाज बच्छोवाली पहुंचे। वहां मालूम हुआ कि पुस्तकालयाध्यक्ष लाला केशवराम जी हैं, उन्हींसे पुस्तक मिल सकेगी। दो घण्टे इधर उधर भटक कर लाला केशवरामजीका मकान तलाश किया परन्तु वहांसे पता लगा कि लालाजी तारघरमें काम करते हैं और वहां उनसे मुलाक़ात हो सकेगी। तारघर पहुंचे तो वहां जलपानके लिये छुट्टी हो चुकी थी इसलिये लालाजी घरपर आ गये थे। फिर घरपर आये तो लालाजी तारघर चले गये थे। पूछनेसे मालूम हुआ कि डेढ़ दो घण्टा बाद तारघर बन्द होगा तब लालाजी घर वापिस आवेंगे। इतना समय वहीं आस पास घूमनेमें बिताया। जब लालाजी तारघरसे आये तो उनसे प्रार्थना की कि मुझे 'सत्यार्थप्रकाश'की आवश्यकता है। लालाजीने कहा कि मुख हाथ आदि धोकर कुछ खा लूं तो आपके साथ आर्यसमाज चलता हूं। परन्तु जब उनको अपने सुबहसे इसीकी खोजमें भटकनेकी कथा सुनायी तो लाला केशवरामजीका हृदय सहानुभूतिसे भर आया और बोले कि चलिये पहिले आपको पुस्तक दे दूं तब अपना काम करूंगा। मुंशीराम फिर लाला केशवरामजीके साथ आर्यसमाज पहुंचे और 'सत्यार्थप्रकाश' लेकर इतने प्रसन्न

हुए मानो कि कोई अक्षय कोश पा लिया। घर आते ही उसी रातको 'सत्यार्थप्रकाश'की भूमिका और प्रथम समुल्लास पढ़ डाले। इसी सप्ताह जो रविवार आया उसके प्रातःकाल ही आर्यसमाज लाहोरके सभासद लाला सुन्दरदासजी आये और हाल चाल पूछा। उस समय भी मुन्शीरामजी 'सत्यार्थ प्रकाश' का आठवाँ समुल्लास पढ़ रहे थे। सुन्दरदासजीसे कहा कि पुनर्जन्मके प्रश्नने फैसला कर दिया, अब मैं बिना किसी संशयके आर्यसमाजका सभासद बन सकता हूं। लाला सुन्दरदासजी का मुख प्रसन्नतासे खिल गया और उसी समय दोनों व्यक्ति आर्यसमाजके सत्सङ्गमें उपस्थित होनेको चल दिये। आर्यसमाज में पहुंचे तो दो मुसलमान रबाबी सारङ्गी और तबलेके साथ गा रहे थे:—

'उतर गया मेरे मनदा सांसा, जब तेरे दरसन पायो।'

यह भजन भी बिल्कुल समयानुकूल था। मुंशीरामजी अभी समाजमें जाकर बैठे ही थे कि लाला सुन्दरदासजीने उस समयकी लाहोर आर्यसमाजके कर्णधार लाला साईंदासजीको जाकर खबर दी कि मुंशीराम भी आर्यसमाजी बन गये हैं। लाला साईंदासजी भी बड़े प्रसन्न हुए और उसी समय हाथके इशारेसे मुंशीरामजीको बुलाकर अपने पास बैठाया। गान हो चुकनेपर भाई दित्तसिंहजी का व्याख्यान हुआ। इन्होंने अपने व्याख्यानकी समाप्तिपर मुंशी-रामजीके समाज प्रवेशका भी जिक्र कर दिया। फिर भाई जवा-हरसिंहजी खड़े हुए। उन्होंने भी इसी विषय पर बोलते हुए

बतलाया कि मुंशीरामजीका उनसे तथा भाई दित्तसिंह से पुराना सम्बन्ध है। वे तीनों 'सर्वहितकारिणी सभा' में मिलकर विचार-विनिमय आदि करते रहे हैं। भाई जवाहरसिंहजीने अन्तमें यह भी कह दिया कि मुंशीरामजी अपने विचारोंको आर्य भाइयोंके सन्मुख उपस्थित करेंगे। यह सूचना उन्होंने मुंशीरामजी से पूछे बिना ही दे दी थी। इस कारण मुन्शीरामजीने, उस समय मनमें जो विचार घूम रहे थे, उन्हींको प्रकट कर दिया। विचारोंका सारांश इतनाही था कि "हमारे विचारों और कार्योंमें कोई भेद न होना चाहिये। जो पुरुष अपने जीवनमें अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल आचरण नहीं करता वह उपदेशक बननेका अधिकारी नहीं। उपदेशकीका काम भाड़ेके टट्टुओंसे नहीं हो सकता' इस कामके लिये स्वार्थ त्यागी पुरुषोंकी आवश्यकता है।" इन विचारोंको सुनकर लाला साईंदासजीने अपनी मित्र-मण्डलीमें कहा था कि"आर्यसमाजमें यह नयी स्पिरिट आयी है देखें यह आर्यसमाजको तारती है या डुबो देती है।" मुन्शीरामजी की स्पिरिटने आर्यसमाजको तराया है या डुबाया, इसपर विचार करना हमारा काम नहीं, क्योंकि हम आर्यसमाजका इतिहास लिखने नहीं बैठे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने अपने आर्यसमाजमें प्रवेश करते समय जो विचार प्रकट किये उनका अपने जीवनमें पूरा पूरा पालन किया। मुन्शीरामजीका जिन सिद्धान्तों पर विश्वास था उन पर उन्होंने अपने जीवनमें सब प्रकारकी विघ्न बाधाओंकी परवाह न करके अमल किया यह

उनकी आगेकी जीवनसे स्पष्ट हो जायगा।

उत्साहके प्रथम चिन्ह।

उस दिन आर्यसमाज मन्दिरसे यह सारी मित्र-मण्डली एक संग ही डेरेपर लौटी, क्योंकि मु'शीरामजी रायज़ादा भक्तराम, म० मुकुन्दराम और महाशय रामचन्द्रजी होशियारपुरी आदि सब अहाता रहमतखां अनारकलीमें इकट्ठे हो रहा करते थे। इन सब के भोजनका प्रबन्ध भी इकट्ठा ही था। मु'शीरामजी तो वकालत की तैयारी कर रहे थे और बाकी चारों सज्जन उस समय गवर्नमेण्ट कालिज लाहौरमें पढ़ते थे। आर्यसमाजका उत्साह घरपर भी जारी रहा। रास्तेमें भी उसी विषयपर बातचीत होती रही और घरपर भी बातचीतका प्रसङ्ग वही रहा। सबने मिलकर निश्चय किया कि सप्ताहमें एक वार शहरके किसी हिस्सेमें बिना इश्तहारके सब पहुंचा करें और समाजका प्रचार किया करें। इस निश्चयपर कुछ समय तक अमल भी होता रहा।

इधर रायज़ादा भक्तरामजीने मु'शीरामजीके आर्यसमाजी बनने का समाचार अपने बड़े भाई लाला देवराजजीको जालन्धर लिख भेजा, जिसके उत्तरमें देवराजजीने लिखा कि मैं तो प्रधानपद छोड़ कर जालन्धर आर्यसमाजका मन्त्री बन गया और मुन्शीरामजीको प्रधान बना दिया गया है। जब रायज़ादा भक्तरामजीने यह बात मु'शीरामजीको बतलायी तो उन्होंने बहुत ही संकोच और विचारके बाद इस उत्तरदातृत्व-पूर्ण पदको स्वीकार किया। साथ ही इस दृष्टिसे कि मैं अपनी ज़िम्मेवारीको पूरी २ तरह

निभा सकूं', 'सत्यार्थ प्रकाश' का स्वाध्याय नियम से शुरू कर दिया। इसी स्वाध्यायके प्रसङ्गमें जब दसवें समुल्लासमें भक्ष्याभक्ष्यका प्रकरण पढ़ा तो मांस भक्षणके विरुद्ध मनमें नाना प्रकार के भाव उठने लगे। अन्तको इस समस्याका भी एक दृश्यने फैसला कर दिया।

मांस-भक्षणका त्याग।

इन दिनों नित्य प्रातःकाल भ्रमणको जानेका नियम तो था ही। होलीमें चार पांच दिन पूर्व एक बार बाहरसे घूमकर वापिस लौट रहे थे, कि अनारकलीमें एक आदमी को मांससे भरा हुआ टोकरा सिरपर उठाकर जाते हुए देखा। वह आदमी मांसके बोझसे दबा जा रहा था और मांसके लोथ व टाङ्गे आदि टोकरेसे बाहरको लटककर बड़ा बीभत्स दृश्य उपस्थित कर रही थीं। प्रातःकाल खुली हवामें प्रकृतिकी शान्त परिस्थितिमें घूमने के कारण मनपर जो शान्ति और आह्लादका प्रभाव पड़ा हुआ था उसने इस मांसवाले दृश्यके प्रति बड़ी ग्लानि उत्पन्न कर दी। घर पहुंचकर नित्यक्रियासे निवृत्त हो अपने नियमानुसार 'सत्यार्थ-प्रकाश' का स्वाध्याय आरम्भ किया। आज स्वाध्यायमें दशम समुल्लासकी बारी थी। भक्ष्याभक्ष्यका प्रकरण पढ़नेपर फिर वही प्रातःकालका घृणित दृश्य आंखोंके सामने आया। इसी विचार और स्वाध्यायमें भोजनका समय हो गया। सब सदाकी भांति एक सङ्ग भोजन करनेको बैठे। अन्य खाद्य पदार्थोंके साथ मांस भी परोसा गया। मांस कांसेके कटोरेमें आया था

मुन्शीरामजी अपने ही विचारमें मग्न थे। मांसके विरुद्ध अनेक संकल्प विकल्प मनमें उठ रहे थे। माँसका कटोरा सामने आते ही तुरन्त उसे सामनेकी दीवारमें दे मारा। कटोरा टूटकर कई टुकड़े हो गया। सब साथी आश्चर्यितसे होकर पूछने लगे, हैं,! क्या हो गया। मक्खी पड़ गयी थी क्या?' इत्यादि। किसी किसीने बेचारे रसोइयेको भी डांट बतलायी। मुन्शीरामजीने कहा कि बेचारे रसोइयेको कुछ मत कहो, एक आर्यके लिये मांस भक्षण भी पाप है, मैं अपनी थालीमें मांसकी कटोरी रखी हुई नहीं देख सकता। इस घटनाके बादसे निरामिष-भोजियोंकी संख्या बढ़ गयी। महाशय रामचन्द्रजी और लाला मुकुन्दराम तो पहिले ही निरामिषभोजी थे। उस दिनसे जो मांस छूटा तो सदाके लिये उससे विदा ले ली।

जालन्धरमें पहिला व्याख्यान।

होलियोंकी छुट्टियोंमें मुंशीरामजी जालन्धर गये। आर्य-समाजी बननेके बाद जालन्धरकी यह प्रथम यात्रा थी। लाला देवराजजीने इन को आर्यसमाज का प्रधान बनाकर जालन्धर के आर्य-पुरुषोंमें इनसे मिलनेके लिये विशेष उत्सुकता उत्पन्न कर दी थी। जालन्धर पहुंचने पर लाला देवराजजी आदि आर्य पुरुषोंने इनका उत्साह-पूर्वक स्वागत किया और इनके व्याख्यान का नोटिस भी दिया गया। व्याख्यानका विषय था 'बाल-विवाह की हानियां और ब्रह्मचर्य्यका महत्व।' लाला देवराजजी आदि ने इस व्याख्यानके लिये इस कारण भी विशेष यत्न किया था

कि उस समय तक जालन्धर आर्यसमाजमें अधिकतर नौजवान आदमी ही शरीक हुए थे और मुंशीरामजी मुख्तार बनकर एक वर्ष तक मुख्तारी कर चुके थे। सो इनके व्याख्यानसे वे यह दिखाना चाहते थे कि आर्यसमाजमें अनुभवसे कोरे जोशीले नौजवान ही नहीं; अनुभवी संसारी आदमी भी सम्मिलित हैं। मुंशीरामजी के इस व्याख्यानमें जालन्धरके बड़े बड़े वकील और बूढ़े आदमी भी सम्मिलित हुए थे। व्याख्यान हो चुकने पर जब सब लोग अपने अपने स्थानको वापिस जा रहे थे तब लाला देवराजजी के पुराने पाचक (रसोइया) ने मुन्शीरामको बधाई दी कि लाला देवराजके पुत्र गन्धर्वराजकी सगाई लाला भवानीदास मुनसिफकी पुत्रीसे हो गयी है। इसपर बाबू मदनगोपाल वकील आदि खूब खिल खिलाकर हंसने लगे। बेचारा रसोइया घबरा गया कि बात क्या है और सुनने वाले भी सब अचम्भेमें रह गये बाबू मदनगोपालजीने हंसते हंसते कहा कि वाह महाशयजी आपके व्याख्यान का मुझपर तो खूब असर हुआ। वाह !! वाह !!! बात यह थी कि मुन्शीरामजी का व्याख्यान तो बाल-विवाहकी हानियोंपर हुआ और उन्हींके मित्र और सम्बन्धी लाला देवराजजीके एक वर्षके पुत्र गन्धर्वराजकी सगाई लाला भवानीदासजी की सवा वर्ष की पुत्रीसे हुई थी। इस घटनासे लाला देवराजजी और मुन्शीरामजी को बहुत लज्जित होना पड़ा। उस समय तो लाला देवराजजी चुप रहे परन्तु पीछेसे उनके दृढ़ता दिखाने पर यह सम्बन्ध टूट गया। और उनके पुत्र गन्धर्वराजका विवाह २५

वर्षकी आयुमें ही हुआ।

इस व्याख्यानके अनन्तर मुन्शीरामजी फिर लाहोर जाकर अपने कानूनके अध्ययनमें लग गये और और अध्ययनके साथ साथ ही आर्यसमाज और ब्रह्मसमाजके सत्सङ्गोंमें भी शामिल होते रहे। सत्संगोंके अतिरिक्त सप्ताहमें एक वार किसी चौरस्ते पर पहुंचकर आर्यसमाजके प्रचारका नियम भी इन दिनों बराबर जारी रहा। मुन्शीरामजीके अध्ययनमें एक विशेषता यह थी कि वह केवल अपनी कालिजकी पुस्तकोंपर ही संतोष नहीं करते थे, परन्तु उसी विषयको अन्य पुस्तकोंको भी, जहां कहींसे वे मिल सकती थीं, अवश्य देखते थे। और फिर इन दिनों तो उनका लक्ष्य ही यह था कि किसी दिन लाहोर चीफकोर्टकी जजी प्राप्त करनी है।

प्रथम धार्मिक परीक्षा।

सम्वत् १९४२ में जब सत्रान्तावकाश हुआ तो मुंशीरामजी जालन्धर चले आये और आर्यसमाजके प्रचार आदिमें भाग लेने लगे। परन्तु थोड़े दिन बाद ही पिताजीको बीमारीका समाचार पानेपर तलवन जाना पड़ा। लाला नानकचन्दजीको अर्धाङ्ग रोग हो गया था। योग्य वैद्योंसे इलाज करानेपर यह रोग उस समय तो शान्त हो गया परन्तु एक वर्ष पीछे फिर उठ खड़ा हुआ और उसीके कारण उनके जीवनका अन्त हो गया। मुन्शी-रामजीने इस रोगका कारण लिखा है कि तीस वर्षतक तो लगा-तार लाला नानकचन्दजी को घुड़सवारी और घूमने घामने आदि

चुस्तीके काम करने पड़े परन्तु पेंशन मिलनेपर उन्होंने भ्रमण करना तक छोड़ दिया था। इस व्यायामके अभावने ही उनके शरीर को रोगी बना दिया।

पिताजी का रोग शान्त हो जाने पर भी मुन्शीरामजी तलवन में रहकर उनकी सेवा करने लगे। इसी समय ज्येष्ठ निर्जला एकादशीका त्यौहार आया। कहनेको तो इस त्यौहारका नाम निर्जला एकादशी है परन्तु हिन्दू लोग इस दिन असाधारण परिमाणमें पानी गलेसे नीचे उतार जाते हैं। लाला नानकचन्दजी बड़े नैष्ठिक हिन्दू थे। वे जहां अपने देवी देवताओंकी पूजा नियम से करते थे वहां मुसलमानी पीरोंकी कब्रोंको पूजना बेहूदापन समझते थे और उन्होंने कई हिन्दुओंसे यह बेहूदा काम छुड़ाया भी था। निर्जला एकादशीका त्यौहार आनेपर उन्होंने कई झज्झरें मंगवाई और उनमें जल भरवाकर प्रत्येकपर खरबूजा मिठाई और दक्षिणा रखकर एक पंक्तिमें सजाकर धर दिया, ताकि सारा परिवार एक साथ संकल्प पढ़ सके। मुन्शीराम इस पूजासे बचना चाहते थे इस कारण नीचे बैठकमें पुस्तक खोलकर बैठ गये। परन्तु इस तरह आंख मींचनेसे कबतक टल सकती थी? पिताजीका बुलावा वहीं पहुंचा और तब तो पूजा-स्थान पर उपस्थित होना पड़ा। पिताजीने कहा आओ मुन्शीराम हम तुम्हारी देरतक प्रतीक्षा करते रहे, तुमको आते न देखकर सबने संकल्प पढ़ लिया है, अब तुम भी संकल्प पढ़ लो तो मैं भी पढ़कर निवृत्त हो जाऊं। मुन्शीरामजीको स्पष्ट बात कहनेका उस

समय साहस नहीं हुआ। बोले कि संकल्पका सम्बन्ध तो मनसे है, जब आपने संकल्प किया है तो आपका दान है, जिसे चाहें दें मैंने इसी लिये आना आवश्यक न समझा था।

पिताजीने उत्तर दिया कि 'क्या मेरा धन तुम्हारा धन नहीं है ? तुमको भी तो उसमेंसे दान देनेका उतना ही अधिकार है।'

लाला नानकचन्दजी को अपने पुत्रके आर्यसमाजी बन जाने की खबर मिल चुकी थी। परन्तु तबतक वह इतना ही समझते थे कि पुत्र नास्तिकतासे अब आस्तिकताकी ओर आ गया है। फिर जब उन्होंने जालन्धरके व्याख्यानोंका हाल सुना तब अपने समधी राय शालिग्रामजीको लिखा कि लाला देवराजजी और मुंशीरामको हिन्दू देवी देवताओंकी निन्दासे रोकना चाहिये। इस समय वही बात उनको स्मरण हो आयी और स्पष्टतासे बोले कि 'क्या तुमको ब्राह्मण-पूजा और एकादशीपर विश्वास नहीं है?'

इस प्रश्न पर मुन्शीरामजीने भी दूसरा उपाय न देखकर उत्तर दिया कि "मुझे ब्राह्मणत्व पर तो विश्वास है, परन्तु जिन ब्राह्मणों का आप आदर करना चाहते हैं उनको मैं ब्राह्मण नहीं समझता और इस प्रकारकी एकादशीमें मेरा विश्वास नहीं है।"

इस उत्तरको पाकर लाला नानकचन्दजीको बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। वह इतना बोल कर चुप हो गये कि "मैंने तो बड़ी आशासे तुमको सरकारी नौकरीसे अलग किया था। तुमसे मुझको बड़ी आशा थी, क्या उसका फल मुझे यही मिलना था ! अच्छा जाओ !"

मुंशीराम नजर नीची किये चले आये। दो तीन दिनों तक पिताजीको नाराज करनेका बहुत दुःख रहा। इस दरम्यान पिताजीसे बातचीत भी नहीं हुई। परन्तु पिताजीने स्वयं ही बुलवाकर पहिलेकी भांति अंग्रेजीके पत्र आदि लिखवाना आरम्भ कर दिया। धीरे धीरे निर्जला एकादशीकी घटना भी सबको भूल गयी।

इन्हीं दिनों तलवनमें रहते हुए मुन्शीरामजीने 'सत्यार्थ-प्रकाश' 'पञ्चमहायज्ञविधि' 'आर्याभिविनय' पूरी और 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' के एक भागका अध्ययन किया। इस अध्ययनमें तलवनकी पाठशालाके अध्यापक काशीरामने भी योग दिया था। तलवन-ग्राममें केवल यही व्यक्ति संस्कृत जानता था और लाला नानकचन्दजी उसीसे अपनी रुचिके अनुसार धार्मिक ग्रन्थ पढ़वा कर सुना करते थे। काशीरामके साथ मिलकर स्वाध्याय करनेसे यह बड़ा लाभ हुआ कि उसने मुन्शीरामके लाहौर चले जाने पर स्वा० दयानन्दके वास्तविक सिद्धान्तोंका लाला नानकचन्दजीको परिचय करवाया और इससे उनकी उन सिद्धान्तोंपर भी श्रद्धा हो गयी। इस समय तक मुंशीरामके मद्य मांस उपन्यास-पाठादि अन्य व्यसन तो छूट चुके थे, परन्तु शतरञ्ज अभी नहीं छूटा था। बनारसमें बड़े बड़े शतरञ्जियोंसे इन्होंने शतरंज खेलना सीखा था। यद्यपि पठन पाठनमें लग जानेके कारण उसकी याद इनको नहीं आती थी, तथापि तलवनमें और काम न रहनेके कारण उसका शौक फिर ताजा हो गया। दूसरे तलवनमें इनके घरानेके मुसल-

मान उसताद भी अच्छे शतरञ्ज खेलनेवाले थे और जालन्धरमें लाला बालकरामजीको शतरञ्ज खेलनेका शौक था। इन दोनोंकी देखादेखी फिर शतरञ्जकी याद आ गयी और तलवनमें नित्य पांच छे घण्टे शतरञ्जमें व्यतीत होते रहे। इसी समय इन्होंने वृद्ध उसताद पीरबख़्श कलावन्तसे सितार पर भी कुछ भजनोंका अभ्यास किया था।

दूसरी परीक्षा।

जब छुट्टियां समाप्त हुई' और लाहौरको वापिस चलनेकी तैयारी हुई तब दूसरी परीक्षाका अवसर उपस्थित हुआ। मुन्शीराम जी अपना सब सामान गाड़ामें रखकर विदा होते हुए पिताजीको प्रणाम करने गये। उनके पिताजी की बैठक अपने बनवाये हुए मन्दिरकी ड्योढीके ऊपरके कमरेमें थी। वहां वह तकियेके सहारे बैठे हुए थे। मुन्शीरामजीने उनके चरणों में सिर रख कर प्रणाम किया। पिताजीने सिरपर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया परन्तु जब मुन्शीरामजी चलने लगे तब उन्होंने कहा अभी ठहर जाओ और पास खड़े हुए पहाड़ी नौकर भीमाको ईशारा किया। भीमाने मिठाई की थाली सामने लाकर उसमें एक अठन्नी रखदी। पिताजीने कहा 'जाओ बेटा, ठाकुर जीको माथा टेककर सवार हो जाओ। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रके पायक हनुमानजी तुम्हारी रक्षा करें।' परन्तु मुन्शीरामजी खड़े रह गये। न हिले न डुले और न कुछ बोले ही। पिताजीने समझा कि शायद अठन्नीको कम समझकर यह संकोच कर रहा है। उन्होंने

भोमाको कहा अठन्नी उठाकर रुपया रखदे। ऐसा होता देख-कर मुन्शीरामजीको अपना भाव प्रकट करना ही पड़ा। बोले कि 'पिताजी, यह बात नहीं। मैं अपने सिद्धान्तोंके विरुद्ध किस तरह आचरण कर सकता हूं। हाँ. सांसारिक व्यवहारों में आप जो आज्ञा दें उसको पालन करनेके लिये मैं तैयार हूं।'

यह सुनकर पिताजी पहिले तो चुप रहे। उनके मुखपर कई भावोंका चढ़ाव उतराव लक्षित हुआ और फिर क्रोध से बोले "क्या तुम हमारे ठाकुर जीको धातु पत्थर समझते हो।"

मुन्शीरामजीने जबाव दिया कि "मैं परमात्मासे नीचे आपको ही समझता हूं। किन्तु हे पिता, क्या आप चाहते हैं कि आप की संतान मक्कार हो ?"

इन शब्दोंका पिताजीपर कुछ असर हुआ और उन्होंने लड़-खड़ाती जबानसे कहा कि "कौन अपने पुत्रोंको मक्कार देखना चाहता है ?" इससे मुन्शीरामजीको कुछ आश्वासन मिला और उन्होंने साहस करके जबाव दिया कि "मेरे लिये तो ये मूर्तियां कुछ नहीं। यदि मैं इनके सामने सिर झुकाऊंगा तो यह मक्कारी ही होगी।" इसका पिताजीके पास कोई जवाब न था। निराशासे बोले, "हा ! मुझे विश्वास नहीं कि मरने पर मुझे कोई पानी देनेवाला भी होगा। अच्छा भगवान्, तेरी जो इच्छा!" यह सुनकर मुन्शीरामजी लज्जा और संकोचके मारे कुछ भी न बोल सके और न ही वहांसे हिल सके। अन्तको पिताजीने कहा, "अब जाओ, नहीं तो देर हो जायगी।" मुन्शीराम चुपचाप प्रणाम कर

के नीचे चले आये। अपनी गाड़ी तक पहुंचते पहुंचते उनके मनमें कई प्रकारके विचार उठे। उन्होंने सोचा कि जिस पिताके धार्मिक विचारोंसे मेरी सहमति नहीं, जिनको मेरे विचारोंके कारण अपनी मृत्युके बाद भी सुख-प्राप्तिमें सन्देह है और जिनके साथ रहनेसे उनको मेरे विचारोंके कारण सदा दुःख होगा, उनके धन को लेनेका भी मुझे क्या अधिकार हो सकता है? यह सब सोचकर पिताजीने जो पचास रुपये मार्ग व्ययादिके लिये दिये थे उनको एक कागजमें लपेट कर अपने एक सम्बन्धीको दे दिया कि दूसरे दिन पिताजीको वापिस कर दें। साथ ही एक संक्षिप्त सी चिट्ठी लिखदी कि जब मैं आपके मन्तव्योंके अनुकूल आचरण ही नहीं करता तब मुझे सुपात्रोंके धनमें से हिस्सा लेनेका भी कोई अधिकार नहीं। यदि जीवन शेष रहा तो अपनी भेंट आपके चरणों में रखूंगा हा। रुपये देकर गाड़ी पर सवार हो अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि पीछेसे वही सम्बन्धी घोड़े पर सवार हो सरपट आते हुए दिखाई दिये। मुन्शीरामजीने उनके लिये गाड़ी रोक दी। घुड़सवार सम्बन्धीने पचास रुपयोंकी पोटली वापिस करते हुए लाला नानकचन्दजीका यह जबानी सन्देसा सुनाया कि तुमने मेरे साथ प्रतिज्ञा की है कि सांसारिक व्यवहारोंमें तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध न चलोगे यह मेरी सांसारिक आज्ञा है कि इस रुपयेको ले जाओ और भविष्य में भी खर्चके लिये मुझसे रुपया मंगाते रहो।' पिताजीकी इस उदारतासे मुन्शीरामजीके मनको बड़ी शान्ति मिली। बात यों हुई थी जिस सम्बन्धीको मुंशीरामजी ने

रुपये दूसरे दिन पिताजीको सौंप देनेके लिये दिये थे, उसने दूसरे दिनकी प्रतिज्ञा न करके रुपये उसी समय लाला नानकचन्दजीको पहुंचा दिये थे और इस पर लालाजीने ऊपर वाला सन्देश भिजवाना आवश्यक समझा। इस प्रकार तलवनसे विदा होकर जालन्धर ठहरते तथा वहांके आर्यसमाजके अधिवेशन में सम्मिलित होते हुए मुन्शीराम लाहोर पहुंच गये।

परीक्षामें असफलता।

लाहोर पहुंचनेके दो तीन मास बाद ही कानूनकी परीक्षा होने वाली थी। इस लिये परीक्षाकी तैयारीका जोर था। सब विद्यार्थी दिनरात एक करके परीक्षाकी तैयारियों में लगे हुए थे। परन्तु मुन्शीरामजीको अपने धार्मिक समाजके लिये इतना उत्साह था कि परीक्षा सिरपर होने पर भी आर्यसमाजके सभी अधिवेशनों और सभी कार्रवाइयों में पूरा भाग लेते रहे। परीक्षा से ठीक दो सप्ताह पहिले मार्गशीर्षके मध्यमें (नवम्बर के अन्तिम शनिवार और रविवार को) लाहोर आर्यसमाजका वार्षिकोत्सव था। उसमें भी सम्मिलित हुए। इसी वर्ष आषाढ़ मासमें दयानन्द एंग्लो वेदिक स्कूल खुल चुका था। भियानी-निवासी लाला ज्वालाप्रसादजीने उसके लिये ८०००) दान किया था और महात्मा हंसराजजीने बहुत त्याग-पूर्वक स्कूलकी सेवा करनेकी प्रतिज्ञा की थी। समाजके वार्षिकोत्सवपर इस स्कूलके लिये पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थीने धनकी अपील की। इस व्याख्यानको सुन-

ही मुंशीरामजीका चित्त पंण्डित गुरुदत्त की ओर आकर्षित हो गया था।

परीक्षा अपने नियत समय पर हुई। मुंशीरामजीने अपने अभ्यासके अनुसार परीक्षासे दो दिन पहिले ही पढ़ना छोड़ दिया था। और केवल इतना ही नहीं, तीन घण्टोंके प्रश्नोंके उत्तर भी जहाँ आप डेढ़ घण्टों में ही लिखकर चले आते वहां अन्य विद्यार्थी पूरा समय लेकर भी समयकी कमीकी शिकायत करते रहते। जब लिखित परीक्षाके परचे हो चुके तो मौखिक परीक्षाकी बारी आयी। फौजदारी कानूनकी मौखिक परीक्षाके परीक्षक योगेन्द्रनाथ वसु थे। यह बड़े देशभक्त समझे जाते थे, परंतु इनकी परीक्षामें अधिकतर विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हुए। जब बहुतसे विद्यार्थी इनके पाससे अनुत्तीर्ण होकर आ चुके तब मुंशीरामजी की भी बारी आई। इनका पहिले ही प्रश्नपर परीक्षक योगेन्द्रनाथ वसु से कुछ वाद विवाद हो गया। जिसके कारण परीक्षकने इनको किसी भी प्रश्नको सोचनेके लिये एक मिनटसे अधिक समय नहीं दिया। यह प्रश्न ऐसा था जिसके विषयमें हाइकोर्टोंमें मतभेद था। मुंशीरामजीने इस प्रश्नपर पञ्जाबके चीफकोर्टके मतोंसे अपनी सम्मितिको भिन्नता प्रकट करते हुये मद्रास और कलकत्ता हाइकोर्टोंसे अपनी सहमति प्रकट की। इस उत्तर पर मुंशीरामजीको शून्य नम्बर मिला। सब मिलाकर इस मौखिक परीक्षामें पास होनेके लिये दो अङ्कोंकी कमी रही। इसके विरुद्ध दीवानी कानूनकी मौखिक परीक्षामें इनको ५० मेंसे ४५ नम्बर मिले।

इसके कारण परीक्षक माहिगिन्स नामके एक युरोपियन सज्जन थे। यह विद्यार्थियोंको प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये पर्याप्त समय देते थे और उत्तर देने को भी उत्साहित करते थे। मुन्शीरामने फौजी कानूनकी मौखिक परीक्षामें अनुत्तीर्ण होकर दीवानी कानूनकी परीक्षाके प्रश्नों को वेपरवाहीसे सुनना आरम्भ कर दिया था, परन्तु माहिगिन्स साहबके उत्साहित करने पर सब प्रश्नोंको भली भांति सुन कर और ठीक प्रकार सोच विचार कर उत्तर दिये, जिसका उपर्युक्त परिणाम निकला। परीक्षा हो चुकनेपर यह फिर जालन्धर चले आये और मुख़्तारीका काम शुरु करदिया।

पिताजीके विचारोंमें परिवर्तन।

जब मुंशीराम लाहोरसे जालन्धरको रवाना होने लगे थे तभी उनको अपने पिताजीका एक पत्र मिला था जिसमें उन्होंने लिखा था कि मैं भी तुम्हारे जालन्धर पहुंचने पर पेंशन लेने वहां आऊंगा और वहीं तुमको मिलूंगा। उन दिनों जालन्धरमें आर्य-समाजके अधिवेशन सायंकालको हुआ करते थे। जब शाम तक भी पिताजी न पहुंचे तब मुंशीराम एक नोकरको उनके आनेके रास्तेमें बिठाकर स्वयं आर्यसमाजके अधिवेशनमें सम्मिलित हो गये। उस दिन समाजमें व्याख्यान भी इन्हींका था। अभी व्याख्यान समाप्त करके नीचे आकर बैठे ही थे कि नौकरने आकर पिताजीके पहुंचनेकी खबर दी। मुंशीरामजी ने तुरंत जाकर अपने पिताजीकी गाड़ीको रास्तेमें ही पकड़ लिया और उनके

चरणोंमें नमस्कार किया। पिताजीने प्रश्न किया कि क्या आर्य-समाजका अधिवेशन समाप्त हो गया। मुंशीरामजीने संकोचके साथ जवाब दिया कि केवल आरती और शान्तिपाठ शेष रह गये थे। पिताजीने कहा कि तो जल्दी क्या थी, समाजका अधिवेशन समाप्त करके ही आना चाहिये था। आर्यसमाजके प्रति अपने पिताजीके इन भावोंको देखकर उस समय तो मुन्शीरामजीको आश्चर्य हुआ परन्तु दूसरे दिन इसका भेद खुल गया।

पहिले लिखा जा चुका है कि लाला नानकचन्दजी तलवन की पाठशालाके अध्यापक काशीरामसे धार्मिक ग्रन्थ पढ़वाकर सुना करते थे। मुंशीराम जब सम्वत्१६४२की वार्षिक छुट्टियोंके बाद लाहोर गये तो उनकी 'पञ्चमहायज्ञविधि' और 'सत्यार्थ-प्रकाश'ये दो पुस्तकें घरपर ही छूट गयी थीं। जब इनके पिताजीने ये पुस्तकें देखीं तो स्वभावतः इनके सुनने की उनको इच्छा हुई। लाला नानकचन्दजीने काशीरामजी को ये पुस्तकें देकर कहा कि 'पहिले इनको देख भाल कर लो, तब सुनाओ। हम निन्दायुक्त नास्तिकपनके ग्रन्थ नहीं सुनना चाहते।' पहिले यह लिखा ही जा चुका है कि काशीरामजी मुंशीरामजीके साथ मिलकर स्वाध्याय करते रहे थे। अतः वह पहिलेसे इन पुस्तकोंको भली भांति जानते थे। पहिले उन्होंने लाला नानकचन्दजी को ब्रह्मयज्ञका प्रकरण मन्त्रों और उनके अर्थों सहित सुनाया। इसी प्रकार क्रमशः 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लासकी बारी आयी। यह सब सुनकर लाला नानकचन्दजी को इन ग्रन्थोंमें बड़ी श्रद्धा हो गयी

और बोले कि, "पण्डितजी, हम तो अविद्यामें ही पड़े रहे। हमारा मोक्ष कैसे होगा ? हमने तो निरर्थक क्रियाएँ कीं। अबसे वैदिक सन्ध्या करेंगे।" इसके बाद उन्होंने अर्थों सहित स्वामी दयानन्द कृत सन्ध्याके मन्त्रोंको याद किया और पञ्चदेव मूर्तियोंकी पूजाके साथ साथ वैदिक सन्ध्या भी करने लगे।

अनुत्तीर्ण होते हुए भी उत्तीर्ण होना।

मुंशीरामजीके पिता अब उनके आर्यसमाजी होनेकी बातसे फिर बहुत प्रसन्न हो गये थे तथा उनको पुनः पूर्ववत् प्रेम करने लगे थे। पेंशन ले चुकने पर वह मुंशीरामजीको अपने साथ ही तलवन ले गये। अभी तलवनमें थोड़े ही दिन रहने पाये थे कि खबर लगी कि पञ्जाब यूनिवर्सिटीके रजिष्ट्रार लारपेण्ट रिशवत ले लेकर बहुतसे अनुत्तीर्ण विद्यार्थियोंको उत्तीर्ण कर रहे हैं मुंशीरामजीको भी इनके मित्रोंने ऐसा करनेके लिये प्रेरित किया परन्तु इन्होंने रिशवत देनेके स्थानपर लारपेण्ट साहबको एक चिट्ठी इस आशयकी लिखी कि यदि आप ऐसे विद्यार्थियोंको भी रिशवत लेकर पास कर देंगे जो अपना असफल होना स्पष्ट स्वीकार कर चुके हैं तो आपकी सब कलई समाचारपत्रोंमें खोल दी जायगी। उधर एक यूरेशियन विद्यार्थीने भी रिशवतखोर रजिष्ट्रारके पास पहुंच कर धमकी दी कि यदि मुझे पास न करेंगे तो मैं हो हुल्ला मचाकर आकाश पाताल एक कर दूंगा। परिणाम यह निकला कि रिशवतकी भेंट पूजा देने वालोंके अतिरिक्त भी बहुतसे विद्यार्थी पास हो गये। उन्हींमें मुंशीरामजीकी भी

गिनती थी। लारपेण्ट साहबकी इस अन्धेरगर्दीके कारण उन दिनों कानूनके विद्यार्थियोंको पास होने पर 'एल० एल०' की जो डिग्री दी जाती थी इसका अर्थ ही लोगोंने 'लाइसेंशियेट इन लौ' के स्थान पर 'लारपेन्शियन लायर' कर लिया था।

दो व्यवहारिक कठिनाइयोंका सामना।

मुख्तारी आरम्भ करते ही मुंशीरामजीके सामने दो ऐसी व्यवहारिक कठिनाइयां आयीं जो प्रायः लोगोंकी गिरावटका कारण बना करती हैं। मनुष्य समाजमें अधिक संख्या तो ऐसे ही व्यक्तियोंकी है जो अधर्मके मार्गपर नहीं चलना चाहते। परन्तु बहुधा समाजमें रहते हुये संसारके झूठे रीति रिवाज और मिथ्या व्यवहार व शिष्टाचार उनको इच्छाके विरुद्ध अधर्माचरण करने पर विवश कर देते हैं और वे व्यक्ति भी अभ्यासवश ऐसे कर्मों को व्यवहारका अङ्ग कहकर मनको सन्तोष दे लेते हैं, तथा क्रमशः उनकी विवेकशक्ति निर्बल होकर इस प्रकारके व्यवहारोंके विरुद्ध आवाज़ उठाना ही छोड़ देती है। मुंशीरामजीके सामने इस प्रकारकी पहिली कठिनाई यह आयी कि जब उन्होंने सूदोंके चौक में मकान किराये ले लिया और अपने मुंशी अमीरखांको एक साइनबोर्ड बनवाकर मकानके दरवाजेपर लटका देनेका हुक्म भेजा तब अमीरखांने अपने मालिकको प्रसन्न करनेकी आशा से साइनबोर्डपर "लीगल प्रेकटिशनर" (कानूनी व्यवसायी) शब्द लिखवा दिये। कोई साधारण संसारी मुख़्तार होता तो वह

इस प्रकारके साइनबोर्डको पसन्द ही करता, परन्तु मुंशीरामजीने ऐसा लिखना सचाईके विरुद्ध समझकर वह साइनबोर्ड उतरवा दिया। इसका फल यह हुआ कि फिर मुंशी अमीरखां ने कभी भी अपने मालिकके साथ असत्य व्यवहार नहीं किया।

दूसरी कठिनाई यह पेश हुई कि यद्यपि मुंशीरामजी स्वयं मद्य मांस खाना छोड़ चुके थे, तथापि उनके मिलने जुलने वाले मित्रों और परिचितोंमें अधिक संख्या मद्य-मांस-सेवियोंकी ही थी। एक बार इनके एक ऐसेही मित्रके यहां दावत थी। मित्र एकजीक्यूटिव इनजिनियर थे। इस कारण दावतमें बड़े बड़े वकील डिपटी कलेक्टर मुनसिफ और अन्य इनजीनियर आदि भी आये थे। इन सभ्य शिक्षित पुरुषोंने दिन दहाड़े स्वयं ही शराब नहीं पी, पर जब मुंशीरामजी वहां पहुंचे तब इनको भी जबर्दस्ती पिलानेका बीड़ा उठाया। इनके पहुंचतेही चारों ओरसे आवाजें होने लगीं 'अच्छा हाथ आया है,' 'अब मत जाने दो, आज इसका धर्म वर्म सब निकाल दो, पकड़ो इसे भी पिलाओ' इत्यादि। दो तीन आदमियोंने हाथ पांव पकड़ लिये और जबर्दस्ती शराब पिलानेका यत्न किया। परन्तु मुंशीरामजीको शराबसे इतनी घृणा हो चुकी थी कि प्याला मुंहके पास आते ही क़ै हो गयी और हाथ पांव थामनेवालोंके कपड़े ख़राब हो गये। इस घटनाके बाद किसीने कभी इनसे शराब पीनेका अनुरोध करनेका साहस नहीं किया और गिरावटका यह सामाजिक द्वार इनके लिये सदाको बन्द हो गया।

धार्मिक पुत्रपर पिताका असीम विश्वास

संवत् १९४३ के आरम्भमें मुंशीरामजीके पितापर अर्धाङ्ग रोगका दूसरी बार आक्रमण हुआ। पहिले तो एक साधुका इलाज आरम्भ हुआ परन्तु उसके मिथ्या वरतावके कारण उसपर से मुंशीरामजी और उनके पिता दोनोंका ही विश्वास दूर हो गया। यह साधु अपनेको सिद्ध बतलाता था और कहता था कि हम मंत्रसे चिकित्सा करते हैं। एक बार इसने आगके अङ्गारोंपर नङ्गे पांव चलनेका चमत्कार दिखलाया। यह सुनकर मुंशीरामजीने जलते हुए अङ्गारोंसे भरी हुई अंगीठी मंगवा कर साधुजीसे चमत्कार दिखलानेको कहा। इसपर साधुजीने डांट कर कहा कि हम चमत्कार अपने ही ढंगसे दिखलाते हैं। मुंशीरामने इन्हें वैसाही करनेको कहा तो साधुजीने गोबरके बहुतसे उपले मंगवाकर जलवाये और उनके जलकर राख दिखायी देने लगनेपर उनमेंसे एकमें अपनी एड़ी टेक दी। मुंशीराम समझ गये कि जब राखके कारण आंच धीमी पड़ जाती है तब यह अंगारोंपर पाँव रखता है। उन्होंने भी वैसाही करके दिखला दिया। तब तो साधुजीका सब रोब जाता रहा और उनको विदा करके एक डाक्टरका इलाज आरम्भ किया गया। पिताजीके रोगी होनेके कारण इन दिनों प्रति सप्ताह मुंशीराम दो एक रोजके लिये तलवन आया करते थे। एक बार उन्होंने अपने पुराने नौकर भीमाको ईशारा किया तो उसने एक पुलिन्दा सामने लाकर

रखा। पिताजीने मुंशीरामको उसे खोलनेकी आज्ञा दी। खोलकर देखा तो आश्चर्यमें रह गये। वह लाला नानकचन्दजीका वसीयतनामा था। उन्होंने उसमें अपने तीनों बड़े पुत्रोंको केवल मकान और जमीनका भाग देकर शेष सब नकद धन और आभूषणादि मुंशीरामको दिया था और इसके अतिरिक्त कई धर्मार्थ कार्य भी उन्हींके सपुर्द किये थे। परन्तु मुंशीराम अपने बराबरके भागसे अधिक कुछ न लेना चाहते थे। जब उन्होंने यह विचार अपने पिताजीके सामने प्रकट किया तब उन्होंने आश्चर्य प्रकट करके कहा कि हम पहिले तुम्हारे आर्यसमाज-प्रवेश से असन्तुष्ट हुए थे परन्तु अब हमें यह विश्वास हो गया है कि हमारी धार्मिक आशाओंको तुम्हीं पूरा करोगे। अन्तको इस विषयपर कुछ और वाद विवादके अनन्तर मुंशीरामजीने वह वसीयतनामा अपने पिताजीकी आज्ञासे फाड़ दिया। इस घटनासे पिताजीको और भी सन्तोष हुआ और उनको विश्वास हो गया कि मुंशीराम उनके कुलका नाम उज्वल करेगा।

पिताजीसे वियोग।

परन्तु इन दिनों उनकी शारीरिक अवस्था लगातार बिगड़ती जाती थी। जब डाक्टरी दवाईसे लाभ दिखायी न दिया तब यूनानी हकीमकी दवा शुरु हुई। आषाढ़के मध्य सप्ताहसे यूनानी इलाज शुरू हो चुका था। आषाढ़ मासके दूसरे शनिवारको जब मुंशीराम तलवन पहुंचे तब एक विचित्र घटना हुई। यूनानी हकी-

मने दवाईके साथ चूज़े (मुर्गीके बच्चे) का शोरवा पीनेको कहा था। जब वह लाला नानकचन्दजीको पीनेको दिया गया तो उन्होंने एक घूंट पीते ही थूक दिया और फिर १८ घण्टा तक कुछ न खाया।

उनके सबसे बड़े पुत्र चनोंका रसा बनाकर पिलानेको लाये परन्तु वह भी सन्देहके कारण न लिया। कहा कि यदि मुंशी-राम कह दे कि इसमें मांस नहीं है तो पीलूंगा, वह मेरे भले के लिये भी झूठ न बोलेगा। इस पर मुंशीरामजीने निश्चय करके बतलाया कि इसमें मांस नहीं है। तब लाला नानक-चन्दजी बिना किसी सन्देहके उसे पी गये। अवस्था लगातार बिगड़ती ही जाती थी। उन्होंने उपनिषदोंका पाठ करानेको कहा। मुंशीरामजी स्वयं उपनिषदोंका पाठ करने लगे। फिर कहा वैदिक हवन कराओ। आदमीको घोड़ीपर हवन सामग्री लानेके लिये जालन्धर भेजा गया। जब हवन सामग्री आनेमें देर होते देखी तब अध्यापक काशीरामको भजन बोलनेको कहा। काशीराम कृष्णभक्तिके भजन बोलने लगे। इसपर लालाजी बोले कि मुंशीजी जो स्वयं न छूटा वह दूसरोंको कैसे छुड़ायेगा कोई निर्वाण-पद बोलो। तब मुंशी काशीरामने सूरदासका एक निर्वाण-पद गाया। मुंशीरामजीने भी कबीरका एक भजन सुनाया। इससे उनको बहुत शांति मिली। नींद आगयी। जागने पर फिर वैदिक हवनके लिये कहा। परन्तु सामग्री अभी तक न आयी थी। पहिले तो अवस्था कुछ सुधरती दिखायी दी।

फिर एक दम बिगड़ गयी और १२ आषाढ़ १६४३ की रात्रिके नौ बजे उनके प्राणोंने भौतिक शरीर से विदा ले ली।

अंत्येष्टि और सम्पत्तिका बंटवारा।

मुंशीरामजीको भय था कि कहीं पिताजीकी अन्त्येष्टिको लेकर कोई झगड़ा तो उपस्थित न होगा, क्योंकि उनके सम्बन्धियोंमें इस विषय पर कानाफूसी शुरु हो गयी थीं और उनके सबसे बड़े भाईने अर्थीके लिये पौराणिक रीतिसे तैयारी भी शुरु कर दी थी।

परन्तु श्मशान-भूमिमें पहुंचते ही सब स्वयं अलग हो गये और मुंशीरामजीकी हिदायतोंके अनुसार सब संस्कार वैदिक विधिसे हुआ। इस समय तक हवन सामग्री लेकर आदमी जालन्धरसे वापिस आ गया था। उसका उपयोग भी इस संस्कारमें हुआ। संस्कारके अगले रोज मुंशीरामजीके सबसे बड़े भाईने गरुड़ पुराणकी कथा कराई और इन्होंने दूसरी ओर उसी समय उपनिषदोंका स्वाध्याय किया। कुछ दिन तो सम्बन्धियोंने विरोध किया परन्तु पीछे सब चुप हो गये।

बारह दिनके पश्चात् लाला नानकचन्दके विश्वासी नौकर भीमाने उनकी आज्ञानुसार सब चाबियां मुंशीरामजीके सामने रख दीं। इस पर इनके सब भाइयोंको तो यह सन्देह हुआ कि हमें भी सम्पत्तिमेंसे कुछ भाग मिलेगा वा नहीं और मुंशीरामजीने स्वयं ही सबको इकठ्ठा करके सारी सम्पत्तिका बंटवारा कर

दिया। बंटवारेमें भी पहिले इन्होंने अपने सब भाइयोंको संतुष्ट कर दिया और पीछे जो बच गया वह स्वयं लिया। इसके अनन्तर बरेली और बनारसकी जिन कोठियोंमें इनके पिताजीका रुपया जमा था उनसे नक़द धन जमा किया और दो मास पश्चात उसका भी विभाग कर दिया। तीनों बड़े भाइयोंने स्वयं तो नक़द रुपया लिया और बग्घी घोड़ा आदि जानवरोंकी पूरी कीमत लगाकर वे मुंशीरामजीके हिस्सेमें डाल दिये जिनके कारण इनका मासिक व्यय और भी बढ़ गया। विचार किया कि दशहरे पर जो मेला लगता है उसमें दो पशु बेच देंगे। परन्तु उन पशुओंके जालन्धर भरमें उत्तम होने पर भी उनके दाम लगाने वाला ग्राहक कोई न मिला।

आठवां अध्याय।

धार्मिक उत्साहके आरम्भिक दृश्य।

पिछले अध्यायमें मुंशीरामजीके केवल निजू जीवनका हाल आया है। परन्तु निजू जीवनके सिवाय भी इन दिनों उन्होंने कई ऐसे काम किये थे जिनसे उनके धार्मिक उत्साहका प्रमाण मिलता है। संवत् १९४३ से उन्होंने मुख्तारीका काम फिर आरम्भ कर दिया था। उधर उनके पिता रोगी थे इस कारण प्रति सप्ताह तलवन जाकर उनकी भी सुध लेनी पड़ती थी और तीसरी ओर वकालतकी परीक्षाकी भी चिन्ता थी। परन्तु इन सब कार्योंके सिर पर होते हुए भी वह आर्य समाजका कार्य बड़े उत्साहसे कर रहे थे। साप्ताहिक अधिवेशनोंमें धार्मिक चर्चा करनेके सिवा अपने समाजके विरोधियोंके मुकाबले और प्रचारका काम भी जारी था।

प्रथम शास्त्रार्थ।

इसी वर्षके चैत्र वैशाखमें अमृतसरका श्यामदास नामका कोई पण्डित जालन्धर आया और उसने आर्यसमाजियों तथा उनकी संस्थाके विरुद्ध बहुत विष फैलाना आरम्भ किया। उस

समय मुंशीरामजी अपने पिताजीको देखने तलवन गये हुए थे। जब वहांसे जालन्धर वापिस लौटे तब आर्यसमाजिओंने धार्मिक पदाधिकारियोंकी बेपरवाहीकी शिकायत करते हुए बतलाया कि किस प्रकार श्यामदासने शहरमें अशांति मचायी हुई है। मुंशीरामजीने उसी समय सब आर्य भाइयोंसे सलाह करके श्यामदासको शास्त्रार्थके लिये पत्र लिख कर तारीख नियत कर ली परन्तु तब तक आर्य समाजकी ओरसे जो कोई व्याख्यान या शास्त्रार्थ होते थे सबकी बागडोर लाहोरके आर्यसमाजी नेताओंके हाथमें रहती थी। अन्य आर्यसमाजोंको न तो शास्त्रार्थ करनेका अधिकार समझा जाता था और न उनके पास इस कार्यके लिये कोई विद्वान् ही थे। इस कारण मुंशीरामजीने अपने मुंशी काशीरामको एक चिट्ठी देकर लाहोर भेजा कि किसी पण्डितको आर्यसमाजका पक्ष लेकर शास्त्रार्थ करनेके लिये भेज दिया जाय लाहोरके लाला साईंदासजी आदि आर्यसमाजी नेताओंने सहायता तो कुछ भी न दी, उलटा जालन्धरी आर्यसमाजियोंके साहसको अनधिकार चेष्टा बतलाकर, उसकी निन्दा की। मुंशी काशीराम स्वयं भी आर्यसमाजी था। इस कारण वह हिम्मत न हारा और अमृतसरसे लाजपत नामके एक नौजवान संस्कृत विद्यार्थीको लेता आया। मुंशीरामजीने उसको वैदिक भाष्यमें से प्रमाण आदि संग्रह करने पर लगा दिया। शास्त्रार्थके समय आर्यसमाजियोंकी ओरसे संस्कृतमें भाषण वही करता था। परन्त पं० श्यामदासने बीचमें ही लोगों पर प्रभाव डालनेके लिये

हिन्दीमें भाषण आरम्भ कर दिया। फिर क्या था; मुंशीरामजी स्वयं आर्यसमाजकी ओरसे भाषण करने लगे। इसका फल यह हुआ कि आर्यसमाजियोंके हौसले खूब बढ़ गये और वह प्रत्येक कार्यके लिये लाहोर वालोंका मुंह न देखकर स्वयं भी व्याख्यान शास्त्रार्थ आदि करने लगे। तबसे यह प्रथा ही उठ गयी कि जिस आर्यसमाजको कोई काम करना हो वह लाहोर दौड़ कर जाय।

स्वाध्यायमें नवीन नियम।

इसी शास्त्रार्थ से अनुभव पाकर मुंशीरामजीने यह भी निश्चय किया कि अपने धर्मकी रक्षाके लिये अपने शास्त्रोंका नियम पूर्वक 'स्वाध्याय' आवश्यक है अतः नित्य कुछ न कुछ समय स्वाध्यायका अवश्य दिया करेंगे। इस संकल्पका पालन भी मुंशीरामजीने इसी समय से आरम्भ कर दिया था। परन्तु चार पांच वर्षबाद आर्यसमाजमें नयी दलबन्दियां खड़ी हो जाने पर उनमें समयका बहुतसा व्यर्थ व्यय होनेके कारण यह नियम टूट गया।

जाति-बहिष्कारकी धमकी।

शास्त्रार्थके बाद जब पं० श्यामदासने देखा कि आर्यसमाजका प्रभाव और भी बढ़ गया है और उसके सभासदोंकी संख्या निरन्तर बढ़ती ही जा रही है तो उसने एक नया झगड़ा जाति-बहिष्कारका खड़ा किया। उसने बहुतसे ब्राह्मण-नाम-धारी आचार्यपतियोंको इकट्ठा करके उनकी एक पञ्चायत रचाई और यह प्रसिद्ध किया कि इस पञ्चायतमें आर्यसमाजियोंको बिरादरी से

अलहदा करनेपर विचार किया जायगा। परन्तु इधर आर्यसमाजी भी हाथपर हाथ धरकर नहीं बैठे थे। उन्होंने विरोधियों की जड़में ही प्रहार किया। लाला देवराजजीने यज्ञोपवीत एक नैयायिक पण्डितसे लिया था। उसके विषयमें प्रसिद्ध था कि उसका अपनी किसी सम्बन्धिनी स्त्रीसे आचार-विरुद्ध सम्बन्ध है। एक दूसरे प्रतिष्ठित पण्डित भी किसी अन्य ही व्यभिचारके दोषी थे। पञ्चायतके तीसरे कर्णधार पक्के जुएबाज थे। लाला देवराजजी मुंशीरामजीको साथ लेकर अपने गुरु नैयायिक पंडितके पास पहुंचे और बोले कि पण्डितजी जो लोग इस प्रकार व्यभिचारादि पापोंमें लिप्त हों पहिले उनका मुंह काला करके उन्हें गधोंपर चढ़ाकर नगरसे बाहर कर दिया जाय तब हमारे विषयमें किसीको कुछ कहनेका साहस करना चाहिये। इधर लाला देवराजजीने धर्मके ठेकदारोंको इस प्रकार दबाया और उधर जिन पुराने खानदानी व्यक्तियोंके पुत्र जामाता आदि सम्बन्धी आर्यसमाजी थे उन सबने मिलकर ऐसे जन्म-ब्राह्मणोंके नाम लिखने शुरु किये जिनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था और जो धर्मकी मामूली क्रियाओं तकसे अनभिज्ञ थे। आर्यसमाजियोंकी यह तैयारी देखकर पञ्चायतियोंकी सेनामें भगदड़ मच गयी श्यामदास उसी दिन डेरा-डण्डा समेटकर अमृतसर चल दिया और बेचारे नैयायिक पण्डित प्रातःकाल ही जनेऊसे कान लपेट कर हाथमें लोटा ले जो शौचके लिये बाहर निकले तो सायंकाल से पहिले न लौटे। ऐसी हालत में पञ्चायत क्या होती। जिन

लोगोंने जाति-बहिष्कारका यह व्यूह रचा था वे अपना सा मुंह लेकर रह गये।

इस घटनाके अनन्तर एक बार फिर जालन्धरके पौराणिक हिन्दू अमृतसर पहुंचे और पं० श्यामदासको नयी दक्षिणाका प्रलोभन देकर जालन्धर लाये। परन्तु इस बार मुंशीरामजी जालन्धरमें मौजूद थे। पं० श्यामदासके व्याख्यान में स्वयं जाकर उपस्थित हुए। श्यामदासने अपने व्याख्यानमें किसी विषयपर स्वामी दयानन्दका पूर्वपक्ष "सत्यार्थप्रकाश"में से पढ़कर सुनाया और उसीके सहारे आर्यसमाजियोंकी हंसी उड़ानेकी चेष्टा की, परन्तु मुंशीरामजीने बीचमें ही खड़े होकर उत्तर पक्ष पढ़नेपर भी जोर दिया। श्यामदास टालमटोल करने लगा। तब मुंशीरामजी स्वयं प्लेटफार्मपर चले गये और श्यामदासके हाथसे पुस्तक लेकर उत्तर पक्ष भी श्रोताओंको पढ़ सुनाया। इससे श्रोतृमण्डलपर बड़ा प्रभाव पड़ा। व्याख्यानकी समाप्ति पर आर्यसमाजियों ने ऐलान कर दिया कि कल आर्यसमाज-मन्दिरमें पं० श्यामदासके व्याख्यानोंका खण्डन होगा, और साथ ही इस खण्डनके समय पं०श्यामदासकोभी आनेका निमन्त्रण दिया।

दूसरे दिन जब आर्यसमाजियोंकी सभा हुई तो आरम्भमें तो केवल २००-३०० ही आदमी थे, परन्तु जब लोग पं० श्यामदास को बुलाकर लाये तो उनके साथ दो तीन हजार आदमी आये। थोड़ी देर तो पण्डितजी शांति-पूर्वक सुनते रहे, परन्तु जब उनकी बातोंका खण्डन होने लगा तब 'राधाकृष्णजीकी जय' बोलकर

उठ खड़े हुए और बाहर चले गये। सौ डेढ़ सौ आदमी भी उनके साथ सभासे उठे, परन्तु बाकी सब वैसे ही बैठे रहे। इस प्रकार आर्यसमाजको कई नये सभासद और बहुतसे प्रेमी श्रोता अनायास ही मिल गये।

दशहरे पर प्रचार।

ऊपर वर्णित मुठभेड़ोंके अतिरिक्त इस वर्ष दशहरेके मेलेपर भी वैदिक धर्मका प्रचार करनेके लिये आर्यसमाजकी ओरसे मेलेमें एक शामियाना लगाया गया। ईसाई लोगोंने भी अपने धर्मके प्रचारका प्रवन्ध किया था। उनका शामियाना आर्यसमाजियोंके ठीक सामने था। परन्तु आर्यसमाजियोंके जोश और उत्साहके कारण ईसाइयोंका प्रचार बहुत फीका पड़ गया।

उन दिनों आर्यसमाजियोंका जोश और उत्साह इतना अधिक था कि उक्त प्रकारके सामयिक व्याख्यान आदिके अतिरिक्त परस्पर प्रेम सङ्गठन और भ्रातृभाव बढ़ानेके लिये इन्हीं दिनों जालन्धरमें पारिवारिक उपासनाकी चाल आरम्भ हुई। सप्ताहमें (प्रायः मङ्गलवारको) बारी बारीसे एक आर्यसमाजीके घरमें हवन यज्ञ संध्या और ईश्वर प्रार्थनादि होती, जिसमें मोहल्ले भरके आर्यसमाजी सम्मिलित हुआ करते।

पारिवारिक उपासना आदि तो लोगोंमें धार्मिक भाव उत्पन्न करनेके लिये किये जाते थे, परन्तु इनके सिवा आर्यसमाजकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये भी नयेसे नये उपाय काममें लाये

जाते थे। लाला देवराजजीने आटा-फण्डको एक रीति प्रचालित की। इसको रीति यह थी कि प्रत्येक आर्यसमाजीके घरमें एक घड़ा अलग रखा रहता था; घरमें रोटी बनाना आरम्भ होनेके समय गृह-पत्नी एक मुट्ठी आटा उस घड़ेमें डाल देती थी और प्रत्येक मासके बाद सब घरोंसे वह आटा इकट्ठा करके आर्यस-माज-मन्दिरमें पहुंचा दिया जाता था। उस समय इस आटा-फण्डसे आर्य-समाजकी पर्याप्त आमदनी होती थी। जालन्धरमें आटा रखनेके मिट्टीके बरतनको चाटी कहते हैं। इस कारण लाला देवराजजीने इस रीतिका नाम "चाटी सिस्टम" रखा था।

"चाटी सिस्टम" की तरह ही एक रद्दी फण्ड खोला गया था। इसके अनुसार प्रत्येक आर्य्यसमाजी अपने घरमें रद्दीके कागजोंको फेंकता नहीं था, एक जगह इकट्ठा करता जाता था। एक सप्ताहके बाद आर्यसमाजका चपरासी सब घरोंसे उन रद्दी कागजोंको इकट्ठा कर लाता और उस रद्दीको बेच कर जो रुपया प्राप्त होता उससे आर्यसमाजके लिये पत्र पुस्तकादि मंगवाये जाते।

लाला देवराजजीका मस्तिष्क इस प्रकारकी विचित्र विचित्र परन्तु उपयोगी और मनोरञ्जक रीतियोंके आविष्कार करनेमें खूब चलाना था। उनके आटा फण्डका अनुकरण तो बादको डी० ए० वी० कालिजके संचालकोंने भी किया था। आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाबके हिसाबमें भी आटा फण्ड अभी तक चला आता है।

उत्तीर्ण होकर भी अनुत्तीर्ण रहना।

संवत् १९४३ में वकालतकी जो पहिली परीक्षा दी थी उसमें मुंशीराम किस प्रकार अनुत्तीर्ण होकर भी उत्तीर्ण हो गये थे, इसकी कथा पहिले आ चुकी है। परन्तु संवत १९४४ में उन्हीं लारपेण्ट साहबकी मेहबानीके कारण इनको उत्तीर्ण हो जानेपर भी अनुत्तीर्ण समझा गया।

यह विचित्र घटना इस प्रकार हुई कि जब परीक्षायें हो चुकीं तब यूनिवर्सिटीके रजिष्ट्रार लारपेण्ट साहबने फिर विद्यार्थियोंसे रिशवतकी माँगका लग्गा लगाया। इस बार उनका हौसला यहां तक बढ़ गया था कि उन्होंने जो विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये थे उनसे भी यह कहलाया कि यदि १३००) रु० दोगे तो प्रमाण पत्र मिल सकेगा, अन्यथा नहीं। लारपेण्ट साहबका एजण्ट गण्डासिंह मुंशीरामजी को भी, उनसे यह रिशवतका कर वसूल करनेके लिये, ढूंढता फिरता था। उस समय यह लाहोरमें नहीं थे इस कारण इनके मित्रोंने चिट्ठी लिख कर इनको लाहोर बुलाया। मुंशीरामजी जालन्धर से निश्चय तो यह करके चले थे कि इस बार लारपेण्ट साहबकी सब पोल खोलकर रहेंगे परन्तु इनसे पहिले ही रोहतकके वकील लाला चूड़ामणिजी ने यह काम पूरा कर दिया। लारपेण्ट साहबके विरुद्ध यूनिवरसिटीकी सेनेटमें विचार होकर फैसला हुआ कि चूडांमणिजीको छोड़कर बाकी सबको अनुत्तीर्ण कर दिया

जाय। परीक्षा-परिणाम जब्त होनेकी खबर सुनकर बहुतसे विद्यार्थी लारपेएट साहबके पास पहुंचे और अपने रुपये वापिस मांगने लगे। अभी कुछेकको ही रुपये वापिस मिले थे कि गण्डासिंहने लारपेएट साहबको ढाढस बंधाया और फिर साहब ने सारा रुपया मुक़द्मा लड़ाने और शेष जीवन ऐस आराम से बितानेके लिये रख लिया। इस प्रकार इस बारकी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर भी मुंशीरामजी अपने सहाध्यायियोंके पापके कारण अनुत्तीर्ण ही गिने गये।

धार्मिक जीवनसे सन्तोषकी प्राप्ति।

इस असफलताके समाचार सुनकर साधारण अवस्थामें मुंशीरामजीको अवश्य ही बहुत दुःख होता, परन्तु परीक्षा देकर लाहोरसे जालन्धर आते ही वह पहिलेसे भी अधिक उत्साहके साथ अपने धार्मिक कार्यमें लग गये थे, इस कारण असफलताके समाचारसे इतना दुःख नहीं हुआ। लाहोरमें पं० गुरुदत्तजीसे मिलनेका अवसर हुआ था। उन्होंने बतलाया कि स्वामी दयानन्दके ग्रन्थोंका जितनी बार अध्ययन किया जाय उतनी ही बार उनमेंसे नये नये विचारोंकी प्राप्ति होती है। पं० गुरुदत्तके इस उपदेश पर अमल करते हुए स्वाध्यायका मुंशीरामजीने संवत् १९४४ के आरम्भमें ही दृढ नियम कर लिया था। फिर उसी समय जालन्धर आर्यसमाजका प्रथम वार्षिकोत्सव भी करना था। इस उत्सवसे जालन्धरके आर्यसमाजियोंमें एक नयी स्फूर्तिका संचार

हुआ। जिस स्थानपर उत्सवके शामियाने आदि लगाये गये थे वह स्थान शहरके एक सिरेपर और मुंशीरामजी ने अपने ही जिस मकानमें बाहरसे आये हुए सज्जनों व उपदेशकोंके उतारेका प्रबन्ध किया था वह शहरके दूसरे सिरे पर था। इस स्थानसे उत्सव-मण्डप तक प्रति दिन प्रातःकाल सब आर्य मिल कर भजन कीर्तन करते हुए जाया करते थे। सम्मिलित कीर्तन की यह प्रथा बादको इतनी प्रचलित हो गयी कि कई वर्ष तक जालन्धरके आर्यसमाजी सप्ताहमें तीन चार बार प्रातःकाल उठकर अथवा रातको सोनेसे पूर्व इस प्रकारका संकीर्तन करते हुए शहरका चक्कर लगाया करते थे।

इसी वर्षके मध्यमें पौराणिक सनातन धर्मियोंके प्रसिद्ध आधा-रस्तम्भ पं० दीनदयालु शर्मा जालन्धर पधारे थे। उनको भी शास्त्रार्थकी चुनौती दी गयी थी परन्तु शास्त्रार्थ तो नहीं हुआ, हां, दोनों पक्षोंकी ओरसे एक दूसरेका जवाब देनेके लिये कई सभायें हुईं और पं० दीनदयालु बीचमें ही जालन्धर छोड़कर सरक गये। इससे जनता पर आर्यसमाजका बड़ा प्रभाव पड़ा।

सत्य व्यवहारसे वकालतको धक्का।

पं० दीनदयालुके आक्षेपोंके विरुद्ध मुंशीरामजी प्रायः भाषण दिया करते थे। एक बार इसी भाषणके कारण इनको आर्थिक लाभ भी खूब हुआ। एक सरदार साहबको अपने बड़े मुक़दमेके लिये किसी वकीलकी तलाश थी। यह सरदार साहब लोगोंकी शिफारश अथवा नामवरीकी तरफ ख्याल न करके, स्वयं वकीलों

की योग्यताकी परीक्षा लेकर, अपना वकील चुनना चाहते थे। इस कारण सरदार साहबने अदालतमें जाकर सब वकीलोंके भाषण सुने और सभीको नालायक ठहराया। आखिर मुंशीराम-मजीका भाषण सुना तो इनको १०००) फीसपर अपना वकील नियत करके उसी समय ५००) पेशगी दे दिया। मुखतारी चमकनेमें सहायक एक और घटना यह हुई कि एक बार मुंशीरामजी अदालतमें किसी फौजदारी मुकदमेमें वहस कर रहे थे। उन दिनों फौजदारी मुकदमोंके लिये वीची साहब नामके एक वकील प्रमुख गिने जाते थे। जब वीची साहबने उक्त मुकदमेमें मुंशी-रामजी की वहस सुनी तब उन्होंने उसे बहुत पसन्द किया और तबसे अपने बड़े मुकदमोंमें वह मुंशीरामजी को ही अपनी सहायतार्थ रखाने लगे। इसके कारण इनकी आमदनी बहुतेरे वकी-लोंसे भी बढ़ गयी।

परन्तु मुंशीरामजीने इस बढ़ी हुई आमदनीपर आप ही अपने सत्य व्यवहारके कारण ठोकर मार ली। एक बार एक आदमीने इनके पास आकर अपने किसी कर्जदार पर १०००) का दावा करनेको कहा। उसकी बहीमें इस १०००) का लेनदेन टिकट लगा कर नहीं किया गया था। अतः मुंशीरामजीने कह दिया कि दावा नहीं हो सकता। थोड़े दिन पीछे वही आदमी अपने ही हाथ से बहीमें टिकट लगाकर दस्तखत आदि करके लाया और मुंशीरामजीके मुंशीसे ५० फीस तय करके २५) पेशगी दे गया मुन्शीने भी मुंशीरामजीको उस समय तो सब हालत बतलाये

नहीं और जब वह गाड़ीमें बैठकर अदालतको जाने लगे तब इस आदमीके वकालतनामेपर हस्ताक्षर करा लिये। बादको जब यह मामला अदालतमें निकला और वही आदमि मुंशीरामजीके सामने आयी तब इन्होंने मजिष्ट्रेटसे स्पष्ट कह दिया कि इस मामलेमें इस प्रकारका छल होनेके कारण मैं इसकी पैरवी नहीं करूंगा। मजिष्ट्रेट म० अक्रूरामजी थे जो मुंशीरामजीके हितचिन्तक थे। उन्होंने बहुतेरा समझाया कि इस प्रकारकी हरकतोंसे तुम अपनी जमी जमायी मुखतारी बिगाड़ बैठोगे परन्तु यह अपनी बात पर कायम रहे और उस मुवक्किलके पेशगो लिये हुए २५) पचीस रुपये वापिस करवा दिये।

इस घटनाके कारण इनकी आमदनी ५००) मासिकसे एक दम केवल १५०) मासिक रह गयी। दूसरे वकीलोंके मुंशी मुवक्किलोंको ऐसा कहकर भड़काने लगे कि 'अबे, अपने मुवक्किलों का गला घोटनेवाले मुख्तारके पास जाकर क्या करेगा। चल ऐसा वकील कर जो अपने मुवक्किलके लिये सब फन फरेब करने को तैयार हो।" इतना ही नहीं, आमदनी घटते देखकर इनका आर्यसमाजी मुंशी काशीराम भी नौकरी छोड़नेपर तैयार हो गया। पहिले उसे सब मुवक्किलोंसे प्रत्येक मुकदमेके लिये थोड़ा बहुत मिलते रहनेके कारण पर्याप्त आमदनी हो जाती थी परन्तु अब भूखे मरने लगा तो आर्यसमाजी होनेके नाते कितनी देर तक साथ देता। आखिर उसका वेतन बढ़ाकर उसे सन्तुष्ट करना पड़ा। इस प्रकार पिछड़ी हुई मुखतारीको फिर पुरानी

क्षितिपर लानेके लिये कई मासका समय लगा।

वकालतकी अन्तिम परीक्षा।

संवत १६४३ में पूर्वोक्त कारणसे परीक्षामें असफल हो जाने के कारण संवत् १६४४ में फिर वकालतकी परीक्षाकी तैयारी बराबर जारी थी। साधारणतया परीक्षा मार्गशीर्ष के अन्तमें होनी चाहिये थी और उन्हीं दिनों लाहोरके आर्यसमाजका उत्सव भी होने वाला था। इस कारण मुंशीराम कुछ दिन पहिले ही अपनी सब पुस्तकें आदि लेकर लाहोरको चल दिये। परीक्षाकी और आर्यसमाजके उत्सवकी तैयारी, दोनों काम साथ साथ होते रहे। यद्यपि परीक्षा समीप थी तथापि समाजके उत्सवमें सम्मिलित हुए। समाजके उत्सवमें बैठे हुए ही मुन्शीरामजीको अपने प्रथम पुत्रके उत्पन्न होनेका समाचार मिला। वह २७ नवम्बर सन् १८८७ आदित्यवारका दिन था। पुत्र उत्पन्न प्रातःकाल १० बजे हुआ था और लाहौरमें तार मध्याह्नोत्तर समय पहुंचा। उस समय अपीलके बाद चन्दा जमा किया जा रहा था। निहालसिंह नामके एक प्रेमी आर्यसमाजी चन्दा जमा कर रहे थे। वही तार लेकर मुन्शीरामजीके पास पहुंचे और पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनते ही भिक्षाकी झोली आगे कर दी। मुंशीरामजीने भी १००)का एक नोट देकर समाजके भिक्षुकको सन्तुष्ट किया।

उत्सव हो चुका तो फिर परीक्षाकी प्रतीक्षा होने लगी। परन्तु इन्हें क्या मालूम था कि यह प्रतीक्षा असाधारण प्रतीक्षा सिद्ध होगी। वकालतकी परीक्षाके बहुतसे उम्मेदवारोंकी दर-

स्वास्तपर परीक्षाका समय दो मास पीछे हटा दिया गया। इस कारण फिर निराश होकर जालन्धर वापिस चले आना पड़ा।

जालन्धर आकर यह दो महीनेका समय जालन्धर आर्यसमाजका वार्षिकोत्सव मनाने और अन्य समाजोंके उत्सवोंमें सम्मिलित होने आदिमें बिताया। क्योंकि दो तीन बार उन्हीं ग्रन्थोंको पढ़ चुकनेके कारण परीक्षाकी तैयारीमें मन नहीं लगता था। जालन्धर आर्यसमाजके उत्सवमें इस बार भी स्वावलम्बन का पाठ दूसरी बार मिला। लाहोरसे कोई उपदेशक नहीं आया था। लाला देवराजजी, मुंशीरामजी और इनके काली बाबू नामके एक बङ्गाली संन्यासी मित्रने मिलकर ही उत्सवकी सब कार्यवाहीको निबाहा। दो मासके अनन्तर जब फिर परीक्षा देनेके लिये लाहोरको चले तो कुछ दिन पूर्व ही जालन्धरसे रवाना हो गये, क्योंकि मार्गमें गुरदासपुर और अमृतसरके आर्यसमाजोंके उत्सवोंमें सम्मिलित होना था। लाहौर पहुंचकर पहिले मनमें सन्देह हुआ कि परीक्षामें प्रश्नोंका उत्तर ठीक तरह लिख सकेंगे या नहीं, क्योंकि दो माससे कानूनके ग्रन्थ नहीं देखे थे परन्तु समय आनेपर पुराने संस्कार जागृत हो गये और सब प्रश्नोंके उत्तर भली भांति लिखे गये जिसका फल भी यह हुआ कि परीक्षामें सफलता पूर्वक उत्तीर्ण हो गये।

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—
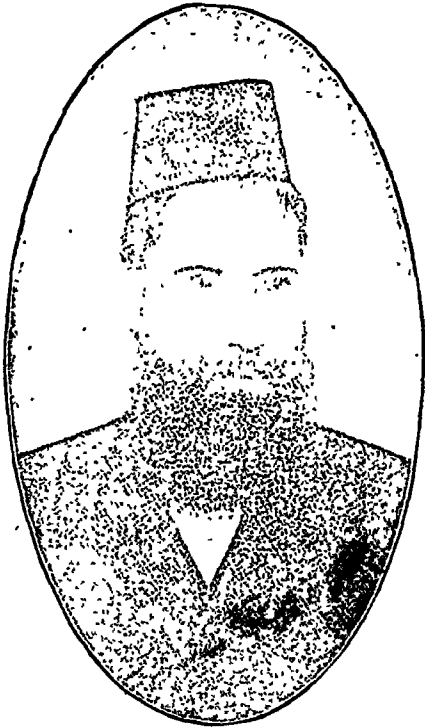
मुन्शीरामजी वकील जालन्धर।

नौवां अध्याय ।

सार्वजनिक जीवनमें निष्कण्टक प्रवेश ।
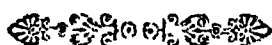
संवत १९४५ में मुंशीरामजी पूरे वकील बन गये। अब उनको अपने आर्यसमाज-सम्बन्धी कामके साथ साथ वकालत की परीक्षाकी चिन्ता न रही। संसारमें वह यद्यपि वकील बननेसे पहिले ही प्रवेश कर चुके थे तथापि अभी तक परीक्षाका झगड़ा पीछे लगा हुआ होनेके कारण वह सर्वथा स्वतंत्र नहीं कहे जा सकते थे। अब इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकनेके कारण वह जो चाहे सर्वथा निर्विघ्न कर सकते थे। इस लिये अब हम भी उनको संसारकी व्यावहारिक बोलचालके अनुसार कोरा मुंशीराम न कह कर लाला मुंशीराम वकील कहेंगे।

लाला मुंशीरामजीने परीक्षासे निश्चिन्त होकर नया जीवन आरम्भ करनेका संकल्प किया। अभी तक किरायेके मकानमें रहते थे परन्तु अब अपना ही एक मकान बनवाना आरम्भ किया यह वही मकान था जिसे आगे जाकर उन्होंने आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाबको समर्पित कर दिया था। तलवन में भी जो भूमि पैत्रिक सम्पत्तिकी वसीयतमें मिली थी उसमें बगीचा लगवाना

और मकान बनवाना आरम्भ किया। अपनी दिनचर्याको विशेष रूपसे नियमित किया। प्रात:काल शीघ्र उठ कर शौचादिसे निवृत्त हो बाहर भ्रमणको जाते, जिसमें थोड़ी दूर तक दौड़ना भी सम्मिलित था। उसके बाद घर आकर स्नान सन्ध्या आदि कर कुछ प्रातरसके अनन्तर धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय, दैनिक समाचारपत्रोंका अवलोकन और चिट्ठी पत्री आदि लिखनेका कार्य्य करते। इस सब कामसे नौ बजे तक छुट्टी मिल जाती थी। तब एक घण्टा अदालतके मुकद्दमोंकी तैयारी और मुवक्किलोंसे बातचीत करनेकी भेंट होता। फिर भोजन और तदनंतर कचहरी। कचहरीसे वापिस आकर यदि समय बचता तो शतरञ्ज हुक्केबाज़ी और टेनिस खेलने आदिमें व्यय होता। शतरञ्ज खेलने और हुक्का पीनेके रोग अभी पीछे लगे हुए थे। ये दोनों चार पाँच वर्षके पीछे छूटे।

कांग्रेससे प्रथम सम्बन्ध।

यद्यपि लाला मुन्शीरामजीका कांग्रेस से सम्बन्ध होनेकी बात आर्य्य जनताको संवत् १९७५ (सन् १९१९) में ज्ञात हुई जब कि वह सन्यासी बनकर स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासीका नाम धारण कर चुके थे, परन्तु वस्तुतः उनकी कांग्रेस से सहानुभूति बहुत पुरानी है। जिस समयका हम हाल लिख रहे हैं उस समय लाला मुंशीराम सार्वजनिक रूपेण भाग तो केवल आर्य्य-समाजके काममें लेते थे, परन्तु तब भी कांग्रेसकी हलचल के विषयमें सब कुछ जानते विशेष उत्सुकताके साथ रहते थे। इला-

हायादके अंग्रेजी दैनिक पत्र 'पायोनीयर' और लाहोरके दैनिक 'ट्रिब्यून' के लाला मुंशीराम उन दिनों भी ग्राहक थे। इन दोनों पत्रों द्वारा वह अपने देशकी राजनैतिक हलचलके विषयमें सब कुछ जानते रहते थे। संवत् १९४५ (सन् १८८८) में पहिले पहिल यह विचार उठा कि कांग्रेस कमिटियोंकी प्रत्येक ज़िलेमें स्थापना की जाय। लाला मुंशीरामजीके पुराने मित्र काली बाबूने ज़िला जालन्धर और ज़िला होशियारपुरमें कांग्रेस कमिटियाँ स्थापना करनेका कार्य्य अपने ऊपर लिया। इस लिये जब वह जालन्धर पहुंचे तब उन्होंने अपने इस राजनैतिक कार्य्यमें मुंशीरामजीसे सहायता मांगी। मुंशीरामजीने अपने आर्यसमाजी मित्रोंको इकट्ठा करके काली बाबूका यह कार्य्य केवल सिद्ध ही नहीं करा दिया, परन्तु उसमें यह विशेषता रही कि अन्य स्थानोंपर जहाँ बड़े बड़े रईस और आनरेरी मेजिस्ट्रेट आदि कांग्रेसके नामसे चौंकते थे वहां जालन्धरमें लाला बालकराम-जीके उद्योगसे इसी श्रेणीके लोगोंने मिलकर कांग्रेस कमिटीकी स्थापना की। उन दिनों अलीगढ़के सर सैयद अहमदखां कांग्रेसके विरुद्ध अपना फ़तवा निकाल चुके थे। इस कारण बहुतसे मुसलमान कांग्रेसके विरोधी हो गये थे। इस प्रकारके मुसलमानोंने जालन्धरमें भी कांग्रेस कमिटि स्थापित होनेके मार्गमें रुकावट खड़ी की थी तथापि इनके विघ्नकारी यत्न सफल नहीं हो सके। इसी समयसे लाला मुंशीरामजी अपने सार्वजनिक कार्यका क्षेत्र आर्यसमाजको रखते हुए भी राजनैतिक हल-

चलोंमें विशेष रुचि रखने लग गये थे।

कन्या महाविद्यालयकी स्थापना।

वकील बनकर नये उत्साहसे वकालत आरम्भ करनेके साथ साथ लाला मुंशीरामजीने अपने गृहस्थ जीवनमें भी सुधारका सूत्र-पात कर दिया था। अपनी धर्मपत्नी को हिन्दी लिखना पढ़ना सिखाया था। उनको झूठी लज्जा छोड़ कर परिवारके साथ बाहिर घूमने जानेकी प्रेरणा की थी। फलतः वह बाल बच्चोंको लेकर लाला मुंशीरामजीके साथ बाहर घूमने भी जाया करती थीं। इन सब सुधारोंके साथ यह स्वाभाविक ही था कि लाला मुंशीरामकी पुत्रियां भी शिक्षित होतीं। उन दिनों जालन्धरमें माईलाड़ी नामकी एक पहाड़ी स्त्री रहती थी। वह हिन्दी लिखना पढ़ना जानती थी। इससे कई हिन्दू स्त्रियोंने लिखना पढ़ना सीखा था। लाला मुंशीरामजीकी धर्मपत्नीको भी इसने हिन्दीके अक्षरोंका अभ्यास कराया था। बादको यह स्त्री ईसाइयोंके प्रलोभनोंमें पड़कर ईसाई पुत्री पाठशालामें नौकर हो गयी और अपनी शिष्या हिन्दू महिलाओंकी कन्याओंको भी ईसाई पाठशालामें भरती कराने लगी। इसी प्रकार इसने लाला मुंशीरामजीकी बड़ी कन्या वेदकुमारीको भी उक्त पाठशालामें भरती करा दिया। पहिले तो लालाजीका ध्यान इस बातकी ओर न गया, परन्तु एक दिन (२ कार्तिक संवत् १९४१) जब अदालतसे वापिस आये तो वेदकुमारी दौड़कर आयी और जो भजन पाठशालामें सीखा था वह गाकर सुनाने लगी—"एक बार

ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल। ईसा मेरा राम रसिया ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया॥" इत्यादि। इस घटनासे लाला मुन्शीरामजीको आंखें खुल गयीं और उनको अपनी पुत्रियोंके शिक्षणकी विशेष चिन्ता हुई। इस मामूली घटनाके बाद रविवारको आर्यसमाजका जो अधिवेशन हुआ उसमें मुंशीरामजीने यह चर्चा रायबहादुर बख़शी सोहनलाल प्लीडर आदि अपने मित्रोंसे भी की। वे सब भी अपनी अपनी कन्याओंके विषयमें इसी प्रकारका बातें अनुभव कर रहे थे। बस, फिर क्या था, उसी समय एक आर्य कन्या पाठशाला खोलनेका निश्चित विचार हो गया। उसी रविवारको रात्रिको लाला मुंशीरामजीने उक्त पाठशालाके लिये एक अपील लिखी और दूसरे दिनसे ही चन्दा जमा होना आरम्भ हो गया। लग भग दो सप्ताहके बाद दिवालीका त्यौहार आया। उससे अगले दिन आर्यसमाजी ऋषि दयानन्दकी मृत्युके उपलक्षमें ऋष्युत्सव मनाते हैं। लाला मुंशीरामजीने इस ऋष्युत्सवके दिन अपने घर पर बड़ा यज्ञ करवाया था, जिसमें बहुतसे लोग उपस्थित हुए थे, वहाँ भी कन्या पाठशालाके लिये चन्दा लिखा गया। इसी प्रकार समय समय पर इस कन्या पाठशालाके लिये आर्य जनतासे अपील और चन्दा जमा होता रहा तथा दो वर्ष पश्चात् संवत् १९४७ में यह पाठशाला खुल भी गयी जो बादको कन्या महाविद्यालय जालन्धरके नामसे प्रसिद्ध हुई। आज तीस पैंतीस वर्षोंके बाद तो यह संस्था इतना उन्नति कर चुकी है कि भारतवर्षमें स्त्री-शिक्षाके लिये इसे एक

ही विद्यालय समझा जाता है।

साप्ताहिक 'सद्धर्मप्रचारक'।

कन्या पाठशालाके लिये जब जनतामें आन्दोलन करनेकी आवश्यकता हुई तब उसके लिये तथा अन्य भी प्रचार व आन्दोलन सम्बन्धी कार्योंके लिये यह आवश्यक जान पड़ा कि अपने हाथमें एक समाचारपत्र हो तो काममें बहुत सहायता मिले। इसी विचारको लक्ष्यमें रखकर 'सद्धर्म-प्रचारक' नामका उर्दू साप्ताहिक पत्र निकालनेको संकल्प किया गया। जिस दिन यह विचार हुआ उससे अगले ही दिन २५) पचीस २ रुपयोंके सोलह हिस्सेदार मिल गये। इनमें होशियारपुरके महाशय रामचन्द्रजी, 'प्रधान'* लाला रामकृष्णजी, लाला देवराजजी और लाला शालिग्रामजी भण्डारी* आदि कई पुराने और प्रतिष्ठित आर्य-समाजी सम्मिलित थे। धीरे धीरे पत्र निकालनेके लिये प्रेस आदिका सब बन्दोबस्त हो गया और लाला देवराज तथा लाला मुंशीरामजीको इसका सम्पादक बनाकर १ वैशाख संवत १९४६ को 'सद्धर्मप्रचारक'का प्रथम अङ्क निकाल दिया गया। पत्र निकाला तो इतने उत्साहसे गया था किन्तु दो वर्ष तक लगातार इस

---

*लाला रामकृष्णजीने आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाबके प्रधान-पदको और लाला शालिग्रामजीने गुरुकुल विश्वविद्यालयके भोजन-भण्डारके प्रबन्धकर्त्ता पदको बहुत वर्षोंतक योग्यता और लगनके साथ सुशोभित किया है, इस कारण इन दोनोंके नामके साथ आर्यसामाजिक क्षेत्रमें 'प्रधान' और भण्डारी शब्दोंका योग हमेशाके लिये हो गया है।

में घाटा ही घाटा रहा। बादको जब प्रति हिस्सा १५) बढ़ा देने-पर भी घाटेकी पूर्ति न हो सकी तब लाला मुंशीरामजीने सब हिस्सोंका रुपया अपनी जेबसे अदा करके प्रेस और पत्र दोनोंको सिर्फ अपनी जिम्मेवारीपर चलाना आरम्भ कर दिया था।

'सद्धर्मप्रचारक' यद्यपि निकलना आरम्भ उर्दूमें हुआ था तथापि इसने पञ्जाबमें हिन्दीके लिये बहुत काम किया है। पंजाब में उर्दूका ही अधिकतर प्रचार होनेके कारण इसे उर्दूमें निकालना पड़ा था परन्तु धीरे धीरे मुंशीरामजीने इसमें लिपि फारसी रहते हुए भी हिन्दी शब्दोंका प्रयोग आरम्भ कर दिया था। बढ़ते बढ़ते हिन्दी शब्दोंका यह प्रयोग यहाँतक बढ़ गया था कि अपने आपको उर्दूका रक्षक समझने वाले बहुतसे मुसलमान इसपर आपत्ति करने लगे थे और अभी तक करते हैं। धीरे धीरे जब इस प्रकारकी उर्दू लिखनेका पञ्जाबके सभी हिन्दुओंमें प्रचार हो गया तब मुसलमानोंने इसका नामही आर्यसमाजी उर्दू रख दिया अब चाहे इसे कोई आर्यसमाजी उर्दू कहे या मुसलमानी उर्दू परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पञ्जाबके हिन्दू पत्र अधिकतर इसी उर्दूका प्रयोग करते हैं।

मुंशीरामजीने 'सद्धर्मप्रचारक' के पाठकोंको धीरे धीरे उपरोक्त प्रकारसे हिन्दी शब्दोंका परिचय कराकर बहुतसा घाटा उठाकर भी 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र हिन्दीमें प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था और फिर जब तक 'सद्धर्म-प्रचारक' प्रकाशित होता रहा, हिन्दीमें ही प्रकाशित होता रहा। लाला मुंशीरामजी

ने इस प्रकार कठिन समयमें और कठिन परिस्थितिमें हिन्दी भाषा की जो सेवा की थी उसका पुरस्कार भी हिन्दी-प्रेमी जनताने आपको संवत् १९६८ में (भागलपुर) हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सभापति बनाकर दिया था।

धर्म-प्रचारका जोश।

कन्या महाविद्यालय जालन्धर और 'सद्धर्म-प्रचारक' साप्ताहिक पत्रकी स्थापनाका वर्णन इस कारण कुछ अधिक विस्तारसे दिया है क्योंकि इन दोनों संस्थाओंने आर्यसमाजके लिये बहुत काम किया है और ये लाला मुंशीरामके यशके स्थायी चिन्ह स्वरूप हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त उन्होंने इन दो तीन वर्षोंमें धर्मप्रचार भी बड़ी लगनके साथ किया। जालन्धर जिलेको तो कोई ही ऐसा प्रसिद्ध कसबा बचा होगा जिसमें जाकर इन्होंने इन दो तीन वर्षमें प्रचार नहीं किया। यों जालन्धर से बाहरके आर्यसमाजोंके उत्सवोंमें भी प्रायः सम्मिलित होते ही रहते थे। प्रचारके कामके लिये लाला मुंशीरामजीको इन दिनों चिरञ्जीवलाल पहलवान नामका एक लुधियाना निवासी बड़ा उत्साही पुरुष मिल गया था। इस पहलवानकी कथा भी बड़ी मनोरञ्जक है, इसलिये उसे यहाँ लिखा जाता है। चिरञ्जीवलाल आर्यसमाजी बनकर आम रास्तों और बाजारोंमें खड़ा होकर प्रचार किया करता था। एक बार इसी प्रकार खड़ा हुआ राहू केतुके पौराणिक किस्सेका खण्डन कर रहा था कि एक ब्राह्मणने अपने

यजमानसे मिली हुई दक्षिणाको सामने करके कहा कि हिम्मत है तो तू इसे लेकर दिखा। मस्त पहलवानजी कपड़ेमें बंधी हुई चावलों और नक़द पैसोंकी पोटली लेकर बेपरवाहीसे चल दिये। ब्राह्मण बेचारा देखता ही रह गया। बादको ब्राह्मणने पं० लक्ष्मी सहाय नामके एक जाति-ब्राह्मण मजिस्ट्रेटके यहां दावा किया। चिरञ्जीवलालको कैदकी सज़ा हुई। उसी समय लाला मुंशीराम-जीको खबर दी गयी। उन दिनों लुधियानेकी अपीलें जालन्धर में ही होती थीं। लाला मुंशीरामजीने तुरन्त अपील कर दी, जिसमें चिरञ्जीवलाल बरी हो गया और वह जालन्धर आकर लाला मुंशीरामजीके ही पास रहने लगा। जब कहीं बाहर प्रचा-रको जाते तब चिरञ्जीवलालसे बड़ी सहायता मिलती। चिर-ञ्जीवलाल व्याख्यानके लिये कोई अच्छीसी जगह देखकर लाला मुंशीरामजीको तो वहां बिठा देता और स्वयं बाजारमें जाकर किसी दूकानदारसे मूढ़ा लेकर उसपर खड़ा होकर अपनी बेतु-लबाजी शुरू कर देता। जब पचास साठ आदमी जमा हो जाते तब मूढ़ा उठाकर थोड़ा आगे बढ़ जाता और फिर स्वर अलापने लगता। जब आदमी बढ़कर १००।१५० हो जाते तब और आगे बढ़ जाता। इसी प्रकार आदमियोंको जमा करता हुआ वहां पहुंच जाता जहां कि व्याख्यानका स्थान तजवीज किया होता था और तब लोगोंको कहता कि 'भाइयो' अब विद्वानोंकी बातें सुनो, देखो कैसी अमृत-वर्षा करते हैं।' बस, सब लोग वहीं बैठ जाते और व्याख्यान आरम्भ हो जाता। लाला मुंशीराम-

जीने जालन्धरके आस पासके स्थानोंमें इसी प्रकार घूम घूमकर कई वर्ष तक प्रचारका कार्य किया था।

सत्यप्रियता और धर्मनिष्ठा।

आर्यसमाजका प्रचार तो पूर्व-वर्णित रूपमें खूब जोश और उत्साहसे हो रहा था, परन्तु उसके साथ साथ ही लाला मुंशीरामजी को अपने सिद्धान्तों पर अमल करनेका भी पूरा ध्यान था। वह केवल आर्यसमाजकी नामवरी पर ही ध्यान न रखते थे, प्रत्युत आर्यसमाजी बननेका जो मुख्य प्रयोजन धर्म और आचार विचार सम्बन्धी सुधार है उसका भी पूरा ध्यान रखते थे। अपने इसी गुणके कारण एक बार लाला मुंशीरामजीने अपनी मुखतारीको धक्का लगाया था और इसी स्वभावके कारण उन्होंने अपने जीवनमें कई व्यक्तियोंको अपना शत्रु बनाया। इसी प्रकारकी एक घटना सम्वत् १९४७ के लगभग हुई।

फिल्लौरमें आर्यसमाजकी स्थापना लाला मुंशीरामजी ने ही की थी। इस समाजके मन्त्री एक जङ्गलातके महकमेंके ओहदेदार थे। गुरुदासपुर आर्यसमाजके एक वकील पदाधिकारी अत्यन्त पतिताचारी थे। परन्तु थे फिल्लौर आर्यसमाजके मन्त्री महाशयके मित्र। एक बार होलियोंकी छुट्टियोंमें वह फिल्लौर आये और आर्यसमाजके किरायेके मकानमें ठहरे। उन्होंने प्रधान और मन्त्रीके मना करने पर भी उक्त समाज मन्दिरमें न केवल शराबकी बोतलें ही उडेलीं परन्तु रातको वेश्याको भी वहीं बुलाकर

मुंह काला किया। इस दुराचार-पूर्ण घटनाके दो तीन दिन बाद लाला मुंशीरामजीको भी किसी मुकदमेकी पैरवीके सम्बन्धमें फिल्लौर जानेका अवसर हुआ। तब इनके मित्र सैयद आबिदहुसेन तहसीलदारने यह सब किस्सा इन्हें सुनाया। उन्होंने यह भी बतलाया कि उक्त दुराचारी वकील वेश्याको बिना कुछ दिये ही रातकी गाड़ीसे भाग गया था। वेश्याने उसके विरुद्ध अदालत में दरख्वास्त दी थी, परन्तु सैयद साहबने अपनी जेबसे दस पांच रुपये देकर वेश्याकी वह दरख्वास्त फड़वा दी। लाला मुंशीरामजीने सब कहानी सुनकर सैयद साहबके इस दया-पूर्ण कार्यका विरोध किया और कहा कि ऐसे आदमीको सज़ा अवश्य मिलनी चाहिये थी। सैयद साहब तो लालाजीके इस उत्तरपर आश्चर्य ही करते रह गये और लाला मुंशीरामजीने उसी दिन शामको व्याख्यानका ढिंढोरा पिटवाकर सब लोगोंके सामने यह ऐलान कर दिया कि आर्यसमाजके पदाधिकारियोंके कर्तव्य और आचारसे च्युत हो जानेके कारण फिल्लौरमें अबसे कोई आर्यसमाज नहीं रहा। लाला मुंशीरामजीने तो यह कार्य अपने सिद्धान्तोंसे प्रेरित होकर किया था परन्तु गुरुदासपुरके वह दुराचारी वकील हमेशाके लिये इनके शत्रु हो गये। बादको उन्होंने आर्यसमाज से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और वह सनातनियोंके बड़े नेता कहे जाने लगे।

पं० गुरुदत्त और लेखरामका सत्संग।

इन्हीं दिनों लाला मुन्शीरामजी की आर्यसमाज के प्रसिद्ध

विद्वान् पं० गुरुदत्तजी और धर्मवीर पं० लेखरामजीसे घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। पं० गुरुदत्तजी का तो लाला मुंशीरामजी के जीवन पर प्रभाव भी बहुत पड़ा। स्वाध्याय की ओर इनकी रुचि और प्रवृत्ति कराने वाले पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ही थे। लाला मुंशीरामजी संन्यास ग्रहण करनेसे पहिलेतक अपने नामके पीछे उपनाम के रूपसे जो 'जिज्ञासु' शब्द लिखा करते थे वह भी शायद पं० गुरुदत्त से मिले हुए विद्यानुराग का ही फल था। पं० लेखरामजी ने पहिले से बढे हुए धार्मिक प्रचार के उत्साह में और भी वृद्धि की और बादको जब लाला मुंशीरामजी आर्य्य प्रतिनिधि सभाके प्रधान बने तब बहुतसे स्थानोंपर वह पंडित लेखरामजीके साथ प्रचारार्थं स्वयं जाते रहे।

दो तीन महत्वपूर्ण वियोग।

संवत् १९४६ और १९४७ में यद्यपि आर्यसमाजके प्रचार और शास्त्रर्थों का जोश व उत्साहकी खूब धूम रही तथापि कई एक प्रधान पुरुषोंकी मृत्युओंके कारण समय समय पर कुछ दिन बड़े दुखसे बिताने पड़े। इनमेंसे पहिली मृत्यु लाला मुंशीरामकी धर्मपत्नीके सबसे बड़े भाई लाला बालकरामकी थी। साधारण अवस्थामें शायद लाला बालकरामजीके वियोगका लाला मुंशीरामजीके सार्वजनिक कार्यों पर विशेष प्रभाव न होता, परन्तु जिन दिनों यह मृत्यु हुई उन दिनों लाला मुंशीरामजीपर कार्यका अत्यधिक भार था। एक ओर तो आर्यसमाजके प्रचारादिका काम

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—

पं० गुरुदत्तजी, एम. ए.

जन्म १९२३ वि०　　　मृत्यु १९४७ वि०

और 'सद्धर्मप्रचारक' का सम्पादन और उत्सव आदियों पर व्याख्यान आदिके लिये जानेका बोझ और दूसरी ओर नयी इमारतके लिये धन कमानेकी चिन्ता, इन कारणोंसे लाला बालकरामजीके वियोगका लाला मुंशीरामजीको बहुत दुःख हुआ। लाला मुंशीरामजीकी धर्मपत्नीको भी लाला बालकरामजीकी मृत्युसे बहुत दुःख हुआ। उनकी उदासीनताको दूर करनेको कुछ दिन के लिये लाला मुंशीरामजीने हरिद्वारकी भी यात्रा की। हरिद्वारमें इनके बड़े पुत्र हरिश्चन्द्रने खेलते खेलते चावियोंका गुच्छा गङ्गामें फेंक दिया। जिसके कारण घर वापिस आनेपर सब ताले तुड़वाने पड़े। हरिद्वारमें एक और मनोरञ्जक बात पण्डाजीको दक्षिणा देनेकी हुई। अपनेको 'आर्यसमाजी' बतलाने पर भी पण्डाजी पीछे नहीं हटे। बोले कि 'आर्यसमाजी मूर्त्ति-पूजाका खण्डन करते हैं, हम आपको मूर्त्ति-पूजाको तो नहीं कहते। हम तो आपकी सेवा करने वाले हैं। खुशी हो तो दीजिये, खुशी हो मत दीजिये।" आखिर पण्डाजीको ५) दिये गये। परन्तु उधर पण्डाजीने भी लाला मुंशीरामजीकी धर्मपत्नीसे ५) और सटक लिये। बादको पण्डाजीने अपनी बही सामने रखकर उसमें प्रमाण रूपसे कुछ लिखनेको कहा। तब लाला मुंशीरामजीने बहीमें लिख दिया कि 'हम हरिद्वारमें सैर करने आये; यदि यहां पण्डे और बन्दर न हों तो स्थान रमणीय और निवास योग्य है।'

दूसरी मृत्यु पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थीकी ५ चैत्र संवत् १९४६को हुई। पं० गुरुदत्तजीका स्वास्थ्य कई माससे बिगड़ता जा रहा

था। इसीके सुधारके लिये वह मरी पर्वत पर भी गये थे। वहां विश्राम मिलनेके कारण स्वास्थ्यमें कुछ सुधार हुआ और लाहोर मेडिकल कालेजके डाक्टर मलरोनीने उनकी शरीर परीक्षा करके सम्मति दी कि इनके शरीरमें कोई खराबी नहीं है, खराबी दिमागमें है जो हमेशा काम करता रहता है, इसलिये आवश्यकता इनके दिमागको आराम देनेकी है। पं० गुरुदत्तजीके प्रेमी आर्यसमाजी उनके शरीरके निरोग होनेका समाचार सुनकर तो प्रसन्न हुए परन्तु डाक्टरने जो दूसरी हिदायत दिमागको आराम पहुंचानेके लिये दी थी उसकी ओर उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। पं० गुरुदत्तजी भी स्वास्थ्यके प्रति बेपरवाहीके अपने स्वभावानुसार मरी पर्वतसे रवाना होते ही आर्यसमाजके जलसोंमें शरीक होने लग गये। जिसका अनिवार्य परिणाम वही हुआ जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस मृत्युसे लाला मुंशीरामजी को बहुत दुःख हुआ क्योंकि पं० गुरुदत्त जी को वह अपने स्वाध्याय का पथ-प्रदर्शक समझा करते थे। इसके अतिरिक्त आर्यसमाजियोंमें आचारकी दृढ़तापर जिस प्रकार यह बल देते थे उसी प्रकार पं० गुरुदत्तजी भी देते थे। जिस प्रकार इन्होंने अपने सत्य व्यवहार और आचारपर बल देनेके कारण कुछ प्रमुख आर्यसमाजियोंसे बिगाड़ ली थी उसी प्रकार पं० गुरुदत्तजी से कुछ लोग उनकी स्पष्टवादिताके कारण नाराज हो गये थे। इन सब समान बातोंके कारण पं० गुरुदत्तजीका लाला मुंशीरामजी को बड़ा बल था। इस अवस्थामें उनके उठ जानेसे लाला मुन्शी-

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—

पं० लेखरामजी।

जन्म संवत् १६१५ मृत्यु संवत् १६५३

रामजीको उनके वियोगका दुःख होना स्वाभाविक ही था।

अभी पं० गुरुदत्तजीके वियोगका दुःख कम नहीं हुआ था कि ३० ज्येष्ठ सम्वत् १९४७ को लाला साईंदासका भी देहान्त हो गया। लाला साईंदासजी बड़े अनुभवी और व्यवहार-कुशल पुरुष थे। उनकी व्यवहार-कुशलतासे लाला मुंशीरामजी को बहुत लाभ पहुंचा करता था। पंजाबकी आर्यसमाजोंके तो एक प्रकारसे उन दिनों सूत्र-संचालक ही लाला साईंदासजी थे। उनके उठ जानेसे भी एक बड़ी शक्तिका अभाव प्रतीत होने लगा।

परन्तु इन मृत्युओंके साथ साथ इतने सन्तोषकी बात थी कि इन्हीं दिनों स्वामी पूर्णानन्दजी और ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्दजी आदि कई उत्साही कार्यकर्त्ताओंका आर्यसमाजमें प्रवेश हुआ।

कुम्भके मेलेपर वैदिक धर्म प्रचार।

संवत् १९४८ विक्रमीका वर्ष लाला मुंशीरामके जीवनमें विशेष घटना-पूर्ण बीता। इसी वर्ष वह पंजाबके धर्मशाला पर्वतकी रियासत सुकेतके राजाके भतीजे मियाँ शिवसिंहजी के एक मुकदमेमें सुकेत गये। यह यात्रा जहां लाला मुन्शी-रामजीके लिये बड़ी मनोरञ्जक सिद्ध हुई वहां उनकी वकालत के व्यवसायकी भी इससे खूब ख्याति हुई।

इसी वर्ष हरिद्वारमें कुम्भका मेला था। स्वामी दयानन्दके स्वर्गवासके बाद यह प्रथम ही कुम्भ आया था। आर्यसमाजों

को इस अवसर से लाभ उठानेका ध्यान न था। परन्तु जब 'सद्धर्मप्रचारक' में इसके लिये आन्दोलन किया गया तब पंजाब और संयुक्त प्रांतकी आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने प्रस्ताव पास करके इस कार्यको अपने हाथमें ले लिया और हरिद्वार जाकर उसका सब प्रबन्ध करनेका कार्य लाला मुन्शीरामजीको ही सौंपा गया। पं० लेखरामजीने कुम्भ-प्रचारका हाल 'सद्धर्म-प्रचारक' से लेकर अलग पुस्तक रूपमें छपवा कर बंटवाया था। जहां संवत् १९४८ कुम्भमें वैदिक धर्मका प्रचार हुआ था. उसी भूमिके दूसरे सिरेपर संवत् १९६० में वह जगह किरायेपर लेकर प्रचार किया गया था। और १॥ वर्ष बाद वह सब ज़मीन आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाबने ख़रीद ली थी और अभी तक गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ीके मुख्याधिष्ठाताके प्रबन्धमें रहकर उसपर स्वामित्व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाबका ही है।

धर्मपत्नीसे वियोग।

इसी वर्ष इनके निजू जीवनमें वह बड़ी घटना हुई जिसने लाला मुन्शीरामजीका जीवन ही सार्वजनिक जीवन बना दिया। सुकेतके राजाओंके मुकद्दमेमें जानेके बादसे लाला मुंशीरामजी का धर्मशाला पर्वतसे घना सम्बन्ध हो गया था। भाद्रपद मास के तीसरे सप्ताहमें वहांके आर्यसमाजका वार्षिकोत्सव था। उसमें सम्मिलित होनेके लिये १५ भाद्रपदको जालन्धरसे रवाना हो जानेका लाला मुंशीरामजी निश्चय कर चुके थे। परन्तु भाग्यमें

कुछ और ही लिखा था। जिस दिन जालन्धरसे यात्रा करनेका विचार था उसी दिन (१५ भाद्रपद संवत् १९४८ अथवा ३१ अगस्त सन् १८९१) के प्रातःकाल छ बजे उनकी धर्मपत्नी उनसे सदाके लिये विदा होकर परलोक धामकी यात्रा कर गयीं। श्रावणके अन्तमें उनकी पाँचवीं सन्तान एक कन्याका जन्म हुआ था। इसके जन्मके समय माताको बहुत तकलीफ हुई। बेचारी कन्या तो जन्म लेते ही कुछ ही घण्टोंकी मेहमान रह कर चल बसी, परन्तु उसकी माता बहुत निर्बल हो गयी। एक सप्ताह तक तो केवल निर्बलता ही प्रतीत हुई; अधिक बीमारी का कोई सन्देह न था, पर दस बारह दिनके बाद दस्त और के शुरू हो गये। मनुष्य जो उपाय कर सकता है उन सबको काममें लाया गया, परन्तु विधिके सन्मुख किसीका वश न चला और लाला मुंशीरामजीकी धर्मपत्नी चार सन्तानोंको पीछे छोड़कर स्वर्गगामिनी हुईं।

देहान्तसे पहिले उन्होंने एक छोटेसे काग़ज़पर इस आशयके कुछ शब्द पञ्जाबी भाषा और देवनागरी लिपिमें लिखकर अपने क़लमदानमें रखे थे कि 'बाबूजी मैं अब चली। मेरे अपराध क्षमा करना। आपको तो मुझसे अधिक रूपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जायगी, परन्तु इन बच्चोंको कभी मत भूलना। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो।' इस संदेशको पढ़कर लाला मुंशीरामजीने यह निश्चय कर लिया कि वैदिक सिद्धान्तोंकी आज्ञा पालन करते हुए अब दूसरा विवाह न करेंगे और अपने जीवन पर्यंत

उन्होंने इस निश्चयपर पूरा २ अमल भी किया। केवल इतना ही नहीं परंतु सच्चे वैदिक आदर्शपर चलते हुए अपना जीवन समाज और राष्ट्रकी सेवाके लिये समर्पित करके यह भी दिखला दिया कि मनुष्य जीवनको सफल किस प्रकार बनाया जाता है।

इस घटनाके पूर्व कभी २ लाला मुन्शीरामजी यह अनुभव कर चुके थे कि गृहस्थ जीवन सार्वजनिक सेवाके रास्तेमें रुकावट करता है। अब धर्मपत्नीके संसारमें न रहनेसे वह मार्ग कुछ साफ हो गया। परन्तु छोटे बालकोंके पालन पोषणका प्रश्न अब भी एक समस्या उपस्थित कर रहा था। उसके सुलझानेमें लालाजीके बड़े भाई आत्मारामजीने बड़ी सहायता दी। वह सब बालकोंके पालन पोषणार्थ अपनी धर्मपत्नी सहित जालन्धर ही आकर रहने लगे और लाला मुंशीरामजीको सार्वजनिक कार्यके लिये स्वतंत्र कर दिया।

संवत् १९४८ के अन्तमें लाला मुंशीरामजीका स्वास्थ्य कुछ खराब रहने लगा था, इस कारण पांच छै महीने इन्होंने धर्मशाला जाकर वहीं रह कर बिताये। वहां रहकर वकालत भी चलती रही और साथ ही पहाड़ी लोगोंमें वैदिक धर्मका प्रचार भी होता रहा। उन दिनों आर्य समाजमें मांसके प्रश्नको लेकर तीव्र मत भेद और झगड़े खड़े हो चुके थे। धर्मशाला पर्वतके एकांत स्थानमें भी उन झगड़ोंका प्रभाव पहुंच गया था। उभय पक्षके लोग एक दूसरेकी बातोंका युक्ति और प्रमाण द्वारा खण्डन करनेके अतिरिक्त अपने विरोधियोंको चिढ़ानेके लिये मांसखोर

घासखोर, शिक्षित, असभ्य, और क्रूर मांस भक्षक तथा बुद्धू महात्मा आदिके नाम भी देने लगे थे। संवत् १९४९ के मध्य भागमें जब लाला मुंशीरामजी धर्मशाला पर्वतसे मैदानमें वापिस आये तब लाहोर आर्यसमाजका वार्षिकोत्सव सिर पर था। इस वार्षिकोत्सवमें दोनों पक्षोंकी ओरसे मांस-भक्षणका खुल्लमखुल्ला विरोध और समर्थन हुआ तथा आर्यसमाजमें फूटकी नींव पड़ गयी। इसी समय सभाके पदाधिकारियोंका चुनाव हुआ और लाला मुंशीरामजीको आर्यप्रतिनिधिसभाका प्रधान चुना गया।

दसवां अध्याय
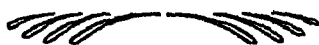
आर्यसमाजमें दो दलोंकी सृष्टि।
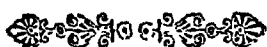
लाला मुंशीरामजीके हाथोंमें जिस समय पञ्जाबके आर्य्य-समाजोंका सूत्र-संचालन सौंपा गया उस समय पञ्जाबके आर्य्य समाज घरेलू झगड़ोंके बुरी तरह शिकार हो रहे थे। इन झगड़ोंका आरम्भ तो तीन चार वर्ष पूर्वसे हो गहा था परन्तु इस समय वे वहुत विकट रूप धारण कर चुके थे। यदि इन सब झगड़ोंकी पूरी कथा लिखी जाय तो वही एक स्वतन्त्र पुस्तकका विषय वन सकती है। अतः हमें उतने विस्तारमें जानेकी आवश्यकता नहीं। हम इन झगड़ोंके मोटे स्वरूपका दिग्दर्शन करा कर आगे वढ़ेंगे। इसी स्थानपर यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस समयके झगड़ोंके कारण मीमांसा और आर्यसमाजमें फूट डालनेके दोष-विभागके विषयमें वहुत मतभेद हैं। इन पृष्ठोंमें आगे जो लिखा जायगा, उसके लिये लेखकके अतिरिक्त और किसीकी जिम्मेवारी नहीं होगी।

व्यक्तियों और सिद्धान्तोंका संघर्ष।

पहिले यह दिखलाया जा चुका है कि जिस समयकी घट-

नाओंका यहां उल्लेख किया जा रहा है उस समय लाहोरका आर्य समाज और उसके पदाधिकारियोंका महत्व आवश्यकतासे अधिक बढ़ा हुआ था। लाहोरको आर्यसमाजके सब कामोंका मस्तिष्क और संचालक समझा जाता था। लाला मुंशीरामजी ने और जालन्धर आर्यसमाजके सभासद उनके मित्रोंने पहिले पहिल इस बातका अनुभव किया क्योंकि कई बार जब जब उन्होंने किसी सामाजिक कार्यके लिये लाहोर वालोंसे सहायता माँगी तब तब उनको स्वतन्त्र-रूपसे कार्य आरम्भ करनेका निश्चय कर लेनेके लिये दोषी ठहराया गया। लाहोर आर्य समाजके नेता हरेक नये कामको आरम्भ करनेका अपनेको ही एकमात्र अधिकारी समझते थे। उनकी इस अहम्मन्यताने जालन्धरके आर्यसमाजियोंको स्वावलम्बनका पाठ पढ़ाया। बादको यह स्वावलम्बनका भाव यहां तक बढ़ गया कि वे लाहोरके नेताओं की समालोचना भी करने लगे। लाहोरके नेताओंकी अहम्मन्यता यहां तक बढ़ी हुई थी कि यदि कोई आर्यसमाजी सिद्धान्त सम्बन्धी भी कोई नयी बात पेश करता था तो वे उस पर इस प्रकारकी उपेक्षापूर्ण नुक्ताचीनी किया करते थे कि जिस प्रकार की बड़े बूढ़े छोटे छोटे अनुभवहीन बालकोंकी बातोंकी किया करते हैं। मतलब यह कि ये नेता लोग आर्यसमाजके सिद्धान्तोंको अमलमें लानेके लिये भी अपनी इच्छाके विरुद्ध किसी नयी बातका आरम्भ नहीं होने देना चाहते थे। इन लोगोंके लिये प्रत्येक कार्यमें सिद्धान्तकी अपेक्षा अपनी इच्छा ही प्रधान

बनी हुई थी। इस कारण इनकी छत्रछाया में आर्यसमाज के अधीन संस्थाओंमें ही कई काम सिद्धान्तके विरुद्ध भी होते रहते थे। इन लोगोंको अपनी व्यवहार कुशलता और अनुभवका शायद बहुत अभिमान था। बस, इसी व्यावहारिकता अथवा अनुभवके नामपर ये नेता सिद्धान्त-विरुद्ध कार्योंको भी नहीं रोकते थे। परन्तु ज्यों ज्यों आर्यसमाजियोंमें स्वावलम्बन और स्वतन्त्रताका भाव बढ़ता जाता था त्यों त्यों उनमें इन नेताओंके सिद्धान्त-विरोधी कार्योंकी ओर अंगुली उठानेकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती थी। यह स्वावलम्बनका पाठ सबसे पहिले जालन्धर आर्यसमाजने सीखा था। इस कारण स्वभावतः जालन्धरके आर्यसमाजियोंको ओर इस प्रकारकी आपत्तियोंका उठाया जाना आरम्भ हुआ। जालन्धर आर्यसमाजके लाला मुंशीरामजी प्रधान थे और उनका 'सद्धर्मप्रचारक' नामका अपना साप्ताहिक पत्र भी था। इसलिये जालन्धर आर्यसमाजकी ओरसे जो आक्षेप व आपत्तियाँ उठायी जाती थीं वे 'सद्धर्मप्रचारक' में प्रकाशित हुआ करती थीं। जालन्धर आर्यसमाजमें आचारकी शुद्धता और सिद्धान्तोंके अमलपर बहुत बल दिया जाता था। जालन्धर आर्यसमाजकी इस बातसे पं० गुरुदत्तजी बहुत प्रसन्न थे और इसी कारण उनका लाला मुंशीरामजीसे प्रेम हो गया था। बादको पं० लेखरामजीका भी लाला मुंशीरामजीसे घनिष्ठ सम्बन्ध इसी कारण हुआ। जालन्धर आर्यसमाजके विरुद्ध लाहोरकी आर्यसमाजका यह हाल था कि वहां राय मूलराज सरीखे नास्ति-

क पुरुष नेताओंकी गद्दी सम्भाले हुए थे। डी० ए० वी० कालिज स्थापित तो स्वामी दयानन्दकी स्मृति में किया गया था परन्तु वहांके विद्यार्थी-आश्रममें सब विद्यार्थियोंके लिये मांसका भोजन बनता था। वहाँके प्रिन्सिपल लाला हंसराजजी स्वयं मांस-भोजी थे। इन सब बातोंपर स्पष्ट वक्ता पं० गुरुदत्तजीने सार्वजनिक आपत्तियां उठाना आरम्भ कीं। उनका समर्थन जालन्धर आर्यसमाज आदिकी ओरसे भी हुआ। पं० गुरुदत्तजीने तो यह सब शुद्ध भावसे प्रेरित होकर किया था, परन्तु जिन लोगोंके हाथोंमें अधिकार सूत्र थे वे उलटा उन्हीं पर गुरुडमके लालची, प्रिन्सिपल पदके अभिलाषी और प्रतिष्ठाके भूखे होने आदिके आक्षेप करने लगे। केवल इतना ही नहीं, जिस कामसे पं० गुरुदत्तकी सहानुभूति होती उसका भी विरोध या उपेक्षा करने लग गये।

उपदेशक क्लास का झगड़ा।

इन्हीं दिनों टीकमानन्द नामका (यही बादमें प्रसिद्ध उपदेशक पं० पूर्णानन्द बने) एक सिंधी युवक आर्यसमाजमें प्रविष्ट हुआ था। इसको आर्यसमाजी बनारस में स्वामी रामनन्दजी ने बनाया था। यह चाहता था कि बनारसमें रहकर संस्कृत शास्त्रादि का अध्ययन करूं। परन्तु जब बनारसमें आर्यसमाजी विद्यार्थी को कोई पढ़ाने को तैयार नहीं हुआ तब लाला मुंशीरामजीकी सलाहसे स्वामी रामानन्दजीने एक उपदेशक क्लास

खोलनेका निश्चय किया। आर्य प्रतिनिधि सभाके नेताओंके सामने यह विषय लाया गया परन्तु उन्होंने इसको अपेक्षा दृष्टिसे देखा। तब लाला मुन्शीरामजीने अपनी स्वतंत्र प्रकृतिके अनुसार 'सद्धर्मप्रचारक' में लिख दिया कि यत: सभाके अधिकारियोंकी उपदेशक क्लास खुलनेसे सहानुभूति नहीं है इस कारण इस कार्यके लिये चंदा सीधा पं० गुरुदत्त विद्यार्थीके पास भेजा जाय बस, नेताओंको पं० गुरुदत्तके विरुद्ध आक्षेप करनेका एक और अवसर मिल गया। यह और बात है कि बादको स्वामी रामानन्दजीका ही पता न मिलनेके कारण यह क्लास नहीं खुल सका।

इसके साथ ही मांसका मसला ऐसा था जिसका केवल लाहोरके नेताओंसे ही सम्बन्ध न था। उस समय बहुतसे आर्य्यसमाजके सभासद मांस-भक्षक थे जो आर्यसमाजी सिद्धान्तोंके अमलपर विशेष बल देनेवाले थे। वे मांस-भोजियोंके इस दोषकी बराबर चर्चा करने लग गये थे, इस कारण मांसके प्रश्नको लेकर विवाद दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था।

वैदिक शाठ-विधिका प्रश्न।

इसी समय पं० गुरुदत्तजी और उनके समान विचार वाले कुछ पुरुषोंने यह प्रश्न उठाया कि डी० ए० वी० कालेज क्योंकि स्वामी दयानन्दकी यादगारमें खोला गया है इस लिये इसमें वैदिक साहित्यकी शिक्षाके लिये अलग एक विभाग खोलना चाहिये। साधारण परिस्थिति में शायद इसका विरोध न

किया जाता; परन्तु पूर्वोक्त कारणोंसे जिन लोगोंके हाथमें नेतृत्व और अधिकारके सूत्र थे वे पण्डित गुरुदत्तजी और लाला मुन्शी-रामजीके मित्रों आदिको प्रत्येक बातको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे थे। उनकी ओरसे इस प्रस्तावके विरुद्ध यह दलील पेश की गयी कि डी० ए० वी० कालिज रजिष्टर्ड संस्था है, यदि उस में वैदिक पाठ विधिका आरम्भ किया गया तो यूनिवर्सिटी उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेगी और यह कार्य उसके उद्देश्यके विरुद्ध होगा। इस प्रकार इस पाठ-विधिके प्रश्नने भी मत भेदका नया कारण उपस्थित किया।

वेद-प्रचारका प्रश्न

जिन सज्जनोंने वैदिक पाठविधिका प्रस्ताव उपस्थित किया था उनकी ओरसे ही कहा गया कि आर्य्य प्रतिनिधि सभा वेद प्रचारके लिये धन व्यय नहीं करती, इसलिये वेद प्रचारका विशेष प्रबन्ध होना चाहिये। परन्तु अधिकारियोंने इसपर भी ध्यान नहीं दिया। डी० ए० वी० कालिजपर ही सब शक्तियोंका व्यय किया जाता रहा। जो धन दान आदिसे प्राप्त होता था उसका भी अधिकांश डी० ए० वी० कालिज पर ही व्यय किया जाता था। परन्तु ये सब प्रश्न ऐसे थे जिनका सम्बन्ध प्रायः अधि-कारियों और कार्य्यकर्त्ताओंसे ही था। मांस-भक्षणका सवाल ऐसा था जिसका सम्बन्ध अधिकारियोंके सिवाय आम आर्य्य-समाजियोंसे भी था। अतः इस प्रश्नको लेकर पञ्जाबमें बहुत

से स्थानोंपर आर्योंमें दो दल बन गये। सम्वत १९४८में लाहोर आर्यसमाजका जो उत्सव हुआ उसके बादसे मांस भोजनका बिना संकोच या लिहाजके विरोध और समर्थन होने लगा था। लाला साईंदासजी आदि इस बढ़ती हुई कलहाग्निको देख रहे थे वे समझते थे कि यह शीघ्र ही भयंकर रूप धारण करने वाली है और इसके आरम्भ करनेमें उनका अपना जो भाग था उसको भी वे जानते थे, परन्तु अपनी नीतिमत्ता और अधिकार शक्तिके कारण उन्होंने आर्य समाजमें स्पष्ट दो दल बननेको अभी तक रोका हुआ था। लाला साईंदासकी मृत्युके बाद आर्यसमाजके अधिकांश अधिकारके स्थान लाला हंसराजजीके हाथमें आ गये। लाला हंसराजजी और उनके साथियोंके पास यद्यपि अधिकार और धनकी शक्ति थी परन्तु उनका प्रभाव उतना नहीं था जितना लाला साईंदासजीका। इस कारण इस सारी परिस्थितिका अनिवार्य परिणाम वही हुआ जिसकी कई वर्ष पहिले से सबको सम्भावना हो गयी थी। सम्वत् १९५१ में आर्यसमाजमें बहुत झगड़ेके बाद स्पष्ट दो दल हो गये। जो लोग वेद-प्रचार, प्राचीन वैदिक साहित्यके शिक्षण और निरामिष भोजनके पक्षपाती थे उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा और उसके भवन आदि पर अधिकार करके अलग वेद-प्रचार आदिका कार्य आरम्भ कर दिया और जो लोग मांस भोजन तथा आर्य समाजकी तत्कालीन अवस्थाके ही पक्षपाती थे वे दयानन्द ऐंगलो वैदिक कालिज और उसकी जायदाद आदिको लेकर दूसरे दल

में सम्मिलित हो गये।

जिस समय यह विभाग हुआ उस समय आर्य्य प्रतिनिधि सभाके प्रधान लाला मुंशीरामजी थे, इस कारण स्वभावतः वैदिक सभ्यताके पक्षपाती और निरामिष भोजी दलके नेता भी यही समझे गये। द० ऐं० वैं० कालिजके प्रिंसिपल लाला हंसराजजी थे इस कारण मांसभोजी दलने उन्हीं को अपना मुखिया माना। मांसभोजी दलके लोग अपने प्रतिपक्षियों को घास पार्टी अथवा वुद्ध महात्मा कहा करते थे। इस लिये निरामिष-भोजियोंने स्वयं ही मांसभोजी दलको चिढ़ानेके प्रयोजनसे महात्मा पार्टी नाम स्वीकार कर लिया दूसरी ओर निरामिष-भोजी दल मांसभोजी दलको तानेवाजी से बहुत देर तक मांस पार्टी अथवा गिद्ध पार्टी ही कहता रहा।

ग्यारहवां अध्याय
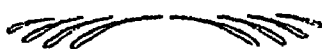
गुरुकुलकी स्थापना।
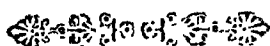
आर्य समाजियोंमें दो दल हो जानेके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाबके कार्यका सारा बोझ लाला मुन्शीरामजी पर ही आ पड़ा इस लिये इन्होंने भी सब कुछ छोड़ कर अपना सारा समय सभाके कार्योंको देना आरम्भ कर दिया। इस समय सभा जिन लोगोंके हाथमें थी उनको पुराने अधिकारियोंसे बड़ी शिकायत इस बातकी थी कि वे वैदिक धर्म प्रचारकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देते थे। अतः सभाने पहिला काम योग्य उपदेशक रख कर धर्म प्रचारका किया। पं० लेखरामजी और स्वामी पूर्णानन्दजी आदि योग्य उपदेशक देश भरमें घूम घूमकर वैदिकधर्मका डङ्का बजाने लगे। इससे जहां आर्यसमाजके अनुयायियोंकी संख्यामें वृद्धि होने लगी वहां झूठी धार्मिक क्रियाओं और दक्षिणा तथा जातिके सहारे जीविका चलाने वाली पौराणिक पोप मण्डलीमें बड़ी खलबली मची। पंजाबमें कई स्थानों पर धर्मसभायें स्थापित की गयीं। आर्य समाजके साथ गाली गलौज करनेके लिये नये पत्र निकाले गये। कई

स्थानों पर शास्त्रार्थ रचाये गये । परन्तु प्रायः सभी जगह जोश भरी आर्य सामाजिकताकी लहरके सामने विरोधियोंको मुंहकी खानी पड़ी । लाला मुन्शीरामजी एक ओर तो आर्य प्रतिनिधि सभाके प्रधान की हैसियतसे धर्म प्रचार और शास्त्रार्थों आदि का प्रबन्ध करते थे और दूसरी ओर "सद्धर्म-प्रचारक" द्वारा विरोधियोंके आक्रमणोंका जवाब देते थे । 'सद्धर्म प्रचारक' ने इन दिनों आर्यसमाज सम्बन्धी समाचार प्रकाशित करके भी वैदिक धर्मकी बहुत सेवा की । इन दिनों पंजाबमें 'सद्धर्म-प्रचारक' ही एक प्रकारसे वेद-प्रचारक दलका मुखपत्र बना हुआ था, इस कारण इसका प्रभाव खूब बढ़ गया । संवत १९५१ से आगेके तीन चार वर्ष लाला मुंशीरामजीने वैदिक धर्मके प्रचार, उसके प्रबन्ध और अपने साप्ताहिक पत्र द्वारा विरोधियोंके उत्तर देनेमें ही विताये । यह समय बड़े उत्साह और संघर्षमें बीता, क्योंकि जहां एक ओर अपने लिये नया मैदान तैयार करना था वहां मांस पार्टीके आर्यसमाजियों और पौराणिकोंके विरोधका मुकाबला भी करना पड़ता था । लाला हंसराजजीकी पार्टीने तो इन दिनों अपनी सारी शक्ति द० ऐं० वै० कालिजमें ही लगा दी थी, और वैदिक धर्मके प्रचारका कार्य केवल आर्य प्रतिनिधि सभा ही कर रही थी । इस कारण आर्यसमाजके विरोधियों के जितने आक्रमण होते थे वेद प्रचार दल पर ही होते थे । फलतः उक्त दलके नेताओंके लिये यह समय बड़ी विकट परि-स्थितिका था । परन्तु उक्त दलके लाला मुन्शीरामजी आदि

नेताओंने इन सब कठिनाइयोंका बड़े अनथक परिश्रम और दृढ़-ताके साथ मुकाबला किया और इसी लिये इस दलको आगे जाकर वह शक्ति प्राप्त हुई जिसके सामने ब्रिटिश सरकारको भी सिर झुकाना पड़ा।

पं० गोपीनाथ का मुक़दमा।

यह लिखा जा चुका है कि आर्यसमाजके विरोधी इन दिनों केवल वेद-प्रचार-दलको ही अपना शत्रु समझते थे। वेदप्रचार-दल र जितने सभ्य आक्षेप किये जाते थे उन सबका उत्तर 'सद्धर्म-प्रचारक' दिया करता था। परन्तु 'सद्धर्म-प्रचारक' को आरम्भ से ही यह नीति थी कि वह गन्दे अश्लील और अशिष्ट आक्रमणोंपर ध्यान तक नहीं देता था। इस नीतिके होते हुए भी लाहौरकी धर्म सभाका मुखपत्र 'सनातन धर्म गजट' आर्यसमाज के विरुद्ध साधारणतया और लाला मुंशीरामके विरुद्ध विशेषतया सभ्यतासे गिरी हुई बातें लिखनेसे बाज नहीं आता था। कई बार अनेक आर्यसमाजियोंने लाला मुंशीरामजीसे अनुरोध किया कि वह 'सनातनधर्म-गजट' की बातोंका तुर्की-ब-तुर्की जवाब दें। परन्तु वह ऐसा करनेसे स्पष्ट इनकार करते रहे। 'सनातनधर्म गजट' के सम्पादक पं० गोपीनाथजी थे, जो कि उस समय सनातनधर्म सभाके मन्त्री और उपदेशक भी थे। यह अपने पत्रमें इतनी पतित और अश्लील बातें लिखते थे कि एक बार प्रांतिक सरकार को भी विवश होकर इनके विरुद्ध एक मुक़दमा चलाना पड़ा था,

जिसमें इन्हें पहिले तो कठोर कारावासका दण्ड हुआ था परन्तु अपील करने पर वह कई सौ रुपयेके जुरमानेमें बदल गया था। 'सद्धर्मप्रचारक' में यों तो इनके विरुद्ध कुछ नहीं लिखा जाता था परन्तु जब आर्यसमाजियोंकी ओरसे बहुत दबाव पड़ने लगता तब लाला मुंशीरामजी केवल इतना लिखकर टाल देते कि पतित पुरुषोंको मुंह न लगाना ही अच्छा है। परन्तु पं० गोपीनाथसे इतना भी न सहा गया और संवत् १९५७ में उसने 'सद्धर्मप्रचारक' के सम्पादक लाला मुंशीरामजो, उपसम्पादक लाला वजीरचन्दजी और मैनेजर लाला बस्तीरामजी पर मान हानि का मुकदमा चलाया। मुकद्मेके चलानेमें कारण केवल 'सद्धर्मप्रचारक' के प्रति ही उसका द्वेष न था, इसके मूलमें और भी दो एक घटनायें कार्य कर रही थीं, जिनका संक्षेपमें निर्देश कर देनेसे यह भी ज्ञात होगा कि उन दिनों लाला मुंशीरामजी और उनके सहकारी कैसी कठिन परिस्थितिमें कार्य कर रहे थे।

रोपड़के आर्योंका बहिष्कार।

संवत् १९५७-५८ में रोपड़में कई पुरुष वैदिक धम स्वीकार करके आर्यसमाजकी शरणमें आये। पौराणिक हिन्दुओंकी ओर से इनको नाना प्रकारके कष्ट दिये जाने लगे। जब ये पुरुष सब प्रकारकी कठिनाइयोंमें भी अपने मन्तव्योंपर दृढ़ रहे तब पौराणि-कोंने (धर्म सभा वालोंने) मिलकर इनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया। इनको यहां तक कष्ट दिया गया कि ज्येष्ठ और

आषाढ़की गरमियों में इनका पीनेके लिये पानी तक मिलना दुर्लभ हो गया। रोपड़में ऐसी विकट परिस्थिति हो जानेपर ये लोग जालन्धर चले गये और वहां जाकर लाला तथा सोमनाथ और इन्द्रचन्द्रने धर्म सभा के मंत्रीकी हैसियत से पं० गोपीनाथ और उसके साथियों पर मानहानिका मुकदमा कर दिया। पं० गोपीनाथ अभी सरकारी मुकदमे से छूटकर दम भी न लेने पाया था कि उस पर यह दूसरा मुकदमा हो गया। उसने समझा कि इस मुकदमे को करानेमें लाला मुन्शीरामजी का ही हाथ है इस कारण उसने 'सद्धर्म-प्रचारक' के लेखों की विनापर लाला मुंशीरामजी और उनके दो कार्य कर्ताओंपर ऊपर-निर्दिष्ट मुकदमा चलाया। पं० गोपीनाथने यह मुकदमा चलाया तो लाला मुंशी-रामजीको नुकसान पहुंचानेके लिये था; परन्तु इसमें उसे उलटे लेनेके देने पड़ गये। इस मुकदमेमें उसकी असभ्यता, कुटिलता रण्डीबाजी, गोमांस खोरी और दुरङ्गी चालों आदि के ऐसे ऐसे रहस्य खुले कि गोपीनाथ और साथ ही उसके साथियोंके मुंहपर सदाको ताला ठुक गया। इस मुकदमेमें आर्य जनताने बड़ी दिल-चस्पी जाहिरकी थी। अदालतमें हजारोंकी भीड़ होती थी। अनेक आर्यसमाजियोंके अनुरोध पर लाला मुंशीरामजीने इस मुकदमेका पूरा हाल पुस्तकाकारमें भी छपवा दिया था।

गुरुकुलके लिये ३०,०००) रु०

आर्य प्रतिनिधि सभाको जब वेद-प्रचार करते हुए चार वर्ष

बीत गये तब वैदिक साहित्यकी शिक्षाके लिये एक वैदिक शिक्षणालय खोलनेका विचार उठा। यह विचार नया नहीं था। पं० गुरुदत्तजीके जीवन कालमें ही कुछ आर्य पुरुषोंने द० ऐं० वे० कालिजमें वैदिक साहित्यके लिये अलग एक श्रेणी खोलनेकी बात उठाई थी, परन्तु तब उनको सफलता न हुई थी। फिर तीन चार वर्ष तक वेद-प्रचारमें सब शक्तियाँ लगी रहनेके कारण यह विचार कुछ पिछड़सा गया था। संवत् १९ ४ में 'सद्धर्म-प्रचारक' द्वारा लाला मुंशीरामजीने इसके लिये फिर आन्दोलन उठाया। और इस बार उन्होंने केवल वैदिक साहित्यके शिक्षणसे ही सन्तोष नहीं किया, पुरानी आश्रम-पद्धति और वर्ण-व्यवस्थाको पुनरुज्जीवित करनेके उद्देश्यसे प्राचीन गुरु-शिष्यकी परिपाटीको लक्ष्यमें रखते हुए शहरोंसे अलग एक ब्रह्मचर्याश्रम खोलनेपर बल दिया। संवत् १९५४ में आर्य प्रतिनिधि सभाने इस प्रकारका एक आश्रम-विद्यालय (गुरुकुल) खोलनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। परन्तु उसके लिये कार्य-कर्त्ता और धन कहांसे आवें। लाला मुंशीरामजीके सिवाय और कौन इस कार्यको पूरा करता? उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं गुरुकुलको खोलनेके लिये ३००००) तीस हज़ार रुपये इकट्ठे न कर लूंगा तब तक घरमें पांव न रखूंगा। लाला मुंशीरामजीने अपनी इस प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये देश भरका दौरा लगाया। स्थान स्थान पर गुरुकुल शिक्षा-प्रणालीपर व्याख्यान दिये और तब तक आराम न लिया जब तक पूरा तीस सहस्र रुपया जमा न कर लिया। पहिले जो लोग

गुरुकुलका नाम सुनकर हंसते थे वे लाला मुंशीरामजीकी इस सफलताको देख कर दांतों तले अङ्गुली दबाने लगे।

वानप्रस्थी बनकर घर-बारका त्याग।

रुपया तो हो गया। अब कार्यकर्त्ताओंका प्रश्न सामने आया। कौन घर बार छोड़कर जङ्गलमें जाकर अपना जीवन बितावे ? इसके लिये भी लाला मुंशीरामजी ही आगे बढ़े। उन्होंने आश्रम व्यवस्थाको बिगड़ते देखकर ब्रह्मचर्याश्रम खोलनेकी आवश्यकता का अनुभव किया था। अब उक्त ब्रह्मचर्याश्रमको चलानेके लिये योग्य आश्रमियोंके अभावको पूर्ण करनेका संकल्प किया। लाला मुंशीरामजीने कहा कि मैं ही सब घर बार छोड़कर वानप्रस्थीका जीवन व्यतीत करता हुआ जङ्गलमें रहकर इस ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल) को चलाऊंगा। जब लाला मुन्शीरामजीने यह उदाहरण पेश किया तो उनको सहकारी कार्यकर्त्ताओं का भी अभाव न रहा। जालन्धरके लाला शालिग्रामजी "भण्डारी" आर्यसमाजमें प्रवेश करते ही आजन्म अविवाहित रहनेका व्रत ले चुके थे। उन्होंने गुरुकुलमें कार्य करनेके लिये लाला मुन्शीरामजीका साथ देना स्वीकार किया। पं० गङ्गादत्त नामके एक विद्वान् पुरुष लाला मुन्शीरामजीके मित्र थे। उनके पीछे भी घर गृहस्थीका कोई झंझट न था। उन्होंने उक्त आश्रममें आचार्य-रूपेण कार्य करना स्वीकार किया। लाला मुंशीरामजीके एक और मित्र पं० विष्णुमित्र थे। यह भी उनके सहयोगके लिये आगे आये।

बालक कहांसे आवें।

रुपया जमा हो गया। कार्यकर्त्ता भी मिल गये। अब बालक कहांसे आवें? कौन माता पिता पचीस वर्षकी आयु तक अपने पुत्रोंको अलग करनेके लिये तैयार होंगे? कौन माता पिता अपने बालकोंको घरसे निकाल कर जङ्गलमें भेजना चाहेंगे? इस समस्याको भी लाला मुंशीरामजीने ही हल किया। उन्होंने सबसे पहिले अपने दोनों पुत्रों—हरिश्चन्द्र और इन्द्रचन्द्र—को इस नये परीक्षणके लिये समर्पित कर दिया। इनके साहसको देख कर और भी कई मित्रोंने हिम्मत बांधी और अपने अपने पुत्रोंको गुरुकुलमें भेजना स्वीकार कर लिया।

ऊपर जिन सज्जनोंके नाम लिखे गये हैं उन्होंने केवल १०।१५ बालकोंको लेकर गुजरानवालामें स्वामी दयानन्द के 'सत्यार्थप्रकाश'में लिखी पाठ-विधिके अनुसार शिक्षण आरम्भ कर दिया। परन्तु गुजरानवाला उक्त प्रकारके आश्रमके लिये उपयुक्त स्थान नहीं था। ब्रह्मचर्याश्रम तो शहरोंके गन्दे वातावरणके प्रभावसे अलग होना चाहिये। इस लिये अब स्थानकी तलाश होने लगी। विचार किया गया कि यदि कोई ऐसा स्थान मिल जाय जो पंजाब से नज़दीक भी हो और शहरोंसे अलग भी, तो अच्छा होगा। हरिद्वारमें प्रकृतिकी रमणीयता और ऊपर बतलाये गये दोनों गुण मौजूद पाये गये। इस लिये लाला मुंशीरामजी भण्डारी शालिग्रामजीको साथ लेकर स्थानकी तलाशके लिये हरिद्वार पहुंचे।

हरिद्वारमें अभी स्थानकी तलाश हो ही रही थी कि एक निःस्वार्थ निरभिमानी दानीने इस कठिनाईको भी हल कर दिया।

मुन्शी अमनसिंहजीका सर्वस्व त्याग

नजीबाबाद (जि० बिजनौर) के मुंशी अमनसिंहजी की हरिद्वारके पास ही कांगड़ी नामक ग्राममें जमींदारी थी। उन्होंने अपनी यह सारी जमींदारी गुरुकुल विश्वविद्यालयके लिये आर्य प्रतिनिधि सभाको समर्पित कर देनेका विचार लाला मुंशीरामजी के सामने प्रकट किया। लाला मुंशीरामजीके लिये इससे बढ़ कर खुशीकी बात क्या हो सकती थी। बस एक मास बाद ही गुजरांवालासे सब ब्रह्मचारियों और कार्यकर्त्ताओं सहित लाला मुंशीरामजी कांगड़ी ग्रामके पास जङ्गलमें आ गये। उन दिनों यहां ऐसा घना जंगल था कि दिनके समय भी चीतों और बाघों जैसे हिंस्र जन्तुओंसे सामना हो जाना साधारण बात थी। इसी निर्जन और घने जंगलमें गुरु और शिष्य सब मिलाकर केवल छब्बीस व्यक्तियोंने संवत् १९५६ में उस महायज्ञका आरम्भ किया जिसकी कीर्ति-सुगन्ध आज पचीस वर्षों में संसारमें सर्वत्र फैल चुकी है। धीरे २ कांगड़ी ग्रामके समीपके जङ्गलों को साफ किया गया और वहां ब्रह्मचारियोंके लिये आश्रम बनवाये गये।

आरम्भमें विचार यह था कि गुरुकुलमें केवल ऐसे ही पुरुषोंको अधिष्ठाता और अध्यापक रखा जाय जो दुनियादारी से निवृत्त हो चुके हों। प्रयत्न करने पर इस प्रकारके कई पुरुष मिल भी

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—
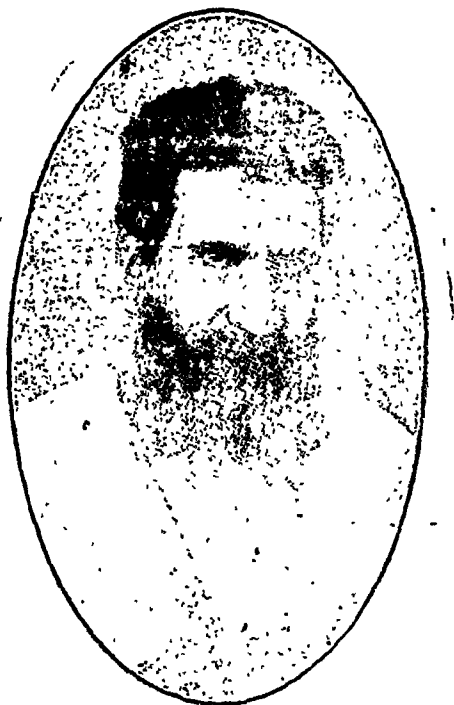
महात्मा मुन्शीरामजी
मु० गुरुकुल कांगड़ी।

गये परन्तु दो तीन वर्ष पीछे कठिनाई प्रतीत होने लगी और इच्छा के विरुद्ध इस विचारको शिथिल करना पड़ा। अब यह नियम किया गया कि वे सद्गृहस्थ भी गुरुकुलमें कार्य कर सकेंगे जो सदाचारी हों और गुरुकुलके उद्देश्योंसे सहानुभूति रखते हों।

पाठविधिमें मत भेद

इस नियमके अनुसार भी कई त्यागी परिश्रमी योग्य और उत्साही कार्यकर्त्ता गुरुकुलको मिल गये। गुरुकुल विश्वविद्यालय के वर्तमान प्रिन्सिपल मा० रामदेवजी भी उन्हीं पुरुषोंमें से हैं जिन्होंने गुरुकुलकी सेवा इस समयमें आरम्भ की थी। परन्तु इन नव-शिक्षित पुरुषोंके आने पर गुरुकुलकी भावी पाठ विधिके विषय में तीव्र मतभेद उपस्थित हो गया। आचार्य पं० गङ्गादत्त आदि गुरुकुलको कोरी वैदिक पाठशाला बनाकर उसमें केवल संस्कृत भाषा और तत्सम्बन्धी शास्त्रोंको ही पढ़ाना चाहते थे और मा० रामदेवजी आदि नव-शिक्षित पुरुष प्राचीन वैदिक साहित्यके साथ साथ अंग्रेजी भाषा और अन्य पाश्चात्य विज्ञानों के भी शिक्षाके पक्षपाती थे। लाला मुंशीरामजीका स्वयं भी पिछला मत था परन्तु वह एक व्यवहार कुशल मनुष्यके समान उस समय इस प्रश्नको उठाना अनावश्यक समझते थे, क्योंकि तब तक गुरुकुल अपनी आरम्भिक अवस्थामें था और उच्च श्रेणियोंमें पढ़ाये जाने वाले विवादास्पद विषयकी चर्चा छेड़ कर कार्यकर्त्ताओंमें मतभेद की तीव्रता उपस्थित करना वह अभीष्ट नहीं समझते थे। यदि लाला मुंशीरामजी इन दिनों स्वयं हमेशा

गुरुकुल में ही रहते होते तो शायद उनकी यह इच्छा पूर्ण हो सकती परन्तु उस समय तक गुरुकुलके कार्यके साथ साथ आर्यसमाजके प्रचार आदि अन्य कार्यों में भी भाग लेते रहते थे और इस कारण उन्हें बीच बीचमें गुरुकुल-भूमि छोड़कर बाहर भी जाना पड़ता था। उनकी अनुपस्थितिमें पाठविधिको लेकर विवाद बढ़ता गया। और अन्त को पं० गङ्गादत्तजी तथा उनके दो एक मित्रों ने गुरुकुल कांगड़ी से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। यद्यपि अपने पुराने सहकारियों से अलहदा होते हुए लाला मुंशीरामजीको कष्ट हुआ तथापि संस्थाके हितका ध्यान रखते हुए यह विच्छेद ही अधिक लाभकारी था। पं० गङ्गादत्तजी आदिके स्थानपर अन्य योग्य विद्वानोंको रख कर कार्य चलाया गया, परन्तु उनके चले जानेसे इतनी हानि अवश्य हुई कि बहुत देर तक संस्कृत आदि पढ़ानेके लिये आर्य समाजके सिद्धान्तों को जानने वाले पण्डित नहीं मिल सके।

महात्मा पदकी प्राप्ति

यों तो इस समयसे लेकर लाला मुंशीरामजीके संन्यास ले लेने तक गुरुकुलका इतिहास ही लाला मुंशीरामजीका जीवन चरित्र है, परन्तु यदि उसे विस्तार पूर्वक लिखा जाय तो वह एक स्वतन्त्र विषय प्रतीत होने लगेगा। इसलिये यहां संक्षेपमें हम अपने चरित्र नायकके शिक्षण-सम्बन्धी विचारों व आदर्शोंको और जिस योग्यतासे उसने उनपर अमल किया उसको दिखलाकर आगे चलेंगे।

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—
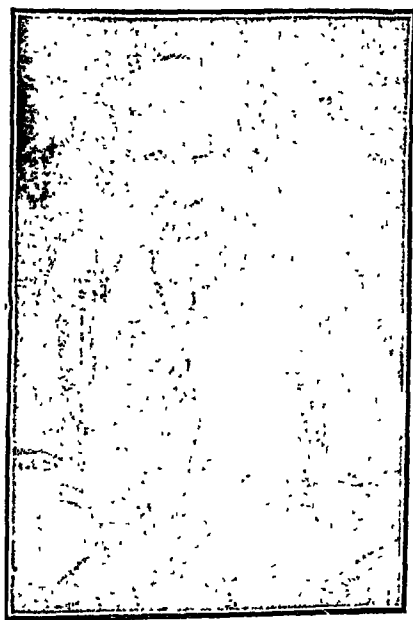
स्वर्गीय मुन्शी अमन सिंहजी ।

लाला मुंशीरामजी कई बार यह अनुभव कर चुके थे कि वकालत करते हुए मनुष्य पूर्णतया सत्यका पालन नहीं कर सकता। इसलिये कई बार उनके मनमें वकालत छोड़ देनेके विचार उठते थे परन्तु अभीतक वे कार्यमें परिणत नहीं हुए थे। गुरुकुलका कार्य अपने सिरपर लेते ही उनकी यह इच्छा स्वयं पूर्ण हो गयी। वकालत छोड़नेके अतिरिक्त उन्होंने जिस प्रकार कष्ट सहकर गुरुकुलके लिये तीस सहस्र रुपया इकट्ठा किया, अपना जीवन और अपने पुत्रोंको इस नये अतर्कित परीक्षणके लिये समर्पित कर दिया और वैयक्तिक लाभकी तनिक भी परवाह न करके वह जिस बातको आदर्श समझते थे उसीकी पूर्तिमें लग गये, उस सबके लिये आर्य जनताने स्वयं ही लाला मुंशीरामको महात्माकी पदवीसे विभूषित किया।

जातपांतके झूठे बन्धनको तोड़ना।

महात्मा मुंशीरामजीके स्वभावमें आर्यसमाजमें प्रवेश करनेके बादसे ही यह विशेषता आ गयी थी कि वह जिस बातको सिद्धान्तके अनुकूल समझते थे उसपर आचरण करनेमें और जिसे सिद्धान्तके विरुद्ध समझते थे उसका विरोध करनेमें शत्रु मित्र और समाज किसीका लिहाज नहीं करते थे। इस स्वभावके कारण जीवनमें कई बार परीक्षाके अवसर आये और वह सभीमें दृढ़ रहे। ऐसी दो तीन परीक्षाओंका उल्लेख पीछे आ चुका है। गुरुकुल खोलनेसे पहिले ऐसी ही परीक्षाके दो अवसर महात्मा मुन्शीरामजीके सामने अपनी कन्याओंके विवाह करते समय आये

थे। आर्यसमाजके सिद्धान्तानुसार जाति या वर्ण जन्मसे नहीं, कर्मसे होता है। परन्तु आजतक कितने आर्यसमाजी ऐसे हैं जिन्होंने अपने पुत्र पुत्रियोंकी ब्याह शादियोंमें या अन्य व्यवहारों में अपनी पुरानी बिरादरीके झूंठे और कल्पित सम्बन्धोंको छोड़कर और जन्मकी जातिको तोड़कर व्यवहार किया हो। निःसन्देह आर्यसमाजियोंके लिये यह अत्यन्त लज्जाकी बात है कि वे केवल अपने विवाह आदि सम्बन्धोंमें ही पुरानी झूठी जाति बिरादरीके बन्धनोंका पालन नहीं करते बल्कि उनमेंसे बहुतेरे अपने नामोंके साथ भी अपनी जन्म-जातिका लोक रीतिके अनुसार बड़े अभिमानसे प्रयोग करते हैं। आर्यसमाजियों के विषय में यह शिकायत हम आज संवत् १९८३ में कर रहे हैं। परन्तु महात्मा मुंशीरामजीने आजसे तीस वर्ष पूर्व गुण-कर्मानुसार वर्ण व्यवस्थाके सिद्धान्तपर अमल करते हुए पुरानी जात-बिरादरीके रिश्तेको तोड़कर दिखला दिया था। उन्होंने अपनी दोनों कन्याओंका विवाह जाति बिरादरीके झूठे बन्धनोंको तोड़कर किया था।

महात्माजीकी शिक्षाके आदर्श।

जिस प्रकार महात्मा मुन्शीरामजीने अपनी कन्याओंके विवाह में सिद्धान्तकी दृढ़ता प्रकट की उसी प्रकार उन्होंने अपने पुत्रोंके शिक्षण और विवाहमें भी दिखलायी थी। शिक्षणके लिये तो उन्होंने जो किया उसका सम्बन्ध केवल उनके पुत्रों से ही नहीं, प्रत्युत तमाम भारतवर्षकी शिक्षा प्रणालीसे है। महात्मा मुन्शीरामजीने गुरुकुल काँगड़ीको चलानेके लिये जिन सिद्धान्तों के

अनुसार कार्य किया वे उनको शिक्षण-शास्त्रकी बड़ी बड़ी पुस्तकें पढ़ कर अथवा किसी ट्रेनिङ्ग कालिजमें रहकर प्राप्त नहीं हुए थे। ये सिद्धान्त एकमात्र उनके अपने उत्साह, विचार और अनुभवके परिणाम थे।

ब्रह्मचर्य और सदाचार।

आर्यसमाजमें प्रवेश करते ही उन्होंने सबसे पहिले अपने भारतीय साहित्य और सभ्यताके पुनरुद्धारको आवश्यकताको अनुभव किया। आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द आर्य सभ्यताके अभिमानी पुरुष थे और उन्होंने भारतवर्षमें विदेशी रीति रिवाजों और विदेशी आचार विचार और व्यवहारकी लहरको बढ़ते देखकर अपना सारा जीवन ही इस लहरको रोकने के लिये उत्सर्ग कर दिया था। इस लिये यह सर्वथा स्वाभाविक था कि स्वामी दयानन्दको स्पिरिटको समझने वाला उनका सच्चा शिष्य भी आर्य सभ्यताके पुनरुद्धारके लिये ही अपना जीवन लगाता। स्वामी दयानन्दके स्वर्गवासके पीछे अपने आपको उनके अनुयायी बतलाने वाले कुछ सज्जनोंने द० ऐं० वें० कालिज स्वामीजीको यादगारमें खोला था परन्तु उसमें उनके उद्देश्यकी पूर्ति होते न देख कर महात्मा मुंशीरामजीके मनमें गुरुकुल खोलनेका विचार उत्पन्न हुआ और इस शिक्षणालयके लिये आदर्शोंकी खोज भी उन्होंने अपने प्राचीन भारतीय शास्त्रों में ही की। गुरुकुल सांसारिक झगड़ोंके प्रभावसे रहित, शहरों और ग्रामोंसे दूर जङ्गलमें होना चाहिये, विद्यार्थियोंका जीवन

नियमित और उनका आहार विहार आदि स्वच्छ तथा सात्विक होना चाहिये, इत्यादि सब बातें उनको स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थोंसे ही मालूम हुईं। जब उन्होंने इन बातों पर विचार व मनन किया तब अपने अनुभवसे इन सबको सच्चा पाया। महात्मा मुन्शीरामजीको अपने विद्यार्थी जीवनका अनुभव था कि सांसारिक झगड़ोंमें लिप्त रहनेसे विद्याध्ययनमें पूरी सफलता नहीं हो सकती। वह निजू अनुभवसे जानते थे कि किस प्रकार उनको केवल सांसारिक झगड़ोंके कारण अच्छी तरह तैयारी होते हुए भी बार बार परीक्षाओंमें असफलता हुई और किस प्रकार अनियमित जीवन स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होकर विद्यार्थीके उद्देश्यका बाधक होता है। उन्होंने बनारसमें देखा था कि ब्रह्मचर्य्य और सदाचारकी शिक्षाके अभावके कारण विद्यार्थियोंको कैसे कैसे निन्दनीय आचरणोंकी आदत पड़ जाती और आचारहीन अध्यापकोंका विद्यार्थियों पर कैसा बुरा असर होता है। इन सब निजू अनुभवोंने ही महात्मा मुन्शीरामजीको गुरुकुल शिक्षा-प्रणालीका दृढ़ पक्षपाती बनाया था। और इसी कारण पूर्ण विश्वास और निश्चिन्तताके साथ उन्होंने पहिले अपने पुत्रोंको गुरुकुल कांगड़ीमें दाखिल किया।

सिद्धान्तों और परिस्थितियोंका सामंजस्य।

ऊपर-निर्दिष्ट सब विचार यद्यपि महात्मा मुंशीरामजीने प्राचीन शास्त्रोंके अध्ययनसे प्राप्त किये थे, तथापि वह अन्धे पौराणिकोंकी भांति लकीरके फकीर न थे। उन्होंने स्वामी दया-

नन्दके ग्रन्थों और प्राचीन स्मृति-शास्त्रोंको पढ़ कर उनका भली भांति मनन किया और आशय समझ लिया था। इस लिये उन्होंने अपने गुरुकुलमें प्राचीन शिक्षा प्रणालीके महत्व पूर्ण सिद्धान्तोंका तो समावेश किया परन्तु कई ऐसी क्रियाओंको जिनपर कि संसारकी वर्तमान अवस्थाओंमें आचरण हो सकना सम्भव नहीं छोड़ दिया। उदाहरणार्थ, वर्तमान परिस्थितिमें यह सम्भव नहीं कि बालक ग्रामों या शहरोंमें जाकर प्रति दिन भिक्षा मांग कर लाया करें। प्रथम तो आज कल बहुत थोड़े गृहस्थ पुरुष ऐसे मिलेंगे जो ब्रह्मचारियोंके भिक्षा मांगनेके आदर्शको समझने और उसके कदर करने वाले हों; दूसरे आज कल नगरों और ग्रामोंका साधारण जीवन इतना पतित हो गया है कि छोटे बालकों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ना बहुत अधिक सम्भव है। इसी प्रकार आज कल यह सम्भव नहीं कि एक ऐसी संस्थाके ब्रह्मचारी, जिसके संचालक ब्रह्मचारियोंके स्वास्थ्य आदिके लिये उनके संरक्षकोंके प्रति उत्तरदायी हों, नंगे शरीर या केवल वल्कल वस्त्र पहिन कर रहें, अथवा शिरपर जटायें रखें या सब सिर घुटवा दें। इन सब विषयोंको खूब सोच विचारकर ही महात्माजीने अपने गुरुकुलके लिये ऐसे नियम बनाये थे जो प्राचीन शिक्षा प्रणालीके आदर्शोंकी भी रक्षा कर सकें और संसारको वर्तमान अवस्थाओंके भी प्रतिकूल न हों।

पाश्चात्य विज्ञानोंकी शिक्षा।

जहां महात्मा मुन्शीरामजीको स्वामी दयानन्दके ग्रन्थोंसे

विद्यार्थियोंके आचरणनिर्माण-सम्बन्धी उपरोक्त विचार मिले वहां उनको उन्हींकी (स्वामीजीके ही) ग्रन्थोंसे आधुनिक विज्ञान और अन्य भाषाओंकी शिक्षाका ईशारा भी मिला। स्वामीजीने 'सत्यार्थ प्रकाश'में लिखा हैं कि राज-भाषा आदि अन्य भाषाओंका भी अक्षराभ्यास कराया जाय। बस, केवल इसी इशारेसे महात्माजीने गुरुकुलकी पाठविधिमें वैदिक साहित्य और संस्कृत शिक्षाको मुख्य रखते हुए अन्य पाश्चात्य विज्ञानोंका और गौण रूपसे अंग्रेजी भाषाका भी समावेश किया। उसीका फल यह हुआ कि गुरुकुल काँगड़ीके स्नातक जहाँ प्राचीन संस्कृत आदिके विद्वान निकले वहाँ वे आधुनिक पाश्चात्य विज्ञानोंके ज्ञानसे भी वंचित नहीं रहे।

शिक्षाका माध्यम राष्ट्र-भाषा हो।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणालीके विषयमें तीसरी बड़ी विशेषता शिक्षाके माध्यमकी है। जिस समय महात्मा मुन्शीरामजीने गुरुकुलमें सब विषयोंकी शिक्षाका मध्यम हिन्दी भाषाको बनानेका निश्चय किया उस समय यह विचार भारतके बड़े बड़े शिक्षा शास्त्रज्ञ कहे जाने वालोंकी कल्पनामें भी नहीं आया था। महात्मा मुन्शीरामजीने यह विचार उस समय कहांसे लिया इसका लेखकको भी स्वयं पता नहीं। सम्भवतः यह उनके अपने ही मनन और विचार और स्व-देश स्व-भाव स्व-संस्कृति और स्व-धर्मके अभिमानका ही परिणाम था। बादको जब भारतवर्षके शिक्षा-शास्त्रज्ञोंमें इस विषयकी चर्चा छिड़ी तब कई

एक कट्टर अविश्वासियोंको गुरुकुल विद्यालयकी श्रेणियां देख कर ही यह विश्वास हुआ कि उच्चसे उच्च शिक्षा मातृभाषाके माध्यम द्वारा दी जा सकती है। श्री० श्रीनिवास शास्त्री और कलकत्ता यूनिवरसिटीके कमीशनके प्रधान मि० सेडलर इसी प्रकारके पुरुषोंमें से हैं। श्री० शास्त्रीकी मनोवृत्ति ही अंग्रेजों-की दासतासे पूर्ण होनेके कारण उनका गुरुकुल देखनेसे पहिले तक यह पक्का विश्वास था कि उच्च शिक्षा किसी भी देशी भाषा द्वारा नहीं दी जा सकती और निर्विघ्नता पूर्वक विद्याध्ययनके लिये विद्यार्थियोंका युरोपियन रहन सहनकी रीतिसे ही रहना आवश्यक है। उनके इस विचारका बदलनेका सारा श्रेय महात्मा मुन्शीरामजीको ही है।

सरकारी यूनिवरसिटीसे सम्बन्धकी उपेक्षा।

जिस समय गुरुकुल विश्वविद्यालयकी उक्त सब विशेषतायें जनताके सम्मुख रखी गयीं उस समय आर्यसमाजियोंकी ओरसे यह प्रश्न उठाया गया कि सरकार ऐसे शिक्षणालयको अपनी यूनिवरसिटियोंसे सम्बन्ध न करेगी। परन्तु यह महात्मा मुन्शी-रामजीका ही साहस था कि उन्होंने स्पष्ट रूपसे सरकारी सम्ब-न्धको लात मार दी और सरकारी नियन्त्रणका अपने शिक्षणा-लयपर न होने देना ही अपने विश्वविद्यालयका आदर्श बतलाया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि सरकारी सम्बन्धका अर्थ सिवाय इसके और कुछ नहीं कि विद्यार्थी अपनी पढाई समाप्त कर चुक-नेपर सरकारी नौकरियां प्राप्त कर सकें और इतनीसी बातके लिये

अपने शिक्षाके आदर्शोंकी उपेक्षा करके सरकारी नियन्त्रण द्वारा अपने हाथ पांव बन्धवा लेना हमको स्वीकार नहीं। संसारमें भारतकी विदेशी सरकारकी गुलामी करना ही भारतीय नवयुवकों अथवा गुरुकुल विश्वविद्यालयके स्नातकोंके जीवनका चरम-लक्ष्य नहीं हो सकता। हमें अपने विद्यार्थियों से सरकारी नीच चाकरीकी अपेक्षा उच्च कार्योंकी आशा है इसलिये ऐसे सरकारी यूनिवरसिटीके सम्बन्ध को हम खुशीसे परे ठुकराते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षाका एकमात्र उद्देश्य विद्यार्थियोंको सरकारी नौकरी करनेके योग्य बनाना नहीं है। शिक्षाका मुख्य उद्देश्य बालकोंको मनुष्य और उत्तम नागरिक बनाकर उन्हें मनुष्य-समाजके लिये अधिकसे अधिक उपयोगी बनाना है। महात्मा मुंशीरामजीने अपने सामने गुरुकुल विश्वविद्यालयका यही उद्देश्य रखा और सरकारी सम्बन्धकी केवल उपेक्षा ही न की बल्कि उसका दृढ़ विरोध भी किया।

जब संवत् १९६८ में संयुक्त प्रांतके लेफ्टिनेण्ट गवरनर सर जेम्स मेसटन गुरुकुल देखने आये थे तब उन्होंने महात्माजी के सामने गुरुकुल विश्वविद्यालय पर सरकारी छाप लगानेकी अपनी इच्छा प्रकट भी की थी परन्तु महात्माजीने इसे अपने सिद्धान्तों और आदर्शोंके विरुद्ध बतलाकर मेस्टनकी कृपाको धन्यवाद-पूर्वक स्पष्टतासे अस्वीकार कर दिया।

गुरुकुलकी एक और विशेषता, जिसको ठीक तरह निभाने में अभीतक महात्मा मुन्शीरामजीके सिवाय और कोई वैसा सफल

नहीं हो सका, वह गुरुओं और विद्यार्थियोंके पारस्परिक सम्बन्धकी थी। महात्मा मुंशीरामजी प्राचीन शिक्षा प्रणालीके अनुसार शिक्षाका आदर्श यह समझते थे कि गुरु और शिष्यके मनोंमें एक दूसरेके प्रति किसी प्रकारका सन्देह भाव न रहे। गुरु शिष्यको पूरा लाभ तभी पहुंचा सकता है जब उसे अपने शिष्यके सम्बन्ध में, कोई बात उससे छिपाकर न करनी पड़े और इसी प्रकार शिष्यका भी गुरुमें इतना विश्वास हो कि वह कोई बात अपने गुरु से छिपाना आवश्यक न समझे। महात्मा मुंशीराम-जीको इस प्रकार का सम्बन्ध एक नहीं, सैकड़ो शिष्योंसे रखना था और इसमें सन्देह नहीं कि उनके अधिकांश शिष्योंका जैसा विश्वास उनपर था वैसा अभीतक अन्य किसीपर नहीं हुआ। केवल शिष्य ही नहीं, गुरुकुलके अन्य कार्यकर्त्ताओंका भी महा-त्मा मुंशीराम पर ऐसा पूरा विश्वास था कि जब गुरुकुलके कार्य के लिये किसी कठिनाईका सामना करनेकी अथवा किसी प्रकारका त्याग करने की आवश्यकता हुई तब कार्यकर्त्ता सदा तैयार पाये गये। संवत् १९७०-७१ में जब गुरुकुल पर विशेष अर्थ-संकट आया था तब महात्मा मुंशीरामजीकी ही प्रेरणासे प्रायः सब अध्यापकोंने अपने वेतनोंमें कमी करके गुरुकुलकी सहायता की थी। महात्माजीके प्रबन्धकी सफलताका एक बड़ा रहस्य यह था।

गुरुकुल कांगड़ीकी इन सब विशेषताओंके अतिरिक्त अन्य भी बहुतसी विशेषतायें हैं जिन सबका श्रेय महात्मा मुंशीराम-

जीको है, परन्तु उनके लिखनेसे ग्रंथ का कलेवर बढ़ जानेके भय से यहां उनका उल्लेख नहीं करते। हां, यदि गुरुकुल कांगड़ीका इतिहास लिखा जाय तो इन सभी विशेषताओंका निर्देश करना अवश्य अनिवार्य हो जायगा। महात्मा मुंशीरामजी गुरुकुलका प्रबंध किस प्रकार किया करते थे, इस विषयकी बहुतसी बातें इस पुस्तकके अन्तिम अध्यायमें आवेंगी। यहां उनको लिखनेसे पिष्टपेषण मात्र होगा, अतः पाठकोंसे यही प्रार्थना है कि उन सब बातोंको अन्तिम अध्यायमें देख लें। यहां इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि महात्माजी गुरुकुलकी आरम्भिक अवस्थामें जब आश्रममें उपस्थित रहते थे तब ब्रह्मचारियोंको व्यायाम, भोजन सन्ध्या हवन और अध्ययन आदि प्रायः प्रत्येक कार्यमें स्वयं सम्मिलित होते थे। आर्यभाषा और धर्मशिक्षा आदि विषयोंको ब्रह्मचारियोंको पढ़ाया भी करते थे और इन कार्योंसे जो समय बचता था वह आश्रमकी इमारत वाटिका और अन्य प्रबन्ध आदि की देख रेखमें लगाते थे।

बारहवां अध्याय।
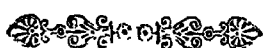
आर्यसमाज और गुरुकुल पर राज-द्रोही होनेका आक्षेप।

जबसे आर्य प्रतिनिधि सभा अथवा महात्मा पार्टीने द० ऐं० वे० कालिजके संचालकोंसे अलग होकर धर्म-प्रचार और आर्य-समाजोंकी स्थापना तथा संगठनका कार्य प्रबलतासे आरम्भ किया और उसमें उनको सफलता होने लगी तभीसे आर्यसमाज और उसकी संस्थाओंके शत्रुओंकी संख्या बढ़ने लगी थी। इन दिनों आर्यसमाजके कार्यकर्त्ता और उपदेशक इतने अधिक जोशसे कार्य कर रहे थे कि वे अपने प्रतिपक्षियोंको शास्त्रार्थकी चुनौती देनेमें अथवा उनकी चुनौती स्वीकार करनेमें तनिक भी आगा पीछा नहीं करते थे और आर्यसमाजी उपदेशकोंके व्याख्यानोंमें अधिकतर अन्य धर्म्मावलम्बियोंके मतों तथा आचरणोंका खण्डन ही प्रमुख होता था। इन कारणोंसे क्या पौराणिक हिन्दू और क्या हिन्दुओंके अन्य सम्प्रदाय सभी आर्यसमाजके तीव्र विरोधी बन गये थे और इसी कारणसे आर्यसमाजियोंमें सब सम्प्रदायोंके सम्मिलित विरोधका मुक़ाबला करनेके लिये बन्धुत्वका भाव

बढ़कर उनके सङ्गठनकी दृढ़ता होती जाती थी। आर्यसमाजकी ओरसे दूसरे सम्प्रदायोंके केवल सिद्धान्तोंका ही खण्डन न होता था प्रत्युत विपक्षके प्रमुख व्यक्तियोंकी जो कमजोरियाँ आर्यसमाजियोंको मालूम होती थीं उनको लेकर भी कभी कभी आर्यसमाजके कोई कोई व्यक्ति बड़ा काण्ड खड़ा कर दिया करते थे, जिससे वे व्यक्ति आर्यसमाजके बड़े शत्रु बन जाते थे। इसी प्रकारकी एक घटना देवसमाज सम्प्रदायके संस्थापक शिवनारायण अग्निहोत्रीके साथ हुई थी। शिवनारायण अग्निहोत्री पहिले ब्रह्मसमाजी थे और लाहोरके गवर्नमेण्ट हाइस्कूलमें १५०) मासिक पर ड्राइङ्गमास्टर थे। जब इनकी पहिली धर्मपत्नीका देहान्त हुआ तब इनके दो या तीन पुत्र थे परन्तु फिर भी इन्होंने एक बङ्गाली विधवासे दूसरा विवाह कर लिया और जब वह विधवा भी मर गयी तब यह ड्राइङ्ग मास्टरी छोड़ कर स्वामी सत्यानन्द हो गये परन्तु बाल बच्चोंसे सम्बन्ध पूर्ववत ही जोड़े रहे। इस समय उद्धवराम कबाड़ियेकी भतीजी कुमारी देवकी इनसे पढ़ने आया करती थी। कुछ समय बाद इनका जी कुमारी देवकी पर चल गया और इन्होंने इस कुमारी कन्यासे संन्यासीकी अवस्थामें भी तीसरा विवाह कर लिया। जिस रातको यह विवाह हुआ उसी रातको शहर भरमें छपे हुए नोटिस लग गये। नोटिसमें एक पञ्जाबी स्यापा लिखा था—"सत्यानासी हाय! हाय! कहाँ वह चालीस हाय! हाय! कहाँ यह सोलह हाय! हाय! चेली व्याही हाय! हाय! कच्चा योगी हाय! पक्का भोगी हाय!" इत्यादि। नहीं

कह सकते कि यह स्यापा किसके द्वारा शहर भरमें लगाया गया था। परन्तु संन्यासी गृहस्थ सत्यानन्द अग्निहोत्रीका सन्देह आर्यसमाजपर ही गया और वह इसी समयसे आर्यसमाज का पक्का दुश्मन बन गया। उसने सच और झूठका लिहाज न कर के आर्यसमाजके विषयमे नाना प्रकारकी निन्दायुक्त बातोंका भाषण और लेख द्वारा प्रचार आरम्भ कर दिया। और अन्तको जब संवत् १९६२-६३ में बङ्गविच्छेदके कारण प्रबल राजनैतिक जागृतिकी आन्धी आयी और विदेशी नौकरशाहीको हिन्दुस्थानके हवा पानीमें भी राजद्रोहकी बू आने लगी तब उसने भी ईसाई पादरियोंके सुरमें सुर मिलाकर सरकारकी तीखी नज़र आर्यसमाजपर डालनेके लिये इस बातके प्रचारका बीड़ा उठाया कि आर्यसमाज एक राजनैतिक संस्था है और उसका उद्देश्य ब्रिटिश शासनके विरुद्ध राजद्रोहका फैलाना है। ईसाई पादरी लोगोंने इस प्रकारकी आवाज संवत् १९४० से ही उठानी आरम्भ कर दी थी और कुछ मुसलमानोंने भी किसी किसी स्थानपर उनका साथ दिया था परन्तु संवत् १९६० तक सरकारने उनकी इस चिल्लाहट पर ध्यान न दिया था और आर्यसमाज अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंकी भाँति ही अपना प्रचार कार्य करता रहा था। परंतु ज्यों ज्यों आर्यसमाजका बल और प्रभाव बढ़ता गया त्यों त्यों आर्यसमाजके शत्रुओंकी भी संख्या बढ़ती गयी और उनमेंसे जिसको जो बात आर्यसमाजके विरुद्ध सूझी वह उसीकी पुकार मचाने लगा। संवत् १९६० तक ईसाई पादरी, मुसलमान मुल्लां

और बहुतसे पौराणिक हिन्दुओंकी आर्यसमाजको राजनैतिक और राजद्रोही संस्था बतलानेमें आवाज एक हो गयी थी। और जब संवत १९६२ में बंग-भंगके कारण सचमुच देशमें राजनैतिक हलचलके चिह्न प्रकट हुए तब तो सरकारको भी आर्यसमाजपर सन्देह होने लगा और सरकारी जासूसोंको भी अपने सदाके स्वभावके अनुसार आर्यसमाजके मन्दिरोंमें गुप्त षड्यंत्र करने वाली कमिटियोंकी बैठक होती हुई दिखायी देने लगीं, राजद्रोही भाषण सुनायी पड़ने लगे, गुप्त रूपसे बमगोलोंके कारखानोंकी सत्ताके प्रमाण मिलने लगे, 'सत्यार्थप्रकाश' में राजद्रोहका उपदेश प्रतीत होने लगा, गुरुकुल कांगड़ीके जङ्गलमें खोले जानेका कारण भी गुप्त राजद्रोह समझा जाने लगा, और अधिक क्या कहें आर्य-समाजियोंको प्रार्थनाओं और खाने पीने तथा सोने जागने में भी राजद्रोहकी गन्ध आने लगी।

स्वदेशी और राजद्रोह

हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाजी अपने प्राकृतिक स्वभावके अनुसार इस समय अपने धार्मिक प्रचार और आंतरिक सुधारके कार्यको उत्तम सङ्गठन पूर्वक कर रहे थे। यदि उत्तर भारतवर्षमें उन दिनों जीवन दिखायी देता था तो केवल आर्य्यसमाजमें। केवल इतना ही नहीं, बहुतसे आर्य्यसमाजियोंने प्रत्येक सार्वजनिक कार्यमें रुचि रखनेके कारण व्यक्ति रूपेण उस समयके स्वदेशी आन्दोलनमें विशेष चाव प्रकट करना भी आरम्भ कर दिया था। ये व्यक्ति स्वयं स्वदेशी वस्त्र

पहिनते थे और अपने मित्रोंको भी स्वदेशी वस्त्रके प्रयोगकी सलाह देते थे। कुछ स्थानों पर आर्यसमाजी व्यक्तियोंकी ओरसे स्वदेशी सामानकी दूकानें भी खोली गयी थी, परन्तु इन दूकानोंके खोलनेमें स्वदेशी आन्दोलनके प्रचारका उद्देश्य शायद् इतना न था जितना कि स्वदेशी वस्तुओंकी सौदागरी करके सामयिक लहर द्वारा व्यापारिक लाभ उठाना था। स्वदेशी वस्तुओंके प्रयोगके विषयमें इस स्थान पर यह भी न भूलना चाहिये कि जो आर्यसमाजी इस समय स्वदेशी वस्त्रोंका प्रयोग कर रहे थे उनमेंसे बहुतेरे ऐसे भी थे जिन्होंने स्वदेशीका प्रयोग बंगभंगके आन्दोलनसे भी पहिले आरम्भ कर दिया था। क्योंकि एक तो स्वयं स्वामी दयानन्दने ही 'सत्यार्थ प्रकाश'में अपने देशके बने पदार्थोंका उपयोग करनेका उपदेश दिया है और दूसरे सादगीके लिहाज़से भी स्वदेशी वस्त्रादिका उपयोग उत्तम है और जीवनकी सादगी पर आर्यसमाजके सुधारक इन दिनों बल देते ही थे। पञ्जाबी आर्यसमाजियोंके प्रथम नेता लाला सांईदासजी तो उस समय भी स्वदेशी वस्त्रका ही व्यवहार किया करते थे जब कि भारतवर्षमें राजनैतिक आन्दोलन अथवा कांग्रेसका पता भी न था।

आर्यसमाजियों की बेचैनी।

आर्यसमाजियोंको इस सार्वजनिक जागृतिका विदेशी सरकारके संशयात्मा नौकरोंने यह अर्थ लगाया कि आर्यसमाज बंगभंगके कारण होने वाली राजनैतिक हलचलमें प्रमुख रूपेण

भाग ले रहा है। दूसरे उस समय जमाना भी ऐसा था कि विदेशी सरकार किसी भी प्रकारकी सार्वजनिक और सङ्गठनात्मक जागृतिको सहन नहीं कर सकती थी क्योंकि देशवासियोंका सङ्गठित हो जाना ही भारतवर्षमें ब्रिटिश शासनके अन्त का पूर्वलक्षण है। ब्रिटिश सरकारके इन संशयात्मा नौकरोंके सन्देहको आर्यसमाजके साम्प्रदायिक शत्रुओं, अपने मालिककी आंख देखकर वैसी ही खबर लाने वाले पेट-पालक जासूसों और सबसे बढ़कर आर्यसमाजियोंकी अपनी कमजोरीने और भी दृढ़ कर दिया। हमने आर्यसमाजकी अपनी कमजोरीको इस सन्देहके दृढ़ करनेमे सबसे बड़ा कारण इस लिये कहा है कि आर्यसमाजने इस समय बहुत कुछ वैसी हरकतें अख्तियार कर ली थी जैसी कि अपराधी अपने अपराधको छिपानेके लिये किया करता है। आर्यसमाजकी ओरसे स्थान स्थानपर और क्षण क्षणमें यह आवाज उठायी जाती थी कि आर्यसमाज राजनैतिक संस्था नहीं है, आर्यसमाजका प्रत्येक सभासद दृढ़ राजभक्त है और वह राजनैतिक कार्य करने वाले अपने सदस्यों तकसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। पिछली बात प्रसिद्ध देशभक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय और भाई परमानन्दजी आदिको लक्ष्यमें रखकर कही गयी थी। ये सब महापुरुष ऐसे थे कि इन्होंने आर्यसमाजी होते हुए भी देशके राजनैतिक आन्दोलनमें भाग लिया था। परन्तु उस समय आर्यसमाजके अधिकांश नेता इतने भयभीत हो गये थे कि वे भी विदेशी नौकरशाही

के नौकरोंके समान देशभक्ति अथवा राजनैतिक कार्यतकको राजद्रोह समझने लगे थे और राजनीतिके नामसे ऐसे चौंकते थे जैसे लाल रङ्गसे जङ्गली जानवर चौंकता है। इस प्रकारसे भयभीत आर्यसमाजियोंमें से कइयोंने उक्त देशभक्तोंके राजनैतिक कार्योंकी ही निन्दा नहीं की, प्रत्युत देशभक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा के विषयमें तो ऐसे हीन शब्दोंका प्रयोग किया जैसे कि उन दिनों पौराणिक लोग भी आर्यसमाजियोंके विषयमें नहीं करते थे। आर्यसमाजकी इस भयातुरताने ब्रिटिश नौकरशाहीके सन्देहको और भी बढ़ा दिया और बादमें आर्यसमाज द्वारा राजद्रोहके इस प्रत्याख्यानको भी आर्यसमाजके राजद्रोही राजनैतिक संस्था होनेके पक्षमें युक्ति रूपसे उपस्थित किया गया।

पटियालाका मुक़दमा

ब्रिटिश सरकार तो इस समय अपने कानूनोंकी पाबन्दीके कारण केवल संदेहमें ही रह गयी और अपने जासूसों द्वारा जाँच ही कराती रही, परन्तु रियासतोंके ज़रूरतसे ज्यादह चुस्त नौकरों ने आर्यसमाजियोंके विरुद्ध मुक़दमे भी चला डाले। ऐसे मुक़दमोंमें प्रमुख पटियाला रियासतका मुक़दमा था। पटियालामें उन दिनों पुलिसका इन्सपेक्टर जनरल वारबरटन नामका बिगड़े दिमाग़का एक अंग्रेज़ था। इसने संवत् १६६७ के आरम्भमें एक दिन पटियालाके तमाम आर्यसमाजियोंको गिरफ़तार करा दिया, उनके घरोंको तलाशियां ले डालीं और आर्यसमाज मंदिर पर क़बज़ा कर लिया। पटियालामें उन दिनों अदालत

और महाराजाके हुक्मसे भी ऊपर इसका ही हुक्म चलता था। इसकी स्वेच्छाचारिता और मनमाने हुक्मोंसे प्रायः सारी प्रजा दुःखी थी और पटियालाकी शाशक सभा तब उसको किसी प्रकार रियासतसे बाहर करनेकी सोच रही थी, इस कारण मि० वारबरटन रियासतके बहुतसे अधिकारियोंसे चिढ़ा हुआ था। दुर्भाग्यसे या सौभाग्यसे इन दिनों बहुतसे आर्य्यो-समाजी अपनी योग्यताके कारण रियासतमें ऊंचे ऊंचे सरकारी ओहदोंपर कार्य्य करते थे। उन सबको मि० वारबरटन अपना दुश्मन समझता था। आर्य्यसमाजके विषयमें राजनैतिक और राजद्रोही संस्था होनेका शोर सुनकर उसको इन सब 'दुश्मनों'से एक साथ ही बदला लेनेकी एक अच्छी युक्ति सुझी। उसने पटियाला रियासतके सब आर्य्यसमाजियोंके विरुद्ध राज-द्रोहका मुक़दमा खड़ा करके सन् १६०६ के अक्टूबर मासके द्वितीय सप्ताहमें सब आर्य्यसमाजियोंको गिरफ्तार करा लिया, आर्य्यसमाज मन्दिर पर पुलिसका क़बज़ा हो गया, आर्य्यसमाजि-योंके घरोंकी तलाशियां ली गयीं और वहांसे गाड़ियोंपर गाड़ियें भर कर पुस्तकोंको पुलीस उठा ले गयी। वारबरटनने महा-राजासे कहकर इस मुक़दमेको सुननेके लिये एक विशेष न्याया-लय बिठलाया, परन्तु स्वयं इस न्यायालयकी भी आज्ञाओंका पालन नहीं किया। आर्य्यसमाजियोंकी ओरसे मुख्य वकील लाला रोशन लाल बेरिस्टर थे, उनको, अदालतकी आज्ञा हो जाने पर भी, कई दिन तक वारबरटनने, अभियुक्तोंसे मुलाकात

नहीं करने दी। इसी प्रकार अदालतके बार बार आज्ञा देने पर भी गिरफ्तार आर्यसमाजियोंके खान पान, ओढ़ने बिछाने और रहने सहनेका यथोचित प्रबन्ध नहीं किया। पुलीसकी ओरसे यद्यपि वारबरटनने पंजाबके सबसे बड़े वकील मि० पेटमेन और मि को खड़ा किया था, परन्तु आर्यसमाजियोंकी ओरसे किसी भी योग्य वकीलको खड़ा न होने देनेके लिये यह अडंगा लगा दिया कि ब्रिटिश भारतके केवल वही वकील इस मुक़द्दमेमें अभियुक्तोंकी ओरसे पैरवी कर सकेंगे जो ऐसा करनेके लिये पहिले महाराजा पटियालाकी आज्ञा प्राप्त कर लेंगे। इसी प्रकारकी अनेक अड़चनें उसने आर्यसमाजियोंके रास्तेमें खड़ी कीं परन्तु उन सबका आर्यसमाजियोंने बड़ी दृढ़ता और साहस से सामना किया। इस दरमियान उन सबकी आर्थिक हानि तो हुई ही, बहुतोंको अपने बाल बच्चों और सम्बन्धियोंसे भी सदाके लिये वियोग सहना पड़ा। इनमेंसे कइयोंको अदालतने ज़मानत पर छोड़नेकी इजाज़त दे दी थी परन्तु 'सर्वशक्तिमान' वारबरटनने अपनी इच्छानुसार, जिसको चाहा छोड़ा और जिसको नहीं चाहा नहीं छोड़ा। वारबरटनके इस स्वेच्छाचारके कारण एक आर्य सज्जनका बालक सदाके लिये अन्धा हो गया, एकके चचाकी मृत्यु हो गयी, एककी धर्मपत्नीको क्षय रोग हो गया, इत्यादि नाना प्रकारके कष्ट आर्यसमाजियोंके इन सम्बन्धियोंको केवल इस कारण हुए कि उनके परिवारके मुख्य पालक पोषक आर्यसमाजी थे। इन सब कठिनाइयोंमें

भी पटियालाके आर्यसमाजी दृढ़ रहे। परन्तु इन सबको इस कठिन परिस्थितिमें उत्साह और सान्त्वना देने वाला कौन था ? यह वही महापुरुष था जिसका पुण्य चरित्र आज हम अपने पाठकोंको सुनाने बैठे हैं।

महात्माजीके यत्न

महात्मा मुंशीरामजीने इन दिनों भूख प्यास और आरामकी परवाह न करके इन गिरफ्तार आर्यसमाजियोंके परिवारोंकी सहायता की, उनकी देख रेखके लिये विशेष रूपसे आदमी नियत किये और स्वयं बड़ी योग्यताके साथ अदालतमें अभियुक्तोंकी पैरवी की। आपके ही प्रयत्नसे लाला रोशनलाल, पं० रामभज दत्त, लाला बद्रीदास और श्री० चरणलाल आदि आर्यसमाजके अन्य भी योग्य वकीलोंने इस मुकदमेमें बहुत श्रम और मन लगाकर कार्य किया। एक तो अदालत रियासती थी, उसपर वारवरटन मन मानी कर रहा था और इन सबसे बढ़कर 'करेला और फिर नीम चढ़ा' की कहावतको चरितार्थ करने वाला वारवरटनके लगाये हुए युरोपियन वकीलों (ग्रे और पेटमेन) का अदालतके प्रति उपेक्षाका वरताव था। ये लोग अदालतकी कुछ भी परवाह नहीं करते थे। न तो अदालतकी आज्ञाओंका ही पूरा पूरा पालन करते थे और न अदालतसे लगायें हुये कानूनके अर्थोंको स्वीकार करते थे। जहां कहीं अदालतका झुकाव अपनेसे प्रतिकूल देखा कि झट अदालतमें अविश्वास प्रकट करके महाराजासे अपील करने अथवा कार्यवाही स्थगित करानेकी

धमकी दे दी। इसी प्रकारकी धींगा धींगोसे तीन मास तक पटियालेके आर्यसमाजी दुःख पाते रहे, अन्तको महात्मा मुन्शीरामजीके प्रयत्नसे महाराजा पटियालाने यह मुकदमा वापिस ले लिया और सब आर्यसमाजी मुक्त हो गये। महात्मा मुंशीरामजीने इस कार्यके करनेके लिये जहां उच्च अधिकारियोंसे बात चीत की तथा उनके पास प्रार्थनापत्रादि भिजवाये वहां समाचारपत्रोंके लेखों और व्याख्यानों द्वारा भी बड़ा आन्दोलन किया। बहुत सम्भवतः इस आन्दोलनकी प्रबलताको देख कर ही अधिकारियोंने कदम पीछे हटाना उचित समझा। महात्मा मुन्शीरामजीने इस समय अन्य अनेक आर्यसमाजियोंकी भांति अपनी राजभक्तिका विज्ञापन देने और देशभक्ति-पूर्ण राजनैतिक कार्योंकी निन्दा करनेकी हीन, दब्बू, घृणित और कायरताकी नीति अखतियार नहीं की थी, उन्होंने बड़े साहसके साथ देशभक्ति-पूर्ण राजनैतिक कार्यों की प्रशंसा और सरकारके बुरे कार्यों की आलोचना करते हुए भी आर्यसमाजके मानकी रक्षा की थी।

गुरुकुल पर काले बादल

केवल आर्यसमाज पर ही नहीं, इन दिनों गुरुकुल पर भी शासकोंकी सन्देह-पूर्ण क्रूर दृष्टिके काले बादल बुरी तरह मंडरा रहे थे। गुरुकुलके शिक्षा-प्रणालीका उस समयकी परिस्थितिमें सर्वथा नवीन और विचित्र होना ही शासकोंके प्रबल सन्देहका कारण बन गया था। बहुतसे युरोपियन रात्रिको छिप छिप कर गुरुकुलका भेद लेने कांगडी ग्रामके आस पासकी भूमिमें आते थे

गुरुकुल के कर्मचारियोंमें से कइयोंको सरकारने रुपयेका लालच देकर मेदिया बना लिया था और इन कृतघ्न पुरुषोंने झूठी रिपोर्ट सरकारके पास भेजना आरम्भ कर दिया था। उन दिनों गुरुकुलमें ब्रह्मचारियों को घोड़ेकी सवारी और लाठी चलाना आदि भी सिखलाया जाता था। जिस व्यक्तिके सुपुर्द गुरुकुलके लाइसेन्ससे प्राप्त शस्त्रों की देख रेखका कार्य था वह भी (उसका नाम गोविन्दराम था) ब्रिटिश सरकारके रुपयोंके लालचमें फंस चुका था। उसने अनजान बालक ब्रह्मचारियोंको घोड़ों पर चढ़ाकर और उनके हाथमें तलवार देकर उनके फोटो उतार लिये और ये फोटो सरकारी खुफ़िया विभागके अधिकारियोंके पास यह सिद्ध करनेके लिये भेजे कि गुरुकुलमें ब्रह्मचारियोंको शस्त्र चलाना सिखलाया जाता है। किसी युरोपियनने गुरुकुलके आस पास के जंगलोंमें दो एक ब्रह्मचारियोंको घोड़ोंपर सवार होकर दौड़ते हुए देख लिया था। बस, वह गुरुकुलके राजद्रोही संस्था होनेके अकाट्य प्रमाण पा लेनेकी खुशीमें फूला न समाया और अपनी जातिमें नामवरी हासिल करनेके लिये अपनी कल्पनासे और बहुतसा मसाला साथ जोड़ कर अंग्रेजी अख़बारोंमें लेख छपवा दिये कि मैंने अपनी आंखोंसे गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंको शस्त्राभ्यास करते देखा, वे बड़े लाजवाब घुड़सवार हैं, दो तीन नौजवान लड़के रूसी* कज़ाकोंके समान मेरे पाससे घोड़ों पर दौड़ते हुए निकल

*कज़ाक रूसकी एक जात है। इसका नाम युरोपके इतिहासमें अपनी बहादुरी, शस्त्र-विद्या, साहस और घुड़सवारी आदिके लिये प्रसिद्ध है।

गये। एक युरोपियनने छपवाया कि मैंने रातके समय चांदकी चांदनीमें ब्रह्मचारियोंको तीर चलानेका अभ्यास करते देखा। एक तीसरेने लिखा कि मैंने अन्धेरेमें ब्रह्मचारियोंको निशाना मारते देखा। इसी प्रकारके नाना अपवाद और कल्पनायें उन दिनों गुरुकुलके विषयमें फैल रही थीं। गुरुकुलके भेदी कर्मचारियोंके अतिरिक्त बहुतसे छद्मवेषधारी जासूस भी इन दिनों गुरुकुलमें आते रहते थे, जिनका असली रूप बहुधा प्रकट हो जाता था और उनको बहुत लज्जित किया जाता था। महात्मा मुंशीरामजीको उधर आर्यसमाजों पर आयी हुई आपत्तियोंका सामना करना पड़ता था और इधर गुरुकुलके प्रबन्धपर ध्यान रखते हुए इन कल्पित आक्रमणोंसे भी संस्थाकी रक्षाकी चिन्ता करनी पड़ती थी। ऐसी कठिन परिस्थितिकी चक्करदार भंवरमेंसे संस्थाकी नावको सुरक्षित ले जाना महात्मा मुन्शीरामजी जैसे योग्य और साहसी कर्णधारका ही काम था। उन्होंने गुरुकुल के लिये भी लेखों और भाषणों द्वारा आन्दोलन किया, गुरुकुलके जो कर्मचारी भेदी बने हुए थे उनको अपनी प्रबन्ध-कुशलतासे अलग करके उनके विश्वास-घातक कृत्योंको जगज़ाहिर किया और प्रांतके उच्च अधिकारियों तक पहुंचकर उन्हें विश्वास दिलाया कि वे सब भारी भ्रममें पड़े हुए हैं। उन दिनों संयुक्त प्रान्तके लेफ़्टिनेण्ट गवरनर सर जान हिवेट साहब थे। महात्मा मुन्शीरामजी उनसे मिले और उनके सन्मुख अपना पक्ष रखकर उनको स्वयं गुरुकुल आकर अपने सन्देह दूर कर लेनेका निमंत्रण दिया

सर जान हिवेट तो गुरुकुल नहीं पधार सके, परन्तु उनके उत्तराधिकारी सर जेम्स मेस्टनने सन १९१२-१३ में गुरुकुल आनेका साहस किया और सब कुछ देखकर अपने सन्देहोंको निवृत्त कर लिया। सर जेम्स मेस्टनने पूर्ण निश्चय करके इस समय गुरुकुलमें जो भाषण दिया था उसने अन्तको सदाके लिये आर्यसमाजके विषय में सब सन्देहोंको शांत कर दिया। सर मेस्टन गुरुकुलको देखकर तथा वहांके सादे जीवनके आदर्शको जानकर इतने प्रसन्न हुए थे कि उनको गुरुकुलसे एक प्रकारका प्रेमसा हो गया था। जब वह पहिली वार गुरुकुल गये थे तब उनकी धर्मपत्नी बीमार होनेके कारण साथ नहीं जा सकी थीं। दो वर्षके बाद वह केवल अपनी धर्मपत्नीको यह विश्व विद्यालय दिखलानेके लिये दूसरी वार गुरुकुल पधारे। इन अतिथियोंके जलपानके लिये जो तुलसी-दलका दूध और बेननके पकौड़े तैयार किये गये थे वे लेडी मेसटनको बहुत पसंद आये थे और जब तीसरी वार सर जेम्स मेस्टन वाइसराय लार्ड चेम्स फोर्डको साथ लेकर गुरुकुल पधारे थे तब उन्होंने विशेष रूपसे कहकर जलपानमें उक्त दूध और पकौड़े भी रखवाये थे।

महात्माजीका आश्रयदातृत्व।

इन्हीं दिनों महात्मा मुंशीरामजीने बड़े साहसका एक काम यह करके दिखलाया कि जो आर्यसमाजी शासकोंके सन्देह या प्रकोपके कारण निराश्रय हो गये थे उनमेंसे कइयों को, गुरुकुल पर आपत्ति का समय होते हुए भी गुरुकुलमें आश्रय दिया। यह

समय बड़ा विकट था। बंगभंगके विरुद्ध बलशाली राजनैतिक आन्दोलनके कारण तमाम देशमें अशांति मची हुई थी, विदेशी नौकरशाही कठोर दमनकी नीतिसे काम ले रही थी, उसकी देखा देखी रियासतों में भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को नाना प्रकारसे पीडित किया जा रहा था, गुरुकुल स्वयं भी शासक वर्गकी सन्देह दृष्टिसे बचा हुआ न था। ऐसे समयमें एक संदिग्ध संस्थाके संचालकका संदिग्ध पुरुषों को आश्रय देना मुंशीरामजी जैसे महात्माओं का ही कार्य था।

पटियालेमें जिन आर्यसमाजियों पर मुकदमा चलाया गया था उनपरसे मुकदमा तो वापिस ले लिया गया परन्तु रियासतके अधिकारियों ने अपनी नाक बचानेके लिये यह अडंगा साथ लगा दिया कि जो आर्यसमाजी पटियाला रियासतके निवासी नहीं हैं वे सात दिनके भीतर रियासतसे बाहर चले जावें। इनमें से कई योग्य आर्यसमाजियोंको महात्मा मुंशीरामजीने गुरुकुलमें स्थान दिया जिनमें लाला नन्दलालजी, लाला मुरारिलालजी और मास्टर लक्ष्मणदासजीका नाम विशेष रूपसे उल्लेख योग्य है। इन तीनों सज्जनों ने क्रमशः सहायक मुख्याधिष्ठाता, कार्यालयाध्यक्ष और मुख्याध्यापकके पदों पर रहकर कई वर्ष तक गुरुकुलकी योग्यतापूर्वक सेवा की थी।

पटियालाके मुकदमेका विवरण समाप्त करते हुए यहां इतना लिख देना अप्रासङ्गिक न समझा जायगा कि महाराजा पटियाला ने जहाँ इन आर्यसमाजियों को रियासतसे बाहर निकाला वहां

इस सारे झगड़ेकी जड़ वारवरटनको भी सात दिनके भीतर रियासत छोड़ जानेका हुक्म देकर उसे उसके किये का उचित दण्ड दिया था।

पटियालासे वहिष्कृत आर्यसमाजियोंके सिवा, आर्यसमाजिक जगतमें वेदोंके प्रसिद्ध विद्वान और स्वाध्याय मंडल (औंध) के संस्थापक पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर भी इन दिनों कोल्हापुर रियासतके आक्रमणसे बचकर गुरुकुलमें आकर रहे थे। पं० सातवलेकरजीने अथर्ववेदके पृथ्वी सूक्तका मराठीमें भाषान्तर करके एक छोटीसी पुस्तिका प्रकाशित की थी जिसमें भूमि-माताके गुण वर्णन करके देश-भक्तिके भावोंकी ओर भी निर्देश किया गया था। बस, उनके इसी अपराध के कारण उनपर कोल्हापुर की सरकार मुकदमा चलाना चाहती थी। अन्त को वह गुरुकुल से ही गिरफ्तार करके कोल्हापुर ले जाये गये और वहां उनपर मुकदमा चला।

रक्षाका स्थायी कार्य।

महात्मा मुन्शीरामजीने केवल पटियालाके ही आर्यसमाजियोंको अभियोगसे मुक्त कराकर सन्तोष नहीं किया, आपका ध्यान भारतवर्षकी सब आर्यसमाजोंकी ओर गया, क्योंकि इन दिनों आर्यसमाजी सम्प्रदायमात्र सन्देहका लक्ष्य बना हुआ था। इस सन्देहको दूर करनेके लिये आपने इस विषयको आद्योपांत छान-बीन करके गुरुकुलके वर्तमान प्रिन्सिपल मास्टर रामदेवजीकी सहायतासे अंग्रेजी भाषामें 'आर्यसमाज और उसको वदनाम

करने वाले' (आर्यसमाज एण्ड इट्स डिट्रेकटर्स) नामकी एक पुस्तक लिखी, जिसमें आर्यसमाजके अन्य मतावलम्बियोंसे संघर्षका आदिसे इतिहास देकर प्रमाण पूर्वक यह दिखलाया गया कि किसप्रकार आर्यसमाजके गौरव और प्रभावको बढ़ते हुए देख कर विरोधी लोगोंने इस संस्थाके विरुद्ध झूठे आक्षेपोंकी कल्पना आरम्भ की और बढ़ते बढ़ते ये आक्षेप शासकोंके भी सन्देहका कारण बने। उनके इस यत्नसे सब विरोधियोंको चुप हो जाना पड़ा और आर्यसमाजकी स्थिति दृढ़ हो गयी।

एक और उदाहरण।

आर्यसमाजपर सरकारकी क्रूर दृष्टि देखकर इन दिनों उसके कुछेक साम्प्रदायिक विरोधियोंका साहस भी बहुत बढ़ गया था। कहीं कहीं इन लोगोंने आर्यसमाजियोंके शरीर पर भी आक्रमण करनेकी धृष्टता की थी। इसी प्रकारकी एक घटना हरिद्वारके पास हुई थी। हरिद्वारके कुछ पण्डोंने उन आर्यसमाजियों पर आक्रमण किया जो कार्यवशात् हरिद्वार गये थे। आर्यसमाजियोंकी संख्या थोड़ी थी और पण्डोंकी बहुत। पंडोंने आर्यसमाजियों पर गरम पानी और गरम तेल फेंककर भी उनको कष्ट पहुंचाया। जब यह समाचार महात्मा मुंशीरामजीको मिला तो वह बिना किसी संकोच पण्डोंके बीचसे गुज़रते हुए उनके मुखियोंके पास पहुंचे और उनको कहा कि यदि तुम लोग अपनी इन हरकतोंसे बाज नहीं आओगे तो तुम सबको दण्ड दिलाया जायगा। महात्माजी को अपने गढ़के अन्दर अकेला

पाकर भी किसी दुष्टका साहस नहीं हुआ कि उन पर हाथ उठावे और सबने चुपचाप किसी भी आर्यसमाजीको कष्ट न देनेका वचन दिया। ऐसे ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें महात्माजीने बड़े साहससे और निर्भयतासे आर्यसमाज, उसकी संस्थाओं और उसके सदस्योंकी रक्षा की।

सर्वस्व त्याग।

इस संघर्षकी समाप्ति पर महात्माजीको गुरुकुल कांगड़ीकी आर्थिक स्थिति सुधारनेकी चिन्ता हुई। इस समय गुरुकुलको खुले दस वर्षसे अधिक हो चुके थे। संस्थाका वार्षिक व्यय लगभग एक लाख रुपया वार्षिक था। यह सब व्यय मुख्यतः आर्य जनताके दान और ब्रह्मचारियोंके शुल्कसे पूरा किया जा रहा था। गुरुकुलमें भी प्रति वर्ष नयीसे नयी उन्नति होती जाती थी। यह सम्भव नहीं था कि ऐसी विशाल संस्थाके व्यय सदा ही दानके रुपयेसे पूर्ण होते रहें। इसलिये श्री महात्माजीने गुरुकुल कांगड़ीके लिये पन्द्रह लाख रुपयेकी एक स्थिर निधि खोलनेका विचार प्रस्तुत किया, ताकि इस निधिके व्याजसे गुरुकुल चल सके। अब उन्होंने अपना ध्यान मुख्यतः इस स्थिर निधिकी पूर्ति की ओर लगाया और आर्य जनताके सामने दानका नमूना उपस्थित करनेके लिये स्वयं (दो एक कम्पनियोंके कुछ हिस्से छोड़कर) अपना सर्वस्व आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाबको भेंट कर दिया। इस सम्पत्तिमें वह मकान भी सम्मिलित था जिसे आपने जालन्धरमें बड़ी मेहनतसे और बड़े व्ययसे बनवाया था।

पीछे आर्य प्रतिनिधि सभाने इसे बीस हजार रुपयेमें बेचकर वह धन गुरुकुलके स्थायी कोषमें जमा कर दिया। अपना 'सद्धर्म-प्रचारक' प्रेस और पत्र तो आप कई वर्ष पूर्व ही गुरुकुलको दे चुके थे, अब मकान जायदाद भी दे डाली। आपके इस सर्वस्व त्यागका आर्य जनता पर चाहे अभीष्ट प्रभाव न पड़ा हो परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुलके कार्यकर्त्ताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनमेंसे प्रायः सबने अपनी संस्थाके लिये कुछ न कुछ त्याग किया। इसीका परिणाम था कि कई वर्षों तक गुरुकुल-का वातावरण ही इतना उत्साहमय हो गया था कि प्रत्येक कर्म-चारी संस्थाको अपनी ही संस्था समझकर उसकी भलाईके लिये तन मन धनसे यत्न करता था।

महात्मा मुंशीरामजीने इसी समय ब्रह्मचारियोंके संरक्षकों-को उनकी ज़िम्मेवारीका महत्व समझानेके लिये उनसे मासिक शुल्क लेना छोड़ कर आदर्श निःशुल्क शिक्षा का परीक्षण करना चाहा था, परन्तु आर्थिक कठिनाईने वैसा न होने दिया और दो-तीन वर्ष पीछे फिर शुल्क लेना आरम्भ करना पड़ा।

गुरुकुलमें रहनेका निश्चय

आर्यसमाजोंके उत्सव और गुरुकुलके लिये धन संग्रह आदि के कार्यों पर बार बार महात्माजीके बाहर जाते रहनेके कारण गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंको आपका अभाव विशेष रूपसे प्रतीत होने लगा और उन्होंने आपसे अनुरोधपूर्ण प्रार्थना की कि आप हमें छोड़कर बाहर न जाया करें। इस प्रार्थनाको स्वीकार करके

महात्मा मुंशीरामजीने संवत् १९६८ के बाद विशेष अवसरोंको छोड़कर आर्यसमाजके साधारण कार्योंसे हाथ खींच लिया और अपनी सारी शक्तियां गुरुकुलके ही आंतरिक और बाह्य प्रबन्ध के सुधारनेमें लगा दीं। उनके ऐसा करनेसे गुरुकुलको बहुतसे लाभ हुए। ब्रह्मचारियोंको आप प्रायः प्रति सप्ताह धर्मोपदेश किया करते थे और अध्ययन तथा रहन सहन आदिके नियमोंका विशेष रूपसे निरीक्षण करते थे।

गुरुकुलकी साधारण व्यवस्था सुधारनेके अतिरिक्त ब्रह्मचारियोंमें राष्ट्र-सेवा और राष्ट्र-भक्तिके भाव जागृत करनेके लिये भी आप प्रत्येक अनुकूल अवसरका ध्यान रखते थे। आपकी ही प्रेरणासे ब्रह्मचारियोंने एक मास तक घृत खाना छोड़ कर और कुछ दिन तक मज़दूरी करके जो धन बचाया था वह दक्षिण अफ्रीकाके पीडित प्रवासी भारतीयोंकी सहायतार्थ महात्मा गान्धीके पास भेजा था। महात्मा गान्धीपर इसका इतना अधिक प्रभाव हुआ था कि जब वह अफ्रीका छोडने पर विवश हुए और अपने आश्रमके विद्यार्थियोंको भारतमें अपना स्थान मिलने तक कहीं रखनेका प्रश्न सामने आया, तब उन्होंने गुरुकुलको ही उपयुक्त स्थान समझा और अहमदाबादमें सत्याग्रहाश्रम खुलने से पहिले तक अपने आश्रम-वासियोंको गुरुकुलमें ही रखा था और भारतवर्ष पहुंचकर शीघ्रसे शीघ्र महात्मा गान्धी गुरुकुल आकर महात्मा मुंशीरामजीसे मिले थे।

पीछले युरोपीय महायुद्धमें जब भारतवर्षके नेताओंने ब्रिटिश

सरकार की सहायता करनेका निश्चय किया था तब महात्मा मुंशीरामजीने भी शासकोंको लिखा था कि यदि आवश्यकता हो तो गुरुकुलके ब्रह्मचारी सेवाके लिये तैयार हैं, परन्तु शासकोंने यह सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं समझी।

गुरुकुलके विषयमें असिद्ध स्वप्न ।

महात्माजी अपने अन्तःकरणकी स्वाभाविक उच्चता और विशालताके अनुसार गुरुकुलमें अनेक सुधार करके उसे एक आदर्श विश्वविद्यालय बनाना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि वर्तमान साधारण विद्यालयके अतिरिक्त कृषि और उद्योगका एक कालिज खोला जाय, जिसमें विद्यार्थियोंको अपने हाथसे आधुनिक नये तरीकों पर खेती करनेका और कारीगरीका काम सिखाया जाय जिससे ब्रह्मचारी गुरुकुलका शिक्षण समाप्त करने पर जहां स्वतंत्र आजीविका कमानेमें समर्थ हों वहां वे अपने देशकी आर्थिक और औद्योगिक उन्नति करनेमें भी सहायक बनें। औद्योगिक शिक्षणके समान ही वह आयुर्वेदिक शिक्षाकी भी विशेष व्यवस्था करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि गुरुकुलका आयुर्वेद महाविद्यालय सब प्रकारसे पूर्ण हो। उसमें साधारण रोगचिकित्सा सिखानेके साथ साथ शल्य चिकित्सा और काय-चिकित्साके गूढ़ प्रश्नों पर खोज भी की जाय जिससे भारतीय आयुर्वेदशास्त्र पाश्चात्य डाकटरीके मुकाबलेमें सन्मानका स्थान प्राप्त कर सके इन कार्योंसे महात्मा मुंशीरामजीको ब्रह्मचारियोंकी शिक्षा,राष्ट्र

की आर्थिक और औद्योगिक उन्नति और अपने प्राचीन विज्ञानों के पुनरुज्जीवनके अतिरिक्त गुरुकुल विश्वविद्यालयको भी आर्थिक लाभ पहुंचनेकी बड़ी आशा थी। वह चाहते थे कि गुरुकुलको जितने अन्न और दूध घी आदि की आवश्यकता होती है वह सब गुरुकुल भूमिमें ही उत्पन्न किया जा सके और इस प्रकार गुरुकुलको सर्वथा स्वाधीन संस्था बना दिया जाय। परन्तु अनेक कारणों से उनकी ये सब इच्छायें पूर्ण न हो सकीं। ये सब महात्माजीके असिद्ध स्वप्न ही रह गये।

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—
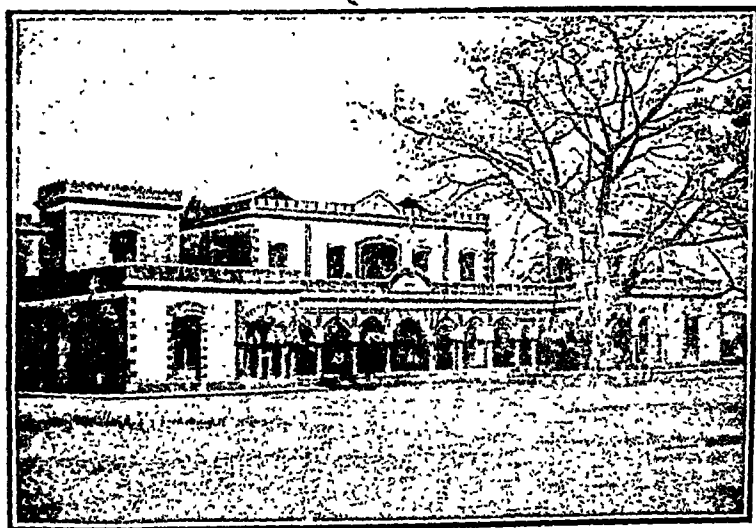
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) का वर्तमान महाविद्यालय भवन ।

तेरहवां अध्याय
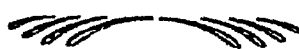
संन्यासाश्रममें प्रवेश

गुरुकुल विश्वविद्यालय संवत् १९७४ तक बहुत उन्नति कर चुका था। उसकी ख्याति भारतवर्षमें तो सर्वत्र फैल ही गयी थी, वह समुद्र लांघकर भारतवर्षसे बाहर भी पहुंच चुकी थी। अनेक प्रतिष्ठित स्वदेशी और विदेशी विद्वानों, रईसों, राजाओं और यात्रियोंने गुरुकुलको देखकर केवल संतोष ही प्राप्त नहीं किया था, प्रत्युत वहांकी शिक्षा-प्रणाली और व्यवस्था आदि पर आश्चर्य्य प्रकट किया था। कई एक अनुभवी पुरुषोंने इस बात पर भी आश्चर्य प्रकट किया था कि इतने थोड़े समयमें ऐसे घने जङ्गलकी जगह इतनी इमारतें और बगीचे आदि कैसे बन गये! गुरुकुलको केवल बाहरकी ख्याति ही प्राप्त नहीं हुई थी, उसके भीतर भी बड़े बड़े उन्नतिके काम हुए थे। अब गुरुकुल केवल कांगड़ीमें ही न था। कुरुक्षेत्र, मुलतान और जिला रोहतक आदि स्थानों पर उसकी कई शाखायें भी खुल चुकी थीं। कुछ स्नातक भी इस संस्थाका शिक्षण समाप्त करके संसारमें गये थे और उन्होंने अपनी मातृ-रूपिणी संस्थाका नाम उज्वल किया था। परन्तु महात्मा मुन्शीरामजी को अभी सन्तोष नहीं

था। वह पूर्व अध्यायमें निर्दिष्ट दिशाओंमें बहुत आगे बढ़ना चाहते थे पर परिस्थिति कुछ ऐसी ही हो गयी कि वह वैसा न कर सके और अपने विचारोंको अमलमें लानेका भार अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़कर उन्होंने सार्वजनिक सेवाके विस्तृत क्षेत्रमें प्रवेश करनेके लिये संन्यास लेनेका निश्चय कर लिया।

संवत् १९७४ विक्रमीके अन्तमें महात्मा मुंशीरामजी संन्यास लेने वाले थे। नवीन आश्रममें प्रवेश करनेके लिये इस वर्षके अन्तिम महीनेमें उनकी मानसिक तैयारी जारी थी। परन्तु उनके कार्योंको देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि महात्माजी गुरुकुल छोड़ने वाले हैं। गुरुकुलके प्रबन्ध आदिका कार्य आप उस समय भी पुरानी ही लगनसे कर रहे थे। अन्त को संन्यास-संस्कारका दिन निश्चित हो गया और महात्माजी गुरुकुल-भूमि छोड़कर गुरुकुल-विश्वविद्यालयकी ही मायापुर वाटिका (कनखल) में आत्म-चिन्तनके लिये चले गये। चलनेसे पूर्व उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालयके प्रथम वर्षके ब्रह्मचारियोंको बुलाया। इन ब्रह्मचारियोंने उसी वर्ष विद्यालयकी पाठ-विधि समाप्त करके महाविद्यालयमें पांव रखा था। महात्माजीने इन ब्रह्मचारियोंको अपनी ओरसे अन्तिम कर्तव्योपदेश करनेके लिये बुलवाया। जिन ब्रह्मचारियोंको यह कर्तव्योपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उनमें लेखक भी एक था। महात्माजीने उपदेश किया और उपदेशके अन्तमें जब वह अपनी विदाईका निर्देश करने लगे तब अधिक न बोल सके, उनकी

आवाजमें फरक आगया और उन्होंने बहुत थोड़े शब्दोंमें समाप्त कर दिया। उस समय बिलकुल ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे कोई पिता अपने पुत्रोंसे अलग हो रहा है और पिता हृदयमें कर्तव्य और प्रेमका संघर्ष होने पर कर्तव्यकी आज्ञाको शिरोधार्य कर विवशतया चुप हो गया है।

संन्यास-संस्कार।

मायापुर वाटिकामें जानेके लिये महात्माजी दोपरके समय रवाना हुए थे। उस दिन उनको विदा करने सब कुलवासी उक्त वाटिका तक गये थे। विदाईके इस जलूसका दृश्य भी बड़ा करुणा पूर्ण था। सबसे आगे महात्माजीकी विशाल मूर्ति पीला डुपट्टा धारण किये और हाथमें दण्ड लिये चल रही थी, उनके पीछे उपाध्याय और अध्यापक वर्ग थे, फिर गुरुकुलके स्नातक, उनके बाद श्रेणियोंके क्रमसे सब ब्रह्मचारी और अन्तमें गुरुकुलके अन्य कर्मचारी निस्तब्ध शांतिसे चले जा रहे थे। जब जलूस गुरुकुलके उस भागमेंसे गुजरा जहां अध्यापकोंके परिवार रहते थे, तब महात्माजी का पौत्र रोहित (पं० हरिश्चन्द्रका पुत्र) 'दादा दादा' करता और रोता हुआ दौड़ा परन्तु महात्मा जी उधर बिना कुछ लक्ष्य दिये धीर गम्भीर गतिसे चलते गये। कुलनिवासी तो रात्रिके समय कुलमें वापिस आ गये और महात्माजी आत्म-चिन्तनके लिये वाटिकाके एकांतमें अकेले रह गये। संस्कारके दिन प्रातःकाल ही सब कुलवासी शीघ्र उठे और शौच स्नान आदि नित्य क्रियाओंसे निवृत्त होकर संस्कारमें

योग देनेके लिये मायापुर वाटिका पहुंच गये। लगभग ६ बजेसे संस्कार आरम्भ हुआ। आर्यसमाजके प्रायः सभी प्रमुख पुरुष उपस्थित थे। 'संस्कार-विधि'में लिखित यज्ञ आदिके अनन्तर महात्माजी जब केश मुंडवानेके बाद बाहर संस्कार-मण्डपमें आये तब उपस्थित सज्जनोंमें से बहुतोंकी आंखों में आंसु आ गये। अन्तको महात्माजीने गुरुकुलके आचार्यका पीला डुपट्टा उतार कर भगवा धारण किया, मुन्शीराम नाम छोड़कर श्रद्धानन्द नाम अङ्गीकार किया और केशोंके साथ ही लोक सेवाके अतिरिक्त सब ऐषणाओंको जलांजलि दे दी।

कार्य-क्षेत्रमें प्रवेश।

कुछ दिन एकान्तवास और विचारके अनन्तर स्वामी श्रद्धानन्दजीने घोषणा की कि वह देश भरमें घूमकर आर्य जनताको ब्रह्मचर्य और आचारकी शुद्धताका सन्देश सुनावेंगे। उन दिनों 'स्वराज्य स्वराज्य' का देशमें बहुत शोर था। स्वामी श्रद्धानन्दजीने अपने व्याख्यानोंका विषय 'सच्चे स्वराज्यका सन्देश' रखा। वह अपने व्याख्यानों में बतलाते थे कि सच्चा स्वराज्य ब्रह्मचर्य पालन' और आचारकी शुद्धता ही है, क्योंकि इनके होने से किसी व्यक्तिको कभी कोई कष्ट नहीं होता और जब देशका प्रत्येक व्यक्ति यह आत्मिक स्वराज्य प्राप्त कर लेगा तब देशभर को आप ही स्वराज्य मिल जायगा। स्वामीजीने संवत् १९६५ में लगभग ३०० व्याख्यान देकर भिन्न भिन्न स्थानों पर आत्मिक स्वराज्यका यह सन्देश सुनाया।

ब्रह्मचर्य और सदाचारके उपदेशके साथ साथ दूसरा काम जो इस समय स्वामी श्रद्धानन्दजीने हाथमें लेनेकी घोषणा की वह आर्यसमाजका एक विस्तृत और पक्षपात-रहित इतिहास लिखनेका था। इसके लिये उन्होंने बहुत स्थानोंसे सामग्री संगृहीत की थी और उनका विचार गुरुकुल कुरुक्षेत्रके एकांत स्थानमें बैठकर यह कार्य करनेका था परन्तु अन्य स्थानोंसे पुकार आनेके कारण वह इतिहासको पूर्ण न कर सके। अभी कुरुक्षेत्रमें बैठकर कार्यको आरम्भ किये हुए कुछ मास ही हुए थे कि धौलपुर रियासतके मुसलमान दीवानने स्वामीजी के कार्यमें विघ्न डाल दिया।

धौलपुरमें संन्यासीका सत्याग्रह।

धौलपुरमें जिस स्थानपर आर्यसमाजका मन्दिर बना हुआ था, वहीं पर मन्दिरका एक भाग गिरवाकर रियासतके मुसलमान दीवानने आम लोगोंके लिये टट्टियां (पाख़ाने) बनवानेका इरादा किया। धौलपुरके आर्यसमाजियोंने प्रार्थना की तो उस पर कुछ ध्यान न दिया गया। मजबूरन स्थानीय आर्यसमाजियोंको आर्य जनतासे सहायता के लिये पुकार करनी पड़ी। स्वामीजो स्वयं धौलपुर पहुंचे और दीवानसे मिलकर उसको शांति पूर्वक समझानेका यत्न किया। परन्तु दीवान साहब इस तरह मानने वाले न थे। दूसरा उपाय न देखकर संन्यासीने वहीं सत्याग्रह करनेकी ठानी। स्वामी श्रद्धानन्दजीने रियासतके अधिकारियों को कहला भेजा कि वे जब तक इस विषयका सन्तो-

षप्रद फैसला न कर देंगे तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूंगा। जब आर्य जनता को यह समाचार मिला तब बहुतसे आर्य धौलपुर पहुंचने लगे। जब संन्यासीके सत्याग्रहसे धौलपुरमें उक्त प्रकार अशांति मचने लगी तब काज़ी दिवानकी भी अक्ल ठिकाने आगयी और उसने वचन दिया कि टट्टियां इस प्रकार बनायी जायंगी कि आर्यसमाज मन्दिरको किसी प्रकारका नुक्सान न पहुंचे।

गढ़वालमें दुर्भिक्ष-निवारण।

संन्यासी होनेके अनन्तर भी स्वामीजीके विश्राम करनेका स्थान गुरुकुल ही था। उन्हें गुरुकुलमें जैसी शांति मिलती थी वैसी अन्यत्र नहीं। गुरुकुल वासियोंकी ओरसे भी उनसे कई बार अनुरोध किया गया था कि वह वर्षमें कमसे कम तीन चार मास गुरुकुलमें अवश्य बिताया करें, जिससे कुल-वासी उनके सत्संगका लाभ उठा सकें। स्वामीजीने अनुग्रह-पूर्वक कुल-वासियोंकी इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया था। और संवत १९७५ विक्रमीके आदिमें गुरुकुलमें रहकर 'आर्यसमाजके इति-हास'की तैयारी कर रहे थे कि उत्तराखण्ड (गढ़वाल) में दुर्भिक्ष फैलनेका समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ। लोक-सेवाके लिये अहर्निश कमर बान्धकर तैयार रहने वाले संन्यासीने तुरन्त पत्रों में इस दुर्भिक्षके निवारणार्थ धनकी अपील निकलवाई और स्वयं गढ़वाल चलनेकी तैयारी कर ली। इसी समय इलाहा-बादकी सेवा समितिने भी गढ़वालमें कार्य करनेका विचार किया। पत्रोंमें स्वामीजीकी अपील पढ़कर सेवा समितिके

प्रधान पं० मदन मोहन मालवीयने उचित समझा कि स्वामीजीके साथ मिलकर इस कार्य्यको किया जाय। उन्होंने सोचा कि स्वामीजी सरीखे अनुभवी, प्रभावशाली और अनथक कार्यकर्त्ता का नेतृत्व होनेसे यह कार्य उत्तमतासे हो सकेगा। इस लिये पं० मालवीयजीने सर्वेण्टस आफ इण्डिया सोसाइटीके सदस्य पं० हृदयनाथ कुंजरूको स्वामीजीके पास गुरुकुलमें भेजा कि वह स्वामीजीसे मिलकर दुर्भिक्ष-निवारणके विषयमें बातचीत करके काम करनेका ढंग ठीक कर लें। कार्यकी योजना ठीक हो जाने पर स्वामीजी स्वयं गढ़वाल पहुंचे और अपनी अद्भुत प्रबन्ध-शक्तिसे सारा काम सेवा-समितिके कार्यकर्त्ताओंके पहुंचनेसे पहिले ही ठीक कर लिया। कार्यकर्त्ताओंकी स्वामीजीको कमी ही न थी। उनकी आज्ञा होते ही गुरुकुलके कई स्नातक उनकी सेवामें उपस्थित हो गये। गढ़वालके मुख्य केन्द्र पौड़ीमें सेवा-समितिके प्रमुख प्रतिनिधि पं० वेंकटेशनारायण तिवारीको छोड़ कर स्वामीजीने स्वयं गढ़वालके दुर्भिक्षपीडित स्थानोंका दौरा किया। उनकी आज्ञानुसार गुरुकुलके स्नातकों और सेवा समितिके स्वयंसेवकोंने गांव गांव घूमकर दुर्भिक्षकी अवस्थाका निरीक्षण किया और पीडित पुरुषोंकी, मय उनके बाल बच्चों आदिकी संख्याके सूचियां तैयारी कीं। यह सब रिपोर्ट पौड़ी पहुंच जाने पर चार पांच केन्द्रके स्थान चुनकर वहां अन्नके डिपो खोल दिये गये और प्रत्येक डिपोको आस पासके कुछ ग्राम बाँट दिये गये। ग्रामोंमें पहिले ही सूचना भेज दी जाती थी कि

फलां फलां तारीखको फलां फलां ग्रामके पीड़ित व्यक्तियोंको अन्न बांटा जायगा। उसी सूचनाके अनुसार ग्रामीण लोग अपने ग्रामके लिये नियत डिपोमें पहुंच जाते थे। पीड़ितोंकी सूचियां भी दो प्रकारकी थीं। एक उन लोगोंकी जिनको दाम लेकर अन्न दिया जाता था और दूसरे उन लोगोंकी जिन्हें मुफत दिया जाता था।

मैदानमें नजीवाबादको अन्नका मुख्य केन्द्र-भण्डार बनाया गया था। पौड़ीसे नजीवाबादमें तैनात कार्यकर्त्ताओंको सूचना दी जाती थी और उसके अनुसार नजीवाबादके कार्यकर्त्ता गढ़-वालके भिन्न भिन्न डिपोज़को उतना अन्न भेज देते थे जितना सूचनामें लिखा होता था। स्वयंसेवकोंके आरामके लिये यह व्यवस्था की गयी थी कि दो तीन सप्ताहके बाद मैदानसे नये स्व-यंसेवक बुला लिये जाते थे और पहिले कार्य करने वालोंको छुट्टी देकर नयोंको उनके स्थानपर नियत कर दिया जाता था।

इलाहाबाद सेवा समितिके तो अपने स्वयं सेवक थे ही. स्वामीजीने अपनी ओरसे गुरुकुल काँगड़ीके स्नातकोंको स्वयं-सेवक बनाया था। जब गुरुकुलमें वर्षा ऋतुका सत्रांतावकाश हुआ तो विश्वविद्यालयके तत्कालीन आचार्यकी आज्ञासे स्वामी जीने कुछ ब्रह्मचारियोंको भी दुर्भिक्ष-निवारणका कार्य करनेके लिये बुलाया। जिन ब्रह्मचारियोंको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था उन्हें निःस्वार्थ लोकसेवा और निष्काम कर्मका इस कार्यसे बड़ा बहुमूल्य पाठ मिला था। स्वामीजी गुरुकुलसे सीधा सम्बन्ध छोड़

चुकनेपर भी अपने ब्रह्मचारियोंको इस प्रकारकी शिक्षा देनेका कोई अवसर शक्ति रहते हाथसे जाने नहीं देते थे।

शासकोंके दृष्टिकोणमें परिवर्तन।

दो तीन मास तक उपरोक्त प्रकारसे गढ़वालमें दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायताका कार्य निर्विघ्न और सफलता-पूर्वक होता रहा; और अन्तको शायद यह सफलता ही शासकोंके दृष्टिकोणमें परिवर्तनका कारण बनी। हमारे जिन पाठकोंको संसारकी सार्वजनिक घटनाओंके अध्ययनका अभ्यास है उनको याद होगा कि संवत १९७५ में युरोपका संसारव्यापी महायुद्ध जारी था और जिस समय स्वामी श्रद्धानन्दजी और इलाहाबाद सेवा समिति गढ़वालमें उक्त दुर्भिक्षनिवारणका स्तुत्य कार्य कर रहे थे उस समय ब्रिटिश नौकरशाही अपनी साम्राज्य-लिप्साकी पूर्तिके लिये अपने एजण्टों द्वारा गढ़वालमें रङ्गरूट सिपाही भरती कर रही थी। नौकरशाहीको भय था कि यदि मैदानके सार्वजनिक कार्यकर्त्ता इस समय गढ़वालमें जायंगे तो सम्भव है कि वे हमारे रङ्गरूट भरती करनेके काममें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित करें। इसलिये पहिले तो नौकरशाहीकी ओरसे यह फैलानेका यत्न किया गया कि गढ़वालमें दुर्भिक्ष है ही नहीं। परन्तु जब कार्यकर्त्ताओंने स्वयं गढ़वाल पहुंचकर वहांकी स्थितिका निरीक्षण करके शासकवर्गके विचारोंका खण्डन किया तब स्थानीय शासक दुर्भिक्ष निवारकोंकी सहायता करनेको तैयार हो गये। सरकारी तौर पर यह सूचना निकाल दी गयी कि इलाहाबाद सेवा समिति

और स्वामी श्रद्धानन्दजीके स्वयंसेवक सरकारी डाक बङ्गलोंमें ठहर सकेंगे, दुर्भिक्षकी जांच करनेमें गांवोंके पटवारी उनकी सब प्रकार सहायता करेंगे और जहां आवश्यकता होगी वहां उनको अन्न रखनेके लिये मकान आदि भी दिये जायंगे। पौड़ीमें तो सरकारने स्वामी श्रद्धानन्द और पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारीको दफ़्तर खोलनेके लिये अपनी जिला कचहरीका मकान तक दे दिया था। शायद इतनी सहायता करनेमें सरकारका यह विचार था कि दुर्भिक्ष-निवारणके कार्यकर्त्ताओंका ध्यान सरकारकी सहायता पाकर लोगोंकी वास्तविक दशाकी ओर जायगा ही नहीं, और रङ्गरूट भरती करने आदिके कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़ेगी। परन्तु सरकारकी यह आशा सफल न हुई। स्वामी श्रद्धानन्दजी और पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारी ने गढ़वालकी सामाजिक और आर्थिक दशाका भली भांति अध्ययन किया। सरकारको यह बात बुरी लगी और एक स्वयंसेवककी भूलके कारण उसे दुर्भिक्ष कार्यकर्त्ताओंके विरुद्ध आपत्ति उठानेका एक मौका मिल भी गया।

एक स्वयंसेवकने अपने नेताओंकी आज्ञा लिये बिना ही गढ़वालकी सामाजिक अवस्थाओंके विषयमें अपने विचार 'सद्धर्मप्रचारक' में छपवा दिये। इन विचारोंको लिखते हुए गढ़वालकी सामाजिक कुप्रथाओंका चित्र खींचनेमें उसने शायद कुछ अत्युक्तिसे भी काम लिया। विष फैलानेके लिये अवसरकी ताकमें रहने वालोंको इससे अधिक और क्या चाहिये था?

उन्होंने गढ़वालियोंमें इस बातका प्रचार किया कि दुर्भिक्ष-निवारक लोग सनातन धर्मके विरोधी 'आर्य' (आर्यसमाजी) हैं, ये गढ़वालमें भी 'आर्य-धर्म' फैलाने आये हैं और मैदानमें गढ़-वालियोंकी बदनामी कर रहे हैं।

दुर्भिक्ष-निवारकोंसे सरकारके विरोधका दूसरा कारण यह हुआ कि जब सरकार इस बातका खण्डन करनेमें असफल हो गयी कि गढ़वालमें दुर्भिक्ष फैला हुआ है, तब उसने स्वयं दो तीन स्थानों पर अन्न आदि की दूकानें खुलवायीं, परन्तु इनमें सब सामान महंगा बिकता था। सेवा-समिति और स्वामी श्रद्धानन्द जीके डिपो खुल जाने पर ये सब दुकानें चलनी बिलकुल बन्द हो गयीं। यह बात भी सरकारको बहुत बुरी लगी और उसने अप्रत्यक्ष रूपसे दुर्भिक्ष-सम्बन्धी कार्यकर्त्ताओंके मार्गमें कठिना-इयां उपस्थित करना आरम्भ कर दिया। परन्तु इस समय नयी फसल आने वाली थी इस कारण दुर्भिक्ष निवारणका कार्य प्रायः समाप्त हो चुका था और जब ऊपर निर्दिष्ट गड़बड़ आरम्भ हुई उसके लगभग एक मास बाद स्वामीजी गुरुकुलके सब ब्रह्मचा-रियोंको साथ लेकर गढ़वालसे वापिस चले आये।

एक कठिन परिस्थितिका सामना।

परन्तु गढ़वाल दुर्भिक्ष-निवारणके कार्यका वर्णन अधूरा रह जायगा यदि यहीं पर एक विशेष घटनाका हाल न लिख दिया गया। जब गढ़वालियोंमें 'आर्य धर्म' के प्रचारके नामपर असन्तोष फैलाया गया था उस समय पौड़ीके आस पास अशि-

क्षित और नासमझ गढ़वाली बहुत उत्तेजित हो गये थे। एक दिन तो सायं समयमें उन्होंने इकट्ठे हो कर स्वामीजीके निवास स्थान और दफ्तर पर भी हमला करना चाहा था। बहुतसे गढ़वाली डण्डे और कुल्हाड़े आदि लेकर दफ्तरके मकान तक आये भी परन्तु शायद दफ्तरके सरकारी होनेके कारण उनका आक्रमण करनेका साहस नहीं हुआ। आखिर ये लोग इसी उत्तेजित अवस्थामें उस सभामें पहुंचे जो दो तीन शिक्षित गढ़वालियोंकी ओरसे स्वामीजी और उनके कार्यकर्त्ताओंका विरोध करनेके लिये बुलायी गयी थी। स्वामीजी इस सभाका समाचार सुनकर बिना किसी भयके अकेले इस सभामें पहुंचे। उनको सभामें आते देखकर उत्तेजित भीड़ने बहुत ही हल्ला मचाया परन्तु किसीको आगे बढ़कर स्वामीजीको किसी प्रकारकी हानि पहुंचानेकी हिम्मत न हुई। स्वामीजीने इस सभामें व्याख्यान देकर सब लोगोंके सन्देहको तो दूर कर दिया परन्तु एक बार मन मैला हो जाने पर फिर वैसी शान्ति नहीं हो सकी जैसी कि पहिले थी।

चौदहवां अध्याय

राजनैतिक क्षेत्रमें प्रवेश ।

गढ़वालसे लौटकर स्वामी श्रद्धानन्दजीका कुछ समय तो गुरुकुलमें बैठकर गढ़वाल-दुर्भिक्षकी रिपोर्ट तैयार करके छपवाने और एकांत-वासमें बीता और उसके अनन्तर उन्होंने देहलीमें बैठकर फिरसे 'आर्यसमाजके इतिहास' की तैयारीका काम हाथमें लेने का निश्चय किया। अभी दो तीन मास ही शान्तिसे बैठे थे कि संवत् १९७५ के फालगुन मासमें ब्रिटिश नौकरशाहीने देशकी छाती पर ताण्डव नृत्य खेलना आरम्भ किया। इसी फालगुन मासमें भारत सरकारकी ओरसे वह रौलट ऐक्ट बनाया गया जो भारत वर्षके इतिहासमें सदा काले कानून के नामसे बदनाम रहेगा।

देहली सत्याग्रहकी कहानी।

देशभरके नेताओंने एक स्वरसे इन कानूनोंका विरोध किया। जो लोग सदा ब्रिटिश सरकारकी खैरख्वाही बजाया करते थे वे भी इस अवसरपर चुप नहीं रह सके और उन्होंने इन कानूनोंकी निन्दा की। महात्मा गांधीने युरोपियन महायुद्धके समय रंगरूट भरती करने आदिके कार्योंमें ब्रिटिस सरकारको ईमानदार समझ

कर उसकी बड़ी सहायता की थी। परन्तु महायुद्धके समाप्त होते ही उस सारी खैरख्वाही और सहायताके बदले काले कानूनोंको इनाममें मिलता देखकर महात्मा गान्धीको बड़ा रोष हुआ। उन्होंने इन कानूनोंका विरोध करनेके लिये सत्याग्रह आरम्भ करनेकी सूचना निकाल कर एक सत्याग्रह कमिटीका संगठन किया। स्वामी श्रद्धानन्दजी भी इस कमिटीके सदस्य बने। देहलीमें स्वामीजीने काले कानूनोंके प्रतिवादमें सभायें करवायीं और जनताको यह बतलाकर कि किस प्रकार उनकी स्वतंत्रताका अपहरण करनेका आयोजन किया जा रहा है, लोगोंको जागृत किया। उन दिनों इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौनसिल (भारत सरकार, की व्यवस्थापक सभा) के बहुतसे मेम्बर देहलीमें ही थे। इस कारण सब नेताओंसे सलाह करनेके लिये देहली बहुत उपयुक्त स्थान था। महात्मा गांधी देशके इन प्रतिनिधियोंसे सलाह मशविरा करनेके लिये अहमदाबादसे देहलीको रवाना हुए, परन्तु देहलीकी सरकारने उन्हें अपने प्रान्तकी हद्द पर पहुंचते ही गिरफ्तार कर लिया। इस घटनासे देहलीकी जनतामें बड़ी उत्तेजना फैल गयी। सरकारने लोगोंको दबाने और डरानेके लिये शहरमें मशीनगनें और गुरखा सिपाहियोंका पहरा बैठाया, परन्तु इससे जनताकी उत्तेजना दबनेके स्थानमें और भी बढ़ गयी। जोशसे मतवाली भीड़ स्टेशन पर उमड़ी चली आने लगी। पुलीसने किंकर्तव्य विमूढ़ होकर जनतापर मशीनगनकी बार दाग दी। बस फिर क्या था, आगमें मानो तेल पड़ गया। तमाम शहरमें

संवत् १९७५ के अन्तमें रौलट फक् आन्दोलनके समय देहली घण्टाघरके नीचे स्वामीजीके साहसका एक अपूर्व दृश्य ।

उत्तेजना फैल गयी। अधिकारियोंके लिये परिस्थितिको सम्भालना प्रायः असम्भव हो गया। जिधर देखो लोगोंमें जोश दिखायी देता था। ऐसा जान पड़ता था कि आज देहली से ब्रिटिश राज उठ गया है। इस उत्तेजित भीड़को यदि कोई शक्ति शांत कर सकती थी तो वह स्वामी श्रद्धानन्दजीकी भगवा-वस्त्र-धारिणी विशाल परन्तु सौम्य मूर्ति थी। इस मूर्तिके अन्दर प्रचण्ड साहस-पूर्ण किन्तु शान्त हृदय कार्य कर रहा था। उस हृदयमें ब्रिटिश नौकरशाहीके क्रूर काले कानूनोंके विरुद्ध प्रबल क्रोधाग्नि जल रही थी, परन्तु किं-कर्तव्य-विमूढ़ पुलीसकी असहाय अवस्थाके लिये अपार दयाका भाव विराजमान था। यदि इस शीतल दयासे प्रेरित होकर स्वामी श्रद्धानन्द उस दिन आगे न बढ़ते तो शायद देहली फिर एक बार नादिरशाह और औरंगजेबके कृत्योंकी रंगस्थली बनती, शायद देहलीका इतिहास ही बदल जाता और शायद ब्रिटिश नौकरशाही के लियेही संवत् १९१४-१५ के स्वातंत्र्य युद्धके दिनों की एक बार पुनरावृत्ति हो जाती।

स्वामीजीकी छाती पर संगीनोंका वार।

भीड़को उत्तेजित और पुलीसके अधिकारियोंको सन्नाटेमें आया हुआ देखकर स्वामी श्रद्धानन्द दण्ड हाथमें लेकर आगे आये और पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्ट व डिप्टी कमिश्नरको कहा कि यदि तुम लोग अपनी फौजको पीछे हटा लो तो भीड़को मैं अभी शान्त किये देता हूं। उस समय तो इन लोगोंने फौजको पीछे बुला

लिया। परन्तु जनता शान्त हो जानेपर फिर शहरोंमें फौजका पहरा बिठला दिया। ब्रिटिश शासकोंका जीवन शायद इस प्रकारके झूठों और छलोंपर ही चलता है।

भीड़का ध्यान दूसरी ओर खींचनेके लिये स्वामीजीने घोषणा करवाई कि पाटोदी हाउस (दर्यागञ्ज) में मशीनगनका शिकार होने वाले शहीदोंके मातममें एक सभा होगी, सब लोग उस सभामें उपस्थित हों। बस, स्वामीजीकी अनुगामिनी जनता उसी ओरको चल पड़ी। आगे आगे स्वामीजी स्वयं हाथमें डण्डी लिये नंगे पांव चले जा रहे थे और पीछे जनता नङ्गे पांव चुपचाप मातमके जलूसमें चली आ रही थी। चाँदनी चौकके घण्टाघरके नीचे पहुंचनेपर वहाँ जो गुरखे सिपाही पहरेदार थे उन्होंने जलूसको आगे बढ़नेसे रोका और गोली चलानेकी धमकी दी। परन्तु स्वामी जी निर्भयतासे आगे बढ़े जा रहे थे। इस पर एक दम दस ग्यारह गुरखे नङ्गी सङ्गीनें आगे बढ़ाकर आये और सङ्गीनें स्वामीजीकी छातीपर तान दीं। स्वामीजी बेधड़क छाती खोल कर संगीनोंके आगे खड़े हो गये और बोले कि "इन लोगोंपर वार करनेसे पहिले मेरी छाती पर संगीन चलाओ।" स्वामीजीने तमाम लोगोंको पीछे रखकर और अपनी छाती पर सब संगीनों का वार लेकर ये शब्द इस प्रकार कहे थे किमानो वह देहलीकी जनताकी ढाल थे। और वस्तुतः उस समय उन्होंने जनताकी ढालका काम किया। क्योंकि दो टुकड़ोंके लिये गलेमें गुलामी का तौक पहिनने वाले गुरखे स्वामीजीको इस बहादुरीसे झेंपकर

पीछे हट गये। स्वामीजीकी निर्भयताकी इस एक हरकतने जलूसका रास्ता साफ कर दिया और पाटोदी हाउसमें सशस्त्र पुलिसके पहरेमें सभा निर्विघ्न समाप्त हुई।

हिन्दु-मुसलिम एकताका आदर्श।

स्वामीजीने जहाँ देहलीकी जनताको इन दिनों शांत रखा वहां हिन्दू मुसलिम एकताका वह नमूना उपस्थित किया जो उस समय के बाद फिर भारतवर्षमें अभी तक देखनेमें नहीं आया। स्वामीजीने मुसलमान शहीदोंके लिये उस समय जो कष्ट उठाया था और जिस हमदर्दीके साथ उन्होंने मृत पुरुषोंके परिवारोंकी खबर ली थी, उसके कारण मुसलमान स्वामीजी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तैयार थे। उन्होंने उस समय यह नहीं समझा था कि स्वामीजी मनुष्यमात्रकी इसी प्रकार सेवा करने वाले थे। कारण कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि जो मुसलमान आज संवत १९८३ में स्वामीजीके खूनपर खुशीके मारे दीवाने हो रहे हैं, वही संवत १९७६ के आरम्भमें स्वामीजीकी रक्षाके लिये उत्तेजनासे दीवाने हो रहे थे। उन दिनों सात आठ मुसलमान जल्लाद अपने नंगे छुरे तैयार करके स्वामीजीके बराबर समझाने और मना करने पर भी उनकी रक्षाके लिये उनके मकान पर पहरा देते थे। स्वामीजीका सन्देश सुननेके लिये मुसलिम जनता ऐसी उत्सुक थी कि उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दको जामा मस्जिदके मिम्बर पर ले जाकर उनका सन्देश सुना था। उस समय जामा मसजिद मुसलमानोंकी इबादतगाह नहीं, प्रत्युत

हिन्दू-मुसलिम आदि विना किसी साम्प्रदायिक विचारके देहलीकी तमाम भारतीय जनताकी राष्ट्रीय विचार-शाला प्रतीत होती थी। उसमें किसी को आने जानेकी कोई रुकावट न थी। देहलीकी सारी हिन्दू-मुसलिम जनता विना किसी भेदके जामा मस्जिदमें जमा हुई और हिन्दू संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्दजीने भारतीय मुसलमानोंके सबसे उच्च और पवित्र मिम्बरपर खड़े होकर वेद-मन्त्रोच्चारण पूर्वक जनताको शान्ति, स्वातंत्र्य और एकताका सन्देश सुनाया। यह अद्वितीय गौरव अभी तक भारतवर्षमें न किसीको मिला और शायद न भविष्यमें किसीको मिलेगा।

सत्याग्रह कमिटीसे त्यागपत्र।

देहलीमें स्वामीजीके हाथमें इतनी शक्ति आ चुकी थी जब कि उनको विवश हो महात्मा गान्धोकी सत्याग्रह कमिटीसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना पड़ा। महात्मा गान्धीने देहली, अमृतसर और वीरमगांव (अहमदाबाद) के दङ्गोंकी घटनाओंका समाचार सुनकर सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। उनका कहना यह था कि देहली और अमृतसरमें जो गोली चलायी गयी उसके लिये अपराध जनताका ही है; जनताने सत्याग्रहकी पहली शर्त अहिंसाका भंग किया इस कारण उन पर पुलीस या सेनाको गोली चलानी पड़ी; क्योंकि जनताने उक्त हिंसाका पाप किया इस कारण जनताको सत्याग्रह रोककर इस हिंसाका प्रायश्चित्त करना चाहिये। परन्तु स्वामीजीका कहना था कि हिंसा का अपराध जनताका नहीं ब्रिटिश नौकरशाहीका है। यदि

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—
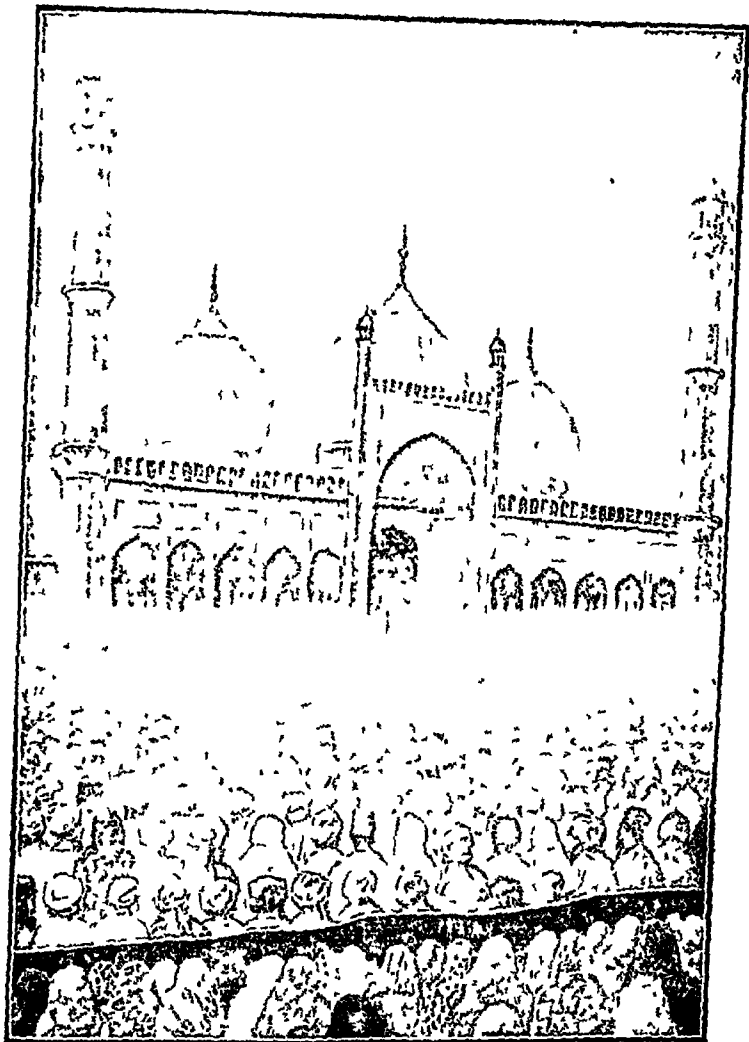
संवत् १६७५ में स्वामीजीका देहली जामा मसजिदकी वेदी परसे उपदेश।

पुलीस या सेना जनताको उत्तेजित न करती तो जनता क़ाबूसे बाहर कभी न होती, जनताको उत्तेजित नौकरशाहीकी ओरसे किया गया इस लिये हिंसाका पाप नौकरशाही पर है न कि जनता पर। परन्तु महात्मा गांधी पहिले ही सत्याग्रह कमिटीके अन्य मेम्बरोंकी सलाह बिना लिये सत्याग्रह रोक देनेकी घोषणा कर चुके थे, इस कारण स्वामीजीको विवश हो इस विचित्र सिद्धान्त और व्यवस्था वाली सत्याग्रह कमिटीसे सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ा और उसके साथ ही स्वामीजीका किया कराया सब मिट्टीमें मिल गया।

महात्मा गांधीके लेखानुसार रौलट ऐक्टके आन्दोलन के जन्मदाता स्वामी श्रद्धानन्द थे। और इस आन्दोलनके आरम्भ करनेके एक सप्ताहके भीतर ही उन्होंने देहलीमें जो कर दिखाया उसे, रौलट एक्टके लिये सत्याग्रहका आरम्भ करने वाले स्वयं महात्मा गांधी महीनोंमें नहीं कर सके। महात्मा गांधी हिंसा और अहिंसाकी काल्पनिक मीमांसामें ही रह गये और स्वामीजीने देहलीमें उन शक्तियोंको खड़ा कर दिया, जिन्होंने देहलीके तात्कालिक शासकोंकी नींद हराम कर दी और हम कह सकते हैं कि यदि महात्मा गान्धी ठीक समय पर पीछे क़दम न हटा लेते तो देहलीका उस वर्षका इतिहास और तरह लिखा जाता। स्वामीजी सच्चे शक्ति-सम्पन्न, वीर क्षत्रिय थे। वह सदा व्यावहारिक मार्गसे चलते थे। वह काल्पनिक सूक्ष्म मीमांसाओंमें पड़ना नहीं जानते थे। उन्होंने राष्ट्रकी पुकार होते ही महात्मा

गान्धीके सत्याग्रहमें योग दे दिया और उनको उद्देश्य-विनाशिनी हिंसा अहिंसाकी मीमांसाओं में पड़ते देखकर वह उनकी सत्याग्रह-कमिटीसे अलग भी तुरन्त हो गये। परन्तु जब तक वह सत्याग्रह कमिटीके मेम्बर रहे तब तक उन्होंने किस प्रकार देहलीकी जनताको सङ्गठित और जागृत किया, किस प्रकार उस समय भड़की हुई जनताको नियंत्रणमें रखा, किस प्रकार गुलामीका तौक़ पहन कर अन्धे बने हुए गुरखोंकी नंगी किरचोंके सामने अपनी छातीको कर दिया, किस प्रकार हिन्दू मुसलिममें भेद-भावको मिटा दिया, किस प्रकार देहलीमें शान्ति रक्षा करके स्थानीय शासकोंकी चिन्ताको कम किया और किस प्रकार उन को देहलीकी जामा मसजिदमें वेदमंत्रोच्चारण-पूर्वक लोगोंको शान्ति-पूर्ण राष्ट्रीय सन्देश सुनानेका गौरव प्राप्त हुआ ये सब घटनायें जब तक संसारके इतिहासमें स्वामीजीका नाम रहेगा तब तक स्वर्णाक्षरोंमें लिखी रहेंगी।

पंजाबमें संन्यासीका अपूर्व कार्य।

महात्मा गांधीके सत्याग्रहको रोक देनेके कारण और इन दिनों देहली और अमृतसरमें जो ख़ून ख़राबी हुई तथा नौकरशाहीने जो सैकड़ों निहत्थे पुरुषोंकी जानें लीं और उन्हें घायल किया, उन सबके लिये अपने विचित्र सिद्धान्तोंके अनुसार निरपराध दीन भारतियोंके ख़ूनसे हाथ रङ्गने वाले जनरल डायर, माइकेल ओडवायर और मालकम हेलीको दोष देनेके बजाय, उलटा पंजाबी जनताको ही दोष देनेके कारण ब्रिटिश नौकरशाही

का पाशविक उत्साह और भी बढ़ गया। जनता तो महात्मा गान्धीकी आज्ञा मानकर चुप हो रही और नौकरशाही निःशंक होकर जख्मोंसे कराहते हुए पञ्जाबकी छाती पर नंगे नाच नाचने लगी। मध्य पञ्जाबके कई ज़िलोंमें साधारण दीवानी क़ानूनका शासन उठाकर फ़ौजी क़ानूनकी घोषणा की गयी। इस क़ानून के नामपर जिस समय जनरल डायर अमृतसरमें लोगोंको पेटके बल रेंगवा रहा था, वासवर्थ स्मिथ गुजरानवालामें सती स्त्रियों के घूंघट उठा उठाकर उनके मुंहपर थूक रहा था और जानसन लाहोरमें वेचारे वालक विद्यार्थियोंसे जेठकी कड़ी धूपमें वारह वारह मील दौड़ लगानेकी नृशंस क़वायद करा रहा था, उस समय महात्मा गांधी सावरमतीके सत्याग्रहाश्रममें वैठे हुए जनता की स्वकल्पित हिंसा के लिये प्रायश्चित्त कर रहे थे। अन्तको जव पञ्जावमें अत्याचार वहुत वढ़ गये तव महात्मा गाँधीका भी आसन हिला और उन्होंने भी पंजावके अमानुषिक अत्याचारोंकी निन्दामें योग दिया। पंजावके क्रूर काण्डोंकी कहानी सुन सुन कर भारतका प्रत्येक सपूत दौड़ कर अपने भाइयोंकी सहायता करना चाहता था परंतु उस अभागे प्रान्तमें वाहरके लोगोंका प्रवेश तक वन्द होनेके कारण सव विवश थे। स्वामी श्रद्धानन्दजी देहलीमें रहनेके कारण पञ्जावके वहुत समीप थे। उनका हृदय पंजावके नित नये नये नृशंस नारकी समाचार सुन कर टुकड़े टुकड़े हुआ जा रहा था। वह कई वार सोचते थे कि मैंने महात्मा गांधीकी घोषणाको परवाह न करके सत्याग्रह वन्द न किया

होता तो कैसा होता ? यदि हम स्वतंत्र रूपसे रौलट एक्के विरुद्ध सत्याग्रहको जारी रखते तो शायद हाथ भरकर अपनी आंखोंसे ये क्रूरतायें देखनेका अवसर ही न आता ! परन्तु बीती हुई बातों के विषयमें कल्पना दौड़ानेसे क्या लाभ ?

चार पांच मास बाद पंजाबसे फौजी क़ानूनका शासन उठा और स्वामी श्रद्धानन्दजी पं० मदन मोहन मालवीयके साथ सीधे पंजाब पहुंचे । इन दोनों विशाल-हृदय महापुरुषोंने नङ्गे पांव अमृतसरकी गली गलीमें घूमकर पीडितोंकी दुर्दशाका अवलोकन किया और जो अपने सम्बन्धियोंसे वियुक्त हो गये थे उनको सान्त्वना और सहायता दी । पं० मालवीय तो कार्य-वश अमृत-सरसे चले आये परन्तु लोक-सेवाका अपने जीवनका परमोद्देश्य समझने वाले संन्यासीने अमृतसरमें ही आसन जमा लिया और जमकर पीड़ितोंकी सहायताका कार्य आरम्भ कर दिया ।

पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरञ्जन दासने पीछेसे पंजाबके जिन पीड़ितोंकी क़ानूनी सहायता की थी, उन सबके विषयमें सूचनायें प्रायः स्वामीजीके ही द्वारा पहुंची थीं । यदि स्वामी श्रद्धानन्द इन दिनों पंजाबमें न होते तो पं० मालवीय, प० नेहरू और देशबन्धु दासके दो दो चार चार दिनोंके दौरोंसे वह काम हरगिज़ नहीं हो सकता था जो कि हो गया ।

अमृतसर कांग्रेस ।

इस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके सभापति पं० मदन-मोहन मालवीय थे। उन्होंने स्वयं पञ्जाबमें घूमकर वहांकी

स्थितिका निरीक्षण किया था। इस कारण उनको सन्देह था कि पञ्जावकी तात्कालिक परिस्थितिमें पूर्व-निश्चयानुसार संवत् १९७६ विक्रमीकी कांग्रेस अमृतसरमें भली भांति हो सकेगी या नहीं। उन्होंने यह विषय विचारके लिये कांग्रेसके अन्य नेताओं के सन्मुख उपस्थित किया। अधिकतर नेताओंने यही राय दी कि इस वर्ष कांग्रेसको अमृतसरसे हटाकर किसी अन्य स्थानपर किया जाय तो ठीक होगा। परन्तु आशा, उत्साह, साहस और आत्मविश्वासकी मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्दने कहा कि नहीं, कांग्रेस अमृतसरमें ही होनी चाहिये। यदि मार्गमें कठिनाइयाँ हैं तो क्या, हम अपने बाहुबलसे कठिनाइयोंको हटाकर रास्ता साफ़ बनायेंगे। परन्तु नेताओंका सन्देह दूर न हुआ। स्वामीजीने फिर बतलाया कि यदि इस वर्ष कांग्रेस अमृतसरमें ही की गयी तो लोगोंका भय दूर हो जायगा, उनमें जीवनका पुनः संचार हो जायगा और नौकरशाहीको जनताके भयसे लाभ उठानेका अवसर न मिलेगा। इस युक्तिका वजन नेताओंको मानना पड़ा और उन्होंने स्वामीजी की ही जिम्मेवारी पर अमृतसरमें कांग्रेस करनेका निश्चय कर लिया। यद्यपि समय थोड़ा था तथापि स्वामीजीने कांग्रेसकी तैयारी शुरु करा दी। और ज्यों ज्यों उनके कार्यमें प्रगति होती गयी त्यों त्यों नेताओंके हृदयमें सफलताकी आशा और विश्वासकी मात्रा बढ़ती गयी। वे सब आश्चर्य करते थे कि ऐसी विकट कठिनाइयोंके बीच स्वामीजी काम कैसे कर रहे हैं! उन दिनों पंजाबकी जनता फौजी कानूनके अत्याचा-

रोंके कारण अत्यन्त ही दबी और डरी हुई थी। उन दिनों कोई कांग्रेसका साथ देना तो दूर, उससे सहानुभूति दिखाने तकको, हिम्मत न करता था। परन्तु स्वामीजीने अमृतसर और लाहोर आदि शहरोंमें कूचे कूचे घर घर घूमकर लोगोंको ढाढस बंधाया और उनमें फिरसे जीवनका संचार किया। कांग्रेसके पण्डाल और प्रतिनिधियों तथा दर्शकोंके स्वागत, उतारे आदि का प्रबन्ध करनेके लिये स्वामीजी अकेले उन दिनों दिन रात अनथक परिश्रम करते थे। वह प्रत्येक उतारेके स्थान पर स्वयं जाकर सबके आरामकी देख रेख और प्रबन्ध करते थे उस वष ठीक समय पर वर्षा हो जानेसे प्रबन्ध करना और भी कठिन हो गया था सरदी कड़ाके की पड़ने लगी थी, मकानोंकी कमी थी, पण्डालमें पानी भर आया था, बाहरसे आये हुए लोगोंके पास कपड़ोंका अभाव था और कीचड़के मारे रास्तोंमें आना जाना मुश्किल हो गया था, परंतु इतनी कठिनाइयोंके होते हुए भी स्वामीजीने साहस उत्साह, धैर्य, स्थिरता और अनथक परिश्रमसे सबके आरामका बन्दोबस्त किया। इतना सब काम करते हुए भी स्वामीजी कांग्रेसके विचारोंमें भी पूरा भाग लेते थे और प्रतिनिधियोंके मत-भेदको मिटाकर काग्रेसकी फूटसे रक्षा करते। स्वामीजी कांग्रेसके पहिले स्वागताध्यक्ष थे जिन्होंने अंग्रेजी जानते हुए भी अपना भाषण हिन्दीमें किया था। केवल इतना ही नहीं उनके भाषणकी भाषा, भाव और शैली ऐसी मौलिक और भारतीय भाव-मय था कि उसका अंग्रेजी अनुवाद अच्छे अच्छे अंग्रेजी

भाषाके विद्वान भी भावोंका थोड़ा बहुत परिवर्तन किये विना नहीं कर सके थे।

पंजाबके अत्याचारोंकी जांच।

अमृतसर कांग्रेसकी समाप्तिके अनन्तर कुछ समय तक स्वामीजी पंजाबके अत्याचारोंकी जाँचमें महात्मा गान्धी और देश-बन्धु दास आदि कांग्रेस जांच कमिटीके सदस्योंकी सहायता करते रहे और फिर उनको मानसिक दुविधाकी बड़ी विचित्र स्थितिमें भारतके राष्ट्रीय क्षेत्रको छोड़कर गुरुकुलके पुराने कार्य का भार अपने कंधों पर लेना पड़ा।

पन्द्रहवां अध्याय
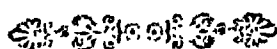
फिर गुरुकुलमें
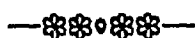
अमृतसर कांग्रेसकी असाधारण सफलताने भारतके राष्ट्रीय नेताओंपर स्वामी श्रद्धानन्दजीकी धाक बांध दी थी। लोकमान्य तिलक आदि राजनीति-कुशल नेता संसारके बन्धनोंसे मुक्त इन्द्रियजयी वीर संन्यासीसे बड़ी आशायें लगाकर अमृतसरसे वापिस गये थे कि स्वामीजीको कर्त्तव्यकी पुकारने दूसरी ही ओर बुला लिया। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ीके संचालनका भार छोड़े हुए स्वामीजी को मुश्किल से तीन साढ़े तीन वर्ष व्यतीत हुए थे कि गुरुकुलकी स्वामिनी सभा (आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब) ने अनुभव किया कि स्वामी श्रद्धानन्दके सिवाय इस विशाल संस्थाके कठिन प्रबन्धको कोई सफलतापूर्वक नहीं निभा सकता। इस कारण सभाकी ओरसे स्वामीजीसे प्रार्थना की गयी कि आप कृपा कर फिर गुरुकुलका आचार्य बनना स्वीकार करें। स्वामीजी इस समय गुरुकुलकी अपेक्षा अधिक विस्तृत कार्यक्षेत्रमें पांव रख चुके थे। उन्होंने कई नयी जिम्मेवारियोंको अपने सिर ले लिया था। वह उनको एक दम नहीं छोड़ सकते थे और दूसरी ओर अपने ही रुधिर और पसीने

से सींच कर बनाये हुए विश्वविद्यालयकी दुर्गति भी नहीं देख सकते थे। इस कारण वह बड़ी दुविधामें पड़ गये कि आर्य प्रतिनिधि सभाके अनुरोधको कैसे अस्वीकार करें अथवा जिन जिम्मेवारियोंको अपने ऊपर ले लिया है उनको भी एकदम कैसे छोड़ दें। अन्तको विचारके अनंतर स्वामीजीने यही निश्चय किया कि गुरुकुलके मुख्याधिष्ठातृत्व और आचार्यत्वका कार्य करनेके साथ ही बैठकर लेख द्वारा राष्ट्रीय सेवाके कार्यको भी जारी रखेंगे।

शासकोंसे दूसरी बार संघर्ष।

स्वामीजीने संवत् १९७६ के आरम्भमें गुरुकुल पहुंचकर वहाँ का कार्य सम्भाल लिया और आते ही जो व्यवस्था बिगड़ गयी थी उसे सुधारनेके लिये कई आवश्यक पतिवर्तन किये। परन्तु उनके आनेसे ब्रिटिश नौकरशाहीके स्थानीय एजण्टोंकी ओरसे कई प्रकारकी अड़चनें उपस्थित की जाने लगी। गुरुकुल पर पहिले एक बार संवत १९६९-७० में सरकारकी क्रूर संदिग्ध दृष्टि हुई थी। उस कठिन परिस्थितिका महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्दजी) ने बड़ी चतुराईसे सामना किया था। अब जब कि स्वामीजीने गुरुकुल छोड़कर प्रत्यक्ष रूपसे राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लेना आरम्भ किया तब फिर शासक लोग गुरुकुलको सन्देह-दृष्टिसे देखने लगे। पुलीसके कर्मचारियों की गुरुकुलमें :आमद-रफ्त बढ़ गयी। पहिले जिन बातोंका कोई नोटिस तक न लेता था। उन पर पुलीस गुरुकुलके अधि-

कारियोंसे सफाई तलब करने लगा और गुरुकुलके ग्राम काँगड़ी में भी कभी कभी पुलीस रोब जमानेके लिये लोगोंको सताने लगी। दुर्भाग्यसे गुरुकुलके तात्कालिक अधिकारियोंने पुलीस के इस दुःसाहसका स्पष्टतासे सामना नहीं किया। जहां महात्मा मुन्शीरामजीके समयमें पुलीस गुरुकुलके अधिकारियोंकी इच्छानुसार चला करती थी, वहां अब गुरुकुलके अधिकारी पुलीसकी इच्छाओंको आवश्यकतासे अधिक महत्व देने लगे। केवल इतना ही नहीं, ब्रह्मचारियों तकको सरकारी स्कूलकी भांति राजनैतिक मामलोंसे उदासीनता रखनेका उपदेश दिया जाने लगा गुरुकुलमें 'इण्डिपेण्डेण्ट' आदि निर्भीक राष्ट्रीय पत्रोंका आना रोक दिया गया और एक उपाध्यायने तो यहां तक 'सावधानता' दिखलायी कि विद्यार्थियोंको राजनैतिक आन्दोलन सम्बन्धी विषयोंपर मन में विचार तक न करनेकी सलाह दे डाली। स्वामीजीने गुरुकुलमें आते ही पुलीसकी सब हरकतोंके प्रति नितांत उपेक्षाका व्यवहार आरम्भ कर दिया। ब्रह्मचारियोंको राजनैतिक पुस्तक पत्रादि न पढ़ने देनेकी न केवल रुकावट ही दूर कर दी, प्रत्युत स्वयं कभी कभी बातचीतमें इन विषयोंपर अपने विचार और अनुभव सुन कर उनका ज्ञान और देशभक्तिके भाव बढ़ाने लगे। परंतु पुलीस उपेक्षाके व्यवहारके कारण बहुत चिढ़ गयी थी। वह जब अन्य किसी प्रकार गुरुकुलको हानि नहीं पहुंचा सकी तो बिजनौर नामक जिस जिलेमें गुरुकुल कांगड़ी स्थित था उसके ज़िला मजिस्ट्रेटने गुरुकुलको शस्त्रोंका लाइसेन्स देनेसे इनकार कर दिया।

कारण यह बतलाया कि गुरुकुलके अधिकारी भी राजनैतिक आन्दोलनमें भाग लेते हैं इस लिये सरकार उनको शस्त्र देना उचित नहीं समझती। गुरुकुलके पास ये शस्त्र दसियों बरसों से थे और प्रति वर्ष इनका लाइसेन्स बदलवाया जाता था, परन्तु इसी वर्ष ज़िला मजिस्ट्रेटको लाइसेन्स न देनेके लिये यह प्रवल कारण सूझा। स्वामीजीने शस्त्रोंके लिये लाइसेन्स न मिलनेकी कोई परवाह न की और गुरुकुलके साप्ताहिक पत्र 'श्रद्धा' (दुबारा गुरुकुल आनेपर स्वामीजीने इस पत्रका आरम्भ किया था) में जिला मजिस्ट्रेटके साथ अपना पत्र-व्यवहार छपवाकर लिख दिया कि गुरुकुल शस्त्रोंके विना भी आत्म-रक्षा करनेमें समर्थ है।

उसी वर्ष गुरुकुलके आस पासके ग्रामोंमें बहुतसे डाके पड़े। पुलिसने गुरुकुलके मुख्याधिष्ठाताको जहाँ यह लिखा कि गुरुकुलवासियोंको भी डाकुओंसे सावधान रहना चाहिये वहां साथ ही यह भी लिख दिया कि पुलीसके पास इतने आदमी नहीं हैं कि वह गुरुकुलकी विशेष रूपसे रक्षा कर सके, मानों किसीने जाकर पुलीससे सहायताकी याचना की हो। स्वामीजीने इस समय आज्ञा दे दी कि रातको सब द्वार खुले रखे जाया करें और महाविद्यालयके बड़े ब्रह्मचारियोंकी बारी बांध दी कि वह थोड़े थोड़े समयके लिये रातको पहरा दिया करें। कुछ दिन तक यह क्रम जारी रहा परन्तु किसी प्रकारकी दुर्घटनाका दुर्लक्षण तक दिखाई न देने पर बन्द कर दिया गया। अन्तमें गुरुकुलको किसी प्रकारकी हानि पहुंचते न देखकर शासकोंकी बुद्धि आपही ठिकाने आ गयी।

बर्माकी यात्रा ।

गुरुकुलका काम सम्भालते ही स्वामीजीको इस संस्थाकी आर्थिक नींव दृढ़ करनेकी चिंता हुई। 'श्रद्धा' द्वारा आपने इसके लिये एक अपील भी निकाली। आपका विचार था कि कमसे कम महाविद्यालय-विभागमें जितने विषय पढ़ाये जाते हैं उन सबके उपाध्यायोंकी गद्दियोंको आर्थिक चिन्तासे मुक्त कर दिया जाय। इसके लिये आपने यह योजना तैयार की कि प्रत्येक गद्दीके नामसे ३००००) तीस हजार रुपया बैंकमें जमा रहे और उसके ब्याजसे गद्दीका सब व्यय चलता रहे। आपकी इस योजनाको जानकर बर्माके आर्य पुरुषोंने भी आपको एक गद्दीका रुपया देनेका वचन दिया। बर्माके आर्य स्वामीजीको कई बार अपने प्रांतमें आनेके लिये निमन्त्रित कर चुके थे परन्तु कार्यवश स्वामीजी इस निमन्त्रणको स्वीकार करनेके लिये समय न निकाल सके थे। संवत् १९७८ के अन्तमें जब बर्मा वालोंने गुरुकुलकी उक्त सहायता करनेका वचन दिया तब स्वामीजीको बर्मा-यात्राके लिये समय निकालना ही पड़ा। स्वामीजी बर्मा तो गये और वहांसे गुरुकुलके लिये उक्त धन-राशि भी लाये परन्तु यह लम्बी यात्रा उनके स्वास्थ्यके लिये बहुत हानि-कर सिद्ध हुई। बर्मासे वापिस आनेके कुछ दिन बाद ही स्वामीजी पर इनफ्लुएंजा, न्यूमोनिया और गुर्देकी बीमारी, तीनों रोगोंने एक साथ ऐसा भयंकर आक्रमण किया कि एक माससे अधिक समय तक बिस्तर पर पड़े रहनेके बाद उनको

गुरुकुलका कार्य सदाके लिये छोड़ देनेको विवश होना पड़ा। यह कार्य ऐसा नहीं था कि बिना कठिन परिश्रमके सिद्ध हो सके और जब स्वामीजीने अपने शरीरको इस योग्य न पाया तब वह आर्य प्रतिनिधि सभाको त्याग-पत्र भेजकर फिर देह-लीमें जा विराजे।

असहयोग आन्दोलन और स्वामीजी।

गुरुकुलका कार्य करते हुए भी स्वामी श्रद्धानन्दजी लेखों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट करते रहते थे और विशेष आवश्यकता पड़ने पर कभी कभी व्याख्यानादिके लिये गुरुकुलसे बाहर भी जाया करते थे। अमृ-तसर कांग्रेसके कुछ समय बाद ही महात्मा गान्धीने असहयोग आन्दोलन आरम्भ करनेकी घोषणा की थी। उसी वर्षके श्रावण मासमें लोकमान्य तिलकका स्वर्गवास हो जानेके कारण महात्मा गान्धीका भारतवर्षके राजनैतिक क्षेत्रमें प्रभाव अद्वि-तीय हो गया और असहयोगकी नीति स्वीकार करनेके लिये संवत् १६७७ के भाद्रपद मासमें (सितम्बर सन् १६२०) में लाला लाजपत रायकी अध्यक्षतामें कलकत्तामें कांग्रेसका विशे-षाधिवेशन हुआ। स्वामी श्रद्धानन्दजीने इस कांग्रेससे पहिले ही लेखों द्वारा महात्मा गान्धीसे अनुरोध किया था कि वह अपने असहयोग आन्दोलनके कार्यक्रम में अछूतोद्धारको स्थान अवश्य दें। परन्तु महात्मा गान्धीको तब तक अपनेही अनुभवका अभिमान था और उन्होंने स्वामीजीकी सलाहका उत्तर तक

देनेकी आवश्यकता नहीं समझी। स्वामीजी अपने इन विषाओंका कांग्रेसके सम्मुख उपस्थित करनेके लिये कलकत्ता भी पहुंचे। पहिले उन्होंने कांग्रेसकी विषय-निर्धारिणी समितिमें इस विषयको उपस्थित किया, परन्तु अपनी राजनीतिज्ञताके अभिमानी कांग्रेसके नेताओंमेंसे किसीने भी इस विषयको महत्वको न समझा। तब स्वामीजीने दूसरा उपाय न देख खुली कांग्रेसमें यह विषय लानेका निश्चय किया। वहां भी लाला लाजपतरायने उनको ऐसा न करने दिया। अन्तको स्वामीजी निराश हो कलकत्तासे लौट आये और गुरुकुलमें बैठकर लेखों द्वारा अपने विचार प्रकट करते रहे।

कलकत्ता कांग्रेसके बाद महात्मा गान्धीने असहयोगका प्रचार करनेके लिये दक्षिण भारतकी ओर दौरा किया। वहां अब्राह्मणोंने महात्मा गान्धीके मार्गमें स्पष्ट रूपसे विघ्न उपस्थित किये। दक्षिण भारतमें उस समय तक स्वराज्य आदिकी हलचलमें केवल ब्राह्मण ही भाग लिया करते थे। ये ब्राह्मण लोग एक ओर तो स्वराज्यके लिये आन्दोलन करते थे और दूसरी ओर अपने अब्राह्मण भाइयोंके साथ अत्यन्त कुत्सित दुर्व्यवहार करते थे। इस कारण अब्राह्मण लोग स्वराज्य आन्दोलनके ही शत्रु बन गये थे। वे ब्रिटिश शासकोंकी ही ढालके नीचे रहनेमें अपना कल्याण समझने लगे थे। जब उन्होंने महात्मा गान्धीके असहयोग कार्यक्रमका भी विरोध किया तब महात्माजीकी आंखें खुली और उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दजीकी नेक स-

लाहका महत्व अनुभव किया। उस समय महात्माजीको होश आया कि जब तक भारतवर्ष अपने आँतरिक सामाजिक अन्यायों और विषमताओंको दूर न कर लेगा, तब तक वह अपने शत्रुका एक होकर सामना नहीं कर सकता। इस लिये संवत् १९७७ के पौष मासमें नागपुरकी कांग्रेसमें महात्माजीने अपने असहयोग आन्दोलनका, सुधार कर, जो कार्य-क्रम पेश किया उसमें उन्होंने अछूतोद्धारको न केवल स्थान ही दिया प्रत्युत प्रमुख स्थान दिया। स्वामी श्रद्धानन्दजी भी इस कांग्रेसमें सम्मिलित हुए थे और अपने अछूतोद्धारको असहयोग आन्दोलन अंग बनवा देनेके कारण एक प्रकार विजयी और सफल होकर नागपुरसे लौटे।

देहलीमें अछूतोद्धारका कार्य।

नागपुर कांग्रेसके चार पांच महीने बाद स्वामीजीने स्वास्थ्यकी खराबीके कारण गुरुकुलके कार्यसे त्यागपत्र दे दिया था। अब देहलीमें बैठकर उन्होंने फिर राष्ट्रीय कार्यको हाथ लगाया। इस समय मुख्यतया तीन कार्योंपर उनका ध्यान था। प्रथम तो संवत् १९७६ के वैशाख मासमें देहलीमें जो लोग शहीद हुए थे उनके स्मारक के लिये पाटोदी हाउस (दर्यागंज) की जमीन खरीदनेका जो कार्य स्वामीजी उसी वर्ष आरम्भ कर चुके थे उसकी पूर्तिके लिये चंदा जमा करनेका कार्य किया। स्वामीजी चाहते थे कि पाटोदी हाउसके स्थानपर एक बड़ी इमारत ऐसी बनवा दी जाय जो देहलीकी सार्वजनिक सभाओंके काम आवे

और साथ ही इसमें कांग्रेस आदि राष्ट्रीय सभाओंके दफ्तर भी स्थायी रूपसे रहें। इस इमारतका नाम कोई ऐसा रखा जाय जो देहलीके संवत १९७६ के शहीदोंका स्मारक हो। परन्तु स्वामीजीके अतिरिक्त इस फण्डके जितने ट्रष्टी बनाये गये थे उनमेंसे किसीके भी इस ओर ध्यान न देनेके कारण यह काम स्वामीजीकी इच्छानुसार न हो सका।

देहलीके शहीदोंकी यादगारकी भांति अमृतसरके शहीदोंकी यादगारके लिये अमृतसरमें भी कांग्रेस जलियांवाला बागकी जमीन मोल लेनेका निश्चय कर चुकी थी। स्वामीजी इस यादगारकी पूर्तिकी भी अपने पर खास जिम्मेवारी समझते थे। इसके लिये भी उन्होंने अपील की। यद्यपि अपीलका पूरा रुपया वहां भी जमा नहीं हुआ तथापि जलियांवाला बागकी जमीन मोल लेनेके लिये पर्याप्त रुपया मिल गया था। उससे जमीन मोल ले कर वहां एक छोटीसी फुलवारी बना दी गयी और वह स्थान सब सार्वजनिक सभाओंके लिये खुला कर दिया गया।

दूसरा काम देहलीमें रहते हुए स्वामीजीने इन दिनों अछूतोद्धारका आरम्भ किया। देहलीके आस पासके गांवोंमें चमारोंकी बड़ी बड़ी बस्तियां एक ओर ईसाइयोंका शिकार हो रही थीं और दूसरी ओर मुसलमान इनको हड़पनेकी कोशिश कर रहे थे। इन चमारोंकी सामाजिक दशा बहुत ही गिरी हुई थी। स्वामीजीने अपनी ओरसे कुछ कार्यकर्त्ता नियत करके इन लोगोंकी अवस्था सुधारनेका यत्न किया। इनके लिये कई स्थानोंपर कुओंसे पानी

भरनेकी रुकावट दूर करवायी और ग्रामोंमें पाठशालायें खुलवायीं परन्तु केवल ईसाई और मुसलमान ही नहीं, सरकार भी इन चमारोंकी हितचिन्तक होनेका दावा करके इनमें राष्ट्रीय आन्दोलनके विरुद्ध भाव भरनेके लिये नाना प्रकारसे यत्न कर रही थी। इस कारण स्वामीजीके कार्यकर्त्ताओंको जहां एक ओर ईसाइयोंसे मुकाबला करना पड़ता था वहां दूसरी ओर पुलिस भी उनके रास्तेमें अनेक विघ्न उपस्थित करती थी। परन्तु स्वामीजी शांतिपूर्वक इस कार्यको किये जा रहे थे। इस कार्यके विषयमें इस समय तक उन्होंने समाचारपत्रोंमें विशेष नहीं लिखा था।

तीसरा कार्य जो इस समय स्वामीजीने फिर आरम्भ किया वह हिन्दू महासभाके सङ्गठनको दृढ़ करनेका था। इन दिनों कुछ हिन्दू नेताओंने मुसलमानोंको खिलाफतके नाम पर सङ्गठित और जागृत होते देखकर यह विचार उठाया कि यदि हिन्दुओंको भी गो-रक्षा आदिके प्रश्नोंपर सङ्गठित किया जा सके तो वे देशके राष्ट्रीय कार्यमें विशेष उपयोगी हो सकेंगे। इसी प्रयोजनसे संवत् १९७८ के मार्गशीर्ष (नवम्बर सन् १९२१) में देहलीमें हिन्दू महासभाका एक विशेषाधिवेशन भी किया गया था। हकीम अजमल खां उसके स्वागताध्यक्ष बने थे। परन्तु वस्तुतः उसकी सफलताका सारा श्रेय स्वामी श्रद्धानन्दजीको ही था। इस अधिवेशनके अनन्तर पं० मदनमोहन मालवीयकी प्रेरणासे स्वामी श्रद्धानन्दजीने हिन्दू महासभाके संगठनका कार्य अपने ऊपर लिया और महासभाके नियम आदि छपवाकर बड़ी संख्यामें बंटवाये।

अहमदावाद कांग्रेस।

संवत १९७८ के पौष माससे पूर्व तक देशमें राष्ट्रीय आन्दोलनकी लहर खूब ज़ोर पकड़ चुकी थी। सरकारने घबराकर राष्ट्रीय स्वयं-सेवकोंके संगठन सरीखी शांत और सादी हल चल तक को खिसियाकर दबानेका यत्न किया था। हज़ारोंकी संख्या में देशवासियोंको राष्ट्रीय स्वयंसेवक मण्डलियोंमें शामिल होने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया था। इसी हलचलमें पं० मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु दास और लाला लाजपतराय आदि राष्ट्रीय नेता गिरफ़तार हो चुके थे। उधर अहमदाबादमें कांग्रेसकी बड़े पैमानेपर तैयारियां हो रही थी। जब कांग्रेसका समय समीप आया और देशमें इन नेताओंकी गिरफ़तारीका समाचार सुनाया गया तो प्रायः सबको सन्देह हो गया कि अहमदाबादकी कांग्रेस सफलतापूर्वक हो सकेगी या नहीं। परन्तु आम लोगों के सामने महात्माजीकी एक वर्षमें स्वराज्य दिला देनेकी प्रतिज्ञा थी। हज़ारों लोगोंका महात्माजीमें ऐसा विश्वास था कि वे सचमुच ही अब तक यह समझे बैठे थे कि एक वर्ष पूरा होनेमें चार दिन बाक़ी रह जाने पर भी महात्मा गान्धी स्वराज्य को आकाशसे टपका देंगे। इस लिये नेताओंके हृदयमें कुछ कुछ निराशा छा जाने पर भी लोग बड़ी संख्यामें अहमदाबाद पहुंचे। स्वामीजी भी अहमदाबाद इस आशासे गये थे कि अछूतोद्धारके कार्यके लिये कांग्रेससे कुछ विशेष सहायता प्राप्त करेंगे। अहमदाबादमें जितने लोग जमा हुए थे उतने उससे पहिले किसी

कांग्रेसमें नहीं आये थे। इस कारण वहां पर बहुतसे पेशावर अपराधियोंका पहुंच जाना भी स्वाभाविक था। महात्मा गाँधीके निर्देशसे स्वामीजीको अहमदाबादमें इन अपराधियोंका न्याय करनेका कार्य सौंपा गया। कांग्रेसके स्वयंसेवक जिन अपराधियोंको पकड़ते थे उन्हें न्याय-व्यवस्थाके लिये स्वामीजीके सामने लाते थे। स्वामीजीका न्याय भी विचित्र था। वह उन अपराधियोंसे अपराध स्वीकार करवा लेते थे और अपराधीको हृदयमें पश्चातापका प्रायश्चित्त करनेके लिये छोड़ देते थे। यह न्याय-व्यवस्था सुननेमें जैसी विचित्र प्रतीत होती है, इसका परिणाम भी वैसा ही विचित्र था। जिन अपराधियोंको उक्त दण्ड दिया जाता था वे दुबारा अपराध करते हुए नहीं पाये जाते थे। अहमदाबादमें यद्यपि स्वामीजीकी आशा पूर्ण नहीं हुई तथापि वहांसे वह उत्साहके साथ लौटे।

कांग्रेससे निराशा।

अहमदाबादसे वापिस आकर अभी कार्य आरम्भ किये हुए थोड़ा ही समय हुआ था कि महात्मा गान्धीने वह घातक भूलकी जो भारतके राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-संघर्षके इतिहासमें सदा एक काले धब्बेके समान चमकती रहेगी। उन्होंने पहिले तो बड़े जोशके साथ बारडोलीमें सत्याग्रह करनेकी घोषणा की, उसकी तैयारी के सम्बन्धको बड़ी बड़ी सूचनायें अपने पत्र 'यंगइण्डिया' और 'नवजीवन'में प्रकाशित कीं और वाइसरायको बड़ी ऊंची ऊंची चुनौतियोंके खरीते (अलटीमेटम) लिखे, परन्तु अन्तमें ठीक

समय पर अहिंसाके काल्पनिक और उद्देश्यघातक विचारमें पड़ कर केवल बारडोलीमें ही पीछे कदम नहीं हटा लिया, प्रत्युत देश भरके आन्दोलनको रोककर बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। इस से नौकरशाहीका साहस अत्यन्त अधिक बढ़ गया। उसने महात्मा गान्धीकी इस हरकतका अर्थ यह लगाया कि अब महात्मा गान्धीको भी गिरफ्तार किया जा सकता है। इधर नौकरशाहीका तो इस प्रकार साहस बढ़ा और उधर देशका ध्यान राष्ट्रीय संघर्षकी ओरसे हट जानेके कारण और खिलाफतके मामलेमें महात्मा गांधीके भ्रम-पूर्ण नेतृत्वके कारण मुसलमानोंमें साम्प्रदायिकताके जोशने लहर मारी। उन्होंने स्थान स्थानपर हिन्दुओंके धार्मिक कार्योंमें विघ्न डालना और उनके धार्मिक भावोंको ठेस पहुंचाना शुरु कर दिया। ऐसे ऐसे दीवाने और नालायक मुल्ला मौलवी जिनको पहिले कोई टके सेर भी नहीं पूंछता था महात्मा गांधीकी खिलाफतकी तरफदारीसे राजनीतिके गुरु और देशके नेता बन बैठे। इन लोगोंको इस निष्कर्मण्यताके समय में अपने मजहबी अन्धेपनका गुबार उड़ानेको अच्छा अवसर मिल गया। ये लोग समझने लगे कि महात्मा गांधी और कांग्रसका तमाम आन्दोलन हिन्दुस्तानको अरबिस्तान बनानेके लिये ही हुआ था। बस, इन मुल्लाओंके अन्धे दीवानेपनका नमूना मलाबारके दङ्गेके रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। इस दंगेसे और विशेषतः इसके सम्बन्धमें महात्मा गांधीके मुसलमानोंकी हिमायत करनेसे बहुतसे हिन्दू विचारकोंके दिलको बड़ी

चोट पहुंची, जिनमें स्वामी श्रद्धानन्दजी भी थे। इस घटनाने उनको महात्मा गान्धीके आन्दोलनके प्रति उदासीन बना दिया।

जब बारडोलीका सत्याग्रह बन्द हो गया, महात्मा गांधीकी सफलता-विनाशिनी नीतिपर चलनेके कारण देश भरमें लोगोंने ब्रिटिश नौकरशाहीका विरोध करना छोड़ दिया, नौकरशाहीका दुःसाहस दुगना और चौगना हो गया और स्वयं महात्मा गांधी भी जेलमें ठूंस दिये गये तब जनता और समाचार-पत्रोंको पुकार पर कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितिने एक सत्याग्रह जांच कमिटी इस बातकी जांच करनेके लिये बिठायी कि देशमें इस समय सत्याग्रह हो सकता है या नहीं। इस कमिटीने देशमें घूमकर जांच की और अपनी रिपोर्टमें लिखा कि देश अभी सत्याग्रह के लिये तैयार नहीं है, इस कारण राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंको अछूतोद्धार आदि विधायक कार्यक्रमपर विशेष बल देना चाहिये, क्योंकि इस कार्यक्रमकी पूर्तिपर ही देश सत्याग्रहके लिये तैयार समझा जा सकेगा। महात्मा गांधी भी जेलमें जानेसे पूर्व विधायक कार्यक्रम पर ज़ोर दे गये थे। इस लिये कार्यकारिणी समितिने खद्दर-प्रचारके कामके लिये कांग्रेस फण्डमेंसे एक बड़ी रकम अलग करके सेठ जमनालाल बजाज और शंकरलाल बेंकर को सौंप दी। स्वामी श्रद्धानन्दजीको आशा थी कि जब कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति इस प्रकार पक्के पायेपर विधायक कार्यक्रमको अमलमें लाने लगी है तो वह अछूतोद्धार सरीखे आवश्यक कार्यके लिये भी कुछ धन अलग रखेगी। इसी

आशयका एक पत्र उन्होंने कार्यकारिणी समितिके प्रमुख पुरुषों को लिखा भी था। परन्तु उसका कुछ फल न निकला। कांग्रेसकी इस उपेक्षाके कारण स्वामीजीकी उदासीनता निराशा में परिणत हो गयी और उन्होने समाचारपत्रों द्वारा कांग्रेसके विषय में अपने स्पष्ट मतकी घोषणा करके यह भी प्रकाशित कर दिया कि अब मैं स्वतंत्र रूपसे अछूतोद्धारका कार्य आरम्भ करूंगा।

सिक्खोंके लिये जेल यात्रा।

कांग्रेससे निराश होकर स्वामीजीने स्वतन्त्र रूपसे अछूतोद्धारके कार्यको हाथमें लिया ही था कि पंजाबमें सिक्खोंका गुरु-का-बाग वाला सत्याग्रह आरम्भ हो गया। अमृतसरके नजदीक ही एक स्थान गुरुका-बाग नामका है। वह पहिले एक उदासी महन्त के आधीन था। सिक्खोंका दावा था कि यह स्थान सिक्ख पन्थका है और महन्त केवल एक रक्षक पहरेदार के समान है। इसके विरुद्ध महन्त उसे अपनी निजी सम्पत्ति बतलाता था। यह झगड़ा खड़ा होने पर महन्तने सिक्खोंको गुरुके लंगर (मुफ्त भोजन-भण्डार) के लिये वहांसे लकड़ी काटनेसे मना कर दिया और जब सिख उसकी बात न मानकर जबरदस्ती लकड़ी काटने लगे तब महन्तने पुलीसकी सहायता ली। पूंजीपतियों की पुलीसने भी वास्तविक अधिकार किसका है इसको जांच किये बिना महन्तका पक्ष लिया और सिखोंको वहां लकड़ी काटनेसे रोका। परन्तु धर्मके लिये निछावर हो जाने वाले सिख अड़ गये और सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। पहिले तो पुलीस सिखोंको

गिरफ्तार करने लगी, परन्तु जब गिरफ्तारियोंसे सत्याग्रहियोंकी संख्यामें कोई कमी न आयी तो उसने कई क्रूर पठानोंको वहां तैनात करके उनसे सत्याग्रहियोंको पिटवाना आरम्भ किया। नित्य पचासियों सिख लाठियोंसे पीटे जाते थे और नित्य ही नये नये जथे (मंडलियां) सत्याग्रहके लिये पहुंच जाते थे। ब्रिटिश नौकरशाहीके इन पशुता भरे जुल्मोंसे देश भरमें सनसनी फल गयी। चारों ओरसे सिखोंके प्रति सहानुभूति और सहायताके समाचार आने लगे। स्वामी श्रद्धानन्दजी भी अपनी आंखोंसे सब कुछ देखकर आवश्यकता पड़ने पर सत्याग्रहमें सहायता देने के विचार से अमृतसर पहुंचे। परन्तु इनका अमृतसर जाना ही ब्रिटिश नौकरशाहीके बड़े भयका कारण हो गया। शायद ब्रिटिश नौकरशाहीको, स्वामीजीने संवत १९७६ में देहली और पञ्जाबमें जो काम किया था, वह याद आगया और उसे भय हुआ कि यदि कहीं स्वामीजीने सिक्खोंका नेतृत्व स्वीकार कर लिया तो हमें मुंह छिपानेको जगह न मिलेगा। फल यह हुआ कि स्वामीजी अमृतसर पहुंचनेपर विना कुछ कार्य किये ही गिरफ्तार कर लिये गये और न्यायालयके नाटकके अनन्तर उन्हे भाद्रपद संवत् १९७९ में (ता० १० सितम्बर सन १९२२ को) एक वर्षके लिये जेल में बन्द कर दिया गया। कुछ समय तो अमृतसर की ही जेलमें रखा गया और बादको वह चुप चाप मोटरमें बैठा-कर मिण्टगुमरी ले जाये गये और फिर अंततक बाबा गुरुदत्त-सिंह आदि सहित वहीं की सेंट्रल जेलमें रहे। जेलमें स्वामीजी

का अधिकतर समय धार्मिक स्वाध्याय और कैदियोंको इकट्ठा करके धर्मोपदेश देनेमें बीतता था। अपनी आत्मजीवनी 'कल्याण मार्गका पथिक' का बहुतसा भाग उन्होंने निएटगुमरी जेलमें ही लिखा था।

कार्तिक संवत १९७९ में सर गङ्गारामकी सहायतासे ब्रिटिश नौकरशाहीको अपनी मूर्खता पर परदा डालनेका अवसर मिल गया। सर गङ्गारामने गुरु-का-बागकी जमीनको महन्तसे एक वर्षके ठेकेपर ले लिया और सिखोंको उसमेंसे लकड़ियां काटनेकी खुली छुट्टी दे दी। इससे सिखोंका सत्याग्रह बन्द हो गया और नौकरशाहीको मुंह छिपानेकी जगह मिल गयी। मार्गशीर्षके अन्त में गुरु-का-बागके सम्बन्धमें जितने आदमी कैद हुए थे उनको छोड़ दिया गया अतः स्वामीजी भी एक वर्षकी कैद पूर्ण करनेके पूर्व ही (२६ दिसम्बर सन १९२२ को) जेलसे मुक्त हो गये। जेलसे छूटकर स्वामीजीने अपने जेलके अनुभवोंको एक छोटीसी पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित करवाया था, जो बहुत ही मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है।

सोलहवां अध्याय।

शुद्धि अछूतोद्धार और हिंदू सङ्गठन
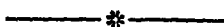
अछूतोद्धार का कार्य तो स्वामीजी कई वर्ष पूर्व ही आरम्भ कर चुके थे और संवत् १९७८ के मध्यसे उन्होंने किसी संस्थाकी सहायताकी अपेक्षा न करके इसे स्वतंत्र रूपसे करनेका निश्चय भी कर लिया था, परन्तु इस वर्षकी घटनाओंने उन्हें शुद्धि और हिन्दू संगठनका कार्य पूर्ण बलसे हाथमें लेनेके लिये प्रेरित किया मलाबारके मोपला उपद्रवका परिणाम जानकर स्वामीजी महात्मा गान्धीकी नीतिसे उदासीन हो गये थे। जब उसी वर्ष सहारनपुर और मुलतान आदि अन्य भी दो तीन स्थानोंमें मुसलमानोंने हिन्दुओंपर धार्मिक मदान्धता-पूर्ण अत्याचार किये तब स्वामीजीने हिन्दू जातिको समर्थ और बलवान बनानेका मनमें दृढ़ संकल्प कर लिया। इस विषयपर विचार करनेसे उन्हें सबसे प्रथम शुद्धि और सङ्गठनकी बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई। संगठनका अर्थ स्वामीजी अखाड़े खोलकर कुश्तियाँ लड़ना अथवा अछूतोंको दुर दुर करते हुए उन्हें रामायणकी कथा सुनाकर धर्मोपदेश देना अथवा स्वयं व्यभिचार और बहु-विवाह के कीच-

डुमें लोटते हुए विधवाओंको ब्रह्मचर्य पालन करनेकी शिक्षा देना नहीं समझते थे। स्वामीजीने अनुभव किया था कि हिन्दू जाति हजारों लाखों जात पाँतके झंझटों, चूल्हा-चौकोंकी छूत-छातों, स्त्रियोंके प्रति क्रूर अन्यायों और घृणित स्वार्थपूर्ण सामाजिक असमानताओंके ही कारण निर्बल, असंगठित और टुकड़ा टुकड़ा हो रही है। यही कारण है कि वह संगठन पर भाषण करते हुए अछूतोद्धार, ब्रह्मचर्य और स्त्री शिक्षा आदि पर विशेष बल दिया करते थे।

शुद्धिकी आवश्यकता स्पष्ट हो थी। देहलीके आस पासके स्थानोंमें अछूतोद्धारका कार्य करते हुए स्वामीजी देख चुके थे कि किस प्रकार अनजान चमार आदि अछूत हिन्दुओंके सामाजिक अन्यायों और अत्याचारोंके कारण ईसाई मुसलमानोंके चङ्गुलमें फंस जाते हैं। जब सन १६२१ की मनुष्य गणनाकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई तब उसके अध्ययनसे भी स्वामीजीको पतालगा कि पिछले वर्षोंमें हिन्दुओंकी संख्या क्रमशः लगातार कम होती चली जा रही है और ईसाई मुसलमानोंकी बढ़ती जा रही है। इसी वर्ष (पौष संवत् १९७६ में) आगरामें राजपूत क्षत्रियोंकी जो सभा हुई उसमें हिन्दू नेताओंका ध्यान आगराके आस पास लाखोंकी संख्यामें बसनेवाले उन नौमुसलिम राजपूतोंको शुद्ध करनेकी ओर आकृष्ट किया गया जो नाममात्रको मुसलमान कहलाते थे, परन्तु वस्तुतः अपने आचार विचार आदिमें पूरे हिंदू थे और राजपूत बिरादरीमें फिरसे सम्मिलित होनेके लिये भी उत्सुक

थे। राजपूत क्षत्रिय महासभामें इस विषय पर पहिले भी दो तीन बार विचार हुआ था, परन्तु किसी योग्य नेता और मार्ग-दर्शकके न मिलनेके कारण यह विचार अमलमें नहीं आया था।

भारतीय शुद्धि सभाकी स्थापना।

संवत १९७९ में राजपूत क्षत्रिय सभाने स्वामी श्रद्धानन्दजी का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। वहाँ देरका नाम भी न था। स्वामीजी तुरन्त आगरा गये। स्वयं नौ मुसलिम राजपूतोंके विषयमें सब कुछ जाना और विश्वास हो जानेपर सब सम्प्रदायोंके हिन्दू नेताओंको सम्मिलित करके माघ मासमें भारतीय हिन्दू शुद्धि सभाकी नींव रख दी। पत्रोंमें धनके लिये अपील की गयी। कार्यारम्भ करनेके लिये धन भी यथेष्ट मिल गया। कार्य आरम्भ हो गया। जहाँ स्वामी श्रद्धानन्द नेता हों वहाँ कार्यमें सुस्ती कैसी? नौमुसलिमोंके ग्राम पर ग्राम शुद्ध हो होकर हिन्दू धर्मकी शरणमें आने लगे। ज्यों ज्यों शुद्धिका जोर बढ़ने लगा त्यों त्यों मुसलमान मुल्ला मौलवियोंमें खलबली मचने लगी। स्वामीजीका मुक़ाबला करनेको मुसलमानोंकी ओरसे अपनी नीचता, पिशुनता और कुत्सित वृत्तियोंके लिये बदनाम ख्वाजा हसन निजामी मैदानमें उतरा। इसने हैदराबाद निजाम आदि मुसलमान राजाओं सिन्धके जमींदार रईसों और गुजरात बम्बईके मालदार व्यापारियोंसे बहुत सा रुपया बटोर कर; लोगोंकी नीच वृत्तियोंको अपील करके सस्ती नामवरी हासिल करनेके लिये एक षडयंत्र रचना चाहा था, जिसके अनुसार यह लोगोंके घरू नौकरों, चूडो आदि

बेचने वाले फेरीवालों, भिश्तियों, फकीरों और रण्डियों तक से इसलाम फैलाने का काम लेना चाहता था। परन्तु इसका भण्डा जल्दी फूट गया और स्वामीजीने कई छोटे पैमफलेट लिखकर इस की पोल जनताके सामने अच्छी तरह खोल कर रख दी। तभी से यह स्वामीजीको विशेष विषभरी नजरसे देखने लगा था। ख्वाजा हसन निजामीके सिवाय आगाखां आदिने भी अपने प्रचारकों की संख्या बढ़ा दी। आगाखां को धनकी तो कमी थी हो नहीं। उसने हिन्दुस्थानमें अनेक स्थानों पर अपने प्रचारक भेजे आगरा, मथुरा, बुलन्दशहर और अलीगढ़ आदि जिलोंके गांव गांवमें मुल्ला मौलवी इसलामका प्रचार करते हुए घूमने लगे। परन्तु शुद्धि आन्दोलन मुल्ला मौलवियोंके रोके नहीं रुका। प्रत्युत आगराकी भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा स्वामी श्रद्धानन्दजीकी योग्य अध्यक्षतामें दिन-ब-दिन अपने कार्यका क्षेत्र बढ़ाती ही चली गयी कई स्थानों पर स्वामीजीने स्वयं जाकर शुद्धि करायी और शुद्ध हुए राजपूतोंके साथ एक पंक्तिमें उन्होंके हाथका परोसा हुआ भोजन करके हिन्दू जनताको उत्साहित किया। इसका फल यह निकला कि जो नौमुसलिम राजपूत शुद्ध होते गये उनको हिन्दू राजपूत अपनी बिरादरीमें भी मिलाते गये. उनसे रोटी बेटीका व्यवहार होने लगा और मुसलमान मौलवियोंके प्रलोभन नौमुसलिमोंको अपने धर्मसे विचलित करनेमें सफल न हुए।

संगठनके लिये दौरा।

शुद्धिका कार्य आरम्भ करके स्वामीजीको हिन्दू जातिका

शाहपुराधीशजी सहित स्वामी श्रद्धानन्दजीका शुद्ध हुए मलकानोंके साथ सहभोज

ध्यान संगठनकी ओर दिलानेकी चिन्ता हुई इसलिये श्रावण और भाद्रपद संवत १६८० में उन्होंने सारे संयुक्त प्रान्त और पंजावका एक दौरा करके हिन्दुओंको शुद्धि और संगठनका सन्देश सुनाया इसी वर्ष कार्तिक मासमें काशीमें हिन्दू महासभाके विशेष अधिवेशनकी बड़ी धूम धामसे तैयारियां हो रही थीं। स्वामीजीने सब हिन्दुओंको उसमें सम्मिलित होनेका निमंत्रण दिया और स्वयं भी उसकी कार्यवाहीमें भाग लिया। परन्तु महासभा काशी में होनेके कारण, हिंदू समाजकी प्रगतिके शरीरके गलेमें भारी पत्थरके समान लटकते हुए, व्यवहार ज्ञान-शून्य निरर्थक गाल बजानेमें शूर 'पण्डितों'ने बड़ा विघ्न उपस्थित किया। ये लोग अछूतोद्धार तकका प्रश्न हिंदू महासभामें पेश नहीं होने देना चाहते थे। अन्तको पण्डित मालवीयके बहुत लल्लो चप्पो और खुशामद करने पर ये पण्डित लोग अछूतोद्धार पर विचार करने को तैयार हुए परन्तु इस विषयका प्रस्ताव ऐसी विकृत दशा में पास किया गया जिसका पास होना न होना बराबर था। स्वामीजीको जहां अपने दौरेमें बड़ी सफलता हुई और उनको उससे कुछ कार्य होनेकी आशा बन्धी, वहाँ हिंदू महासभाके काशी अधिवेशनसे उनको बड़ा दुःख हुआ।

दलितोद्धार सभा [देहली]

पहिले लिखा जा चुका है कि यद्यपि अछूतोद्धार हिंदू सङ्गठन का ही एक अंग है तथापि आजकल शुद्धि और संगठन जिस रूपमें किये जा रहे हैं उनमें भाग लेनेकी अपेक्षा स्वामी श्रद्धानन्द-

जीका अछूतोद्धारका कार्य ही अधिक प्रिय था। गुरुकुल कांगड़ी खोलनेसे पूव भी स्वामीजीने (महात्मा मुंशीरामजीने) पंजाबकी मेघ और रहतिया नामकी नीच जातियोंमेंसे हजारोंको वैदिक धर्मकी शरणमें लाकर उनकी स्थितिको ऊंचा बनाया था। इस कार्यको करते हुए उनको सिखों आदि कई सम्प्रदायोंके विरोध का भी प्रबल सामना करना पड़ा था। गुरुकुलमें रहते हुए वह यद्यपि इस कार्यको बहुत समय नहीं दे सकते थे तथापि आस पासके ग्रामोंमें पाठशालायें स्थापित करवाकर और उनको मुफ्त औषधि आदि दिलवाकर चमारों आदि अछूतोंकी सहायता करते रहते थे। जबसे वह गुरुकुल छोड़कर देहली गये तबसे उन्होंने इस कायको विशेष रूपसे अपने हाथ में ले लिया। स्वामीजीको अछूतोंसे इतना प्रेम था कि वह उनको अछूत अर्थात् अस्पृश्य कहना भी बुरा समझते थे। वह उनके लिये दलित (अर्थात् हिंदू जाति द्वारा पांवसे कुचले हुए) शब्दका प्रयोग किया करते थे। इस एक शब्दसे ही दलितोंके प्रति स्वामीजीके दयाभावका परिचय मिल जाता है। जब स्वामीजीने अछूतोद्धारके साथ साथ ही शुद्धि और संगठनका काय भी जारी कर दिया तब मज़हबी लीडर कहानेवाले मुल्ला मौलवी तो बहुत चिढ़े ही थे, परन्तु अब राष्ट्रीयताकी नक़ाब ओढ़नेवाले मौलाना भी ज्यादा नहीं रुक सके। संन १६८० में कोकनाडा कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे मौलाना मोहम्मदअलीने यह नयी और बेतुकी आवाज उठायी कि अछूतोंका प्रश्न सुलझानेके लिये उत्तम यह होगा कि

हिंदू और मुसलमान उनको आधा आधा बांट लें। स्वामी श्रद्धानन्दजीने इसका प्रबल विरोध किया और अपने दलितोद्धार के कार्यको अधिक व्यवस्थित रूपसे चलानेके लिये देहलीमें दलितोद्धार सभाकी स्थापना की। इस सभाका नाम यद्यपि देहली से बाहरके लोगोंको बहुत नहीं सुन पड़ा, परन्तु देहली प्रांतमें यह सभा बड़ा उपयोगी कार्य कर चुकी है और अब भी कर रही है। इसके संस्थापक और अध्यक्ष तो स्वामीजी स्वयं थे, परन्तु स्वामीजीके जामाता डा० सुखदेवजीने भी प्रसिद्धिकी इच्छा न रखते हुए इस सभाका बड़ा कार्य किया है। सच कहा जाय तो डा० सुखदेवजी अपना जीवन ही दलितोद्धारके कार्यके लिये समर्पित कर चुके हैं। सभाकी ओरसे कई उपदेशक दलित भाइयोंमें जागृति फैलानेका कार्यकर रहे हैं, बहुतसे ग्रामोंमें दलित बालकों के लिये पाठशालायें खोली गयी हैं. उनको स्वास्थ्य और सफ़ाईकी शिक्षा दी गयी है और इस सभाके यत्नसे ही हजारों चमारों आदियोंने मुर्दोंका मांस खाना और शराब पीना आदि बुरी आदतोंको त्याग दिया है। अब यद्यपि इस सभाके ऊपरसे स्वामीजी का हाथ उठ गया है तथापि हमारा विश्वास है कि जिन लोगोंके हाथमें इस सभाके सूत्र हैं वे स्वामीजीके कार्यको योग्यता पूर्वक आगे बढ़ाये जायंगे।

शुद्धि सभासे त्यागपत्र।

स्वामी श्रद्धानन्दजीने आगराकी भारतीय हिंदू शुद्धि सभामें सब सम्प्रदायोंके हिंदुओंको सम्मिलित तो इस विचारसे किया था

कि यह हिंदू मात्रका कार्य है और यदि सब हिंदुओंकी इस कार्य से सहानुभूति हो जायगी तो कार्य अधिक सफलतासे हो सकेगा परन्तु हुआ उलटा ही। समयको और परिस्थितिको न समझने वाले बहुतसे अंधविश्वासी हिंदुओंने शुद्धिके मामलेमें भी आर्य-समाजी और सनातन धर्मोका प्रश्न उठाकर बखेड़ा खड़ा करना आरम्भ किया। स्वामीजीने इन बखेड़ोंमें पड़ना उचित न समझा और शुद्धिके कार्यको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे इस विचार से सभापतिपदसे त्यागपत्र देकर स्वयं ही सभासे अलग हो गये परन्तु स्वामीजीके अलग होते ही सभामें वह जीवन न रहा जो उनके सभापतित्वके एक डेढ़ वर्ष तक था। इस लिये संवत १९८२ के अन्तमें उनसे फिर यह कार्य सम्भालनेकी प्रार्थना की गयी। सेवाके लिये सदा उद्यत स्वामीजीने इस पदको फिर सम्भाल लिया था और सभाका कार्यालय देहलीमें लाकर कार्य आरम्भ भी कर दिया था, परन्तु भारत-दुर्दैवने कुछ मास बाद ही उनको संसार से उठा लिया।

हिन्दू मुसलिम एकताका यत्न।

महात्मा गांधी द्वारा ख़िलाफ़तकी झूठी और कमज़ोर बुनियादपर क़ायम की हुई हिन्दू मुसलिम एकता मुसलमान मौलवियोंका सच्चा रूप प्रकट हो जानेपर सं० १९७९ विक्रमीमें टूट चुकी थी। संवत १९८० में हिन्दू भी जागृत होकर अपने सामाजिक अधिकारोंकी रक्षार्थ कटिबद्ध हो गये थे। इस कारण इस वर्ष (संवत १९८० में) देशके अनेक स्थानोंमें कई हिन्दू मुसलिम

दंगे हो गये। देहली कई सप्ताह तक इन दंगोंकी रङ्गभूमि बना रहा। संवत १९८१ की बकरीदपर देहलीमें जो बड़ा दङ्गा हुआ उसके समय महात्मा गांधी भी वहीं थे। उन्होंने अपने से और कुछ न होता देखकर २१ दिन तक उपवास रखनेका व्रत किया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ख़राब था। ऐसी अवस्थामें उनके २१ दिनका उपवास रखनेके व्रतसे उनके हित-चिंतकोंको बड़ी चिंता हुई। स्वामी श्रद्धानन्दजीने, महात्माजीकी चिंता को कम करने के लिये ही तुरंत ही देश भरके सब हिंदू और मुसलमान नेताओं को देहली बुलाया ताकि वे मिलकर हिन्दू मुसलिम एकताके उपायोंपर विचार करें। एक सप्ताहके भीतर ही भीतर इस कानफ्रेन्सकी आयोजना की गयी और अभी तक इस देशमें हिंदू मुसलिम एकताके प्रश्नपर विचार करनेके लिये जितनी सभा सोसाइटियां या कानफरेंसें की गयी हैं उन सबमें इस कानफ्रेंस को अधिक सफल समझा गया था। इस एकता कानफ्रेंसमें जो जो निर्णय हुए थे उनको अभी तक कई हिन्दू और मुसलमान नेता विवादास्पद प्रश्नोंको सुलझानेमें प्रमाण रूपसे माना करते हैं।

जो मुसलमान स्वामी श्रद्धानन्दजी पर मुसलिम-विरोधी होने का दोषारोपण करते हैं उनको इस कानफरेंसकी कार्रवाई विस्तारसे पढ़नी चाहिये। केवल इतना ही नहीं, इस कानफरेंस के अवसर पर जब स्वामीजी से शुद्धिका कार्य बन्द करनेका अनुरोध किया गया तब स्वामीजीने बड़ी प्रसन्नता से ऐसा करना स्वीकार कर लिया था। उनकी शर्त केवल एक थी और वह

यह थी कि दूसरी और मुसलमान भी अपना तबलीग का काम बन्द कर दें। मुसलमान मौलवियोंकी ओरसे उक्त प्रकार का वचन न मिलने पर भी इस कानफरेंसके कई मास बाद तक स्वामीजीने स्वयं शुद्धिका कार्य नहीं किया। परन्तु जब मौलवी लोग बहुत गड़बड़ मचाने लगे तब विवश हो उनको फिर शुद्धिका काम हाथ में लेना पड़ा।

उर्दू दैनिक 'तेज'।

जिस समय स्वामीजीने आगरेमें शुद्धि सभाको स्थापना की थी, उसी समय अपने विचारोंके प्रचार और शुद्धि व संगठनके आन्दोलनके लिये उनको एक नया पत्र निकालनेकी आवश्यकता का अनुभव हुआ था। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये उन्होंने देहलीसे 'तेज' नामका उर्दू दैनिक पत्र निकाला था। कुछ समय तक तो यह पत्र स्वामीजी स्वयं चलाते रहे और बादको इसके प्रबन्ध आदि के लिये एक कमिटी बनाकर स्वामीजो ने इस पत्र की सारी जिम्मेवारी इस कमिटीको सौंप दी थी; आज कल भी यह पत्र उसी कमिटीकी देखरेखमें चल रहा है। आपने तीन साढ़े तीन वर्षके अल्प जीवन-कालमें ही 'तेज' हिन्दू जाति की प्रशंसनीय सेवा कर चुका है।

दक्षिण भारतमें वैदिक धर्म प्रचार।

संवत १९७७ के भाद्रपदमें स्वामी श्रद्धानन्दजी कलकत्ताकी विशेष कांग्रेसमें विशेष इस प्रयोजन से सम्मिलित हुए थे कि

अछूतोद्धारको कांग्रेसके कार्यक्रमका अङ्ग बनवा दें। वहां उन्हें इस कार्यमें सफलता नहीं हो सकी। उसके बाद उसी वर्ष माघ में नागपुर कांग्रेसके अवसर पर उनकी यह इच्छा पूर्ण हो गयी नागपुरमें उनकी दक्षिण भारत के 'हिन्दू'-पत्र-सम्पादक श्री० कस्तूरीरंग ऐयंगर आदि नेताओंसे बात चीत हुई थी। इन लोगोंने स्वामीजीके अछूतोद्धार सम्बन्धी विचारोंको बहुत पसन्द किया था कारण, कि वह दक्षिण भारतकी ब्राह्मण अब्राह्मण समस्याकी बुराइयोंको जानते थे और स्वामीजी के विचार सुनकर उनको निश्चय हो गया था कि दक्षिण भारतकी उक्त समस्याको स्वामी जीही हल कर सकेंगे। श्री० कस्तूरीरंग ऐयंगरने तो स्वामीजी को उसी समय दक्षिण भारतमें आनेका निमंत्रण दिया था परंतु तब अपने कन्धोंपर गुरुकुल कांगड़ीका भार होनेके कारण स्वामीजी वैसा न कर सके और किसी अन्य अवसर पर श्रीयुत ऐयंगरका निमन्त्रण स्वीकार करनेका वचन दे आये। सम्वत १९७७ में स्वामीजी यद्यपि स्वयं मद्रासकी ओर नहीं जा सके तथापि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाके प्रधानकी हैसियतसे उन्होंने दो एक उपदेशकोंको दक्षिणमें वैदिक धर्म-प्रचारके लिये भेज दिया था। जब सम्वत १९८१ में स्वामीजी मद्रास गये तब इन उपदेशकों के प्रयत्नसे वहांकी जमीन बहुत कुछ तैयार हो चुकी थी। बंगलौर, मदुरा, कोकनाड़ा, मंगलोर आदि स्थानों पर आर्यसमाजें स्थापित हो चुकी थीं, अब्राह्मणोंमें यह विचार फैल चुका था कि हिन्दू धर्ममें रहते हुए उनकी सामाजिक अत्याचा-

इसे यदि कोई रक्षा कर सकता है तो वह आर्य समाज है। अभी तक हिन्दू धर्ममें आश्रयका कोई स्थान न पाकर हजारोंकी संख्यामें अब्राह्मण लोग प्रति वर्ष ईसाई होते चले जा रहे थे। स्वामीजीको मिलकर ये सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु उस समय स्वामीजीके पास उन लोगोंकी इच्छा-पूर्तिके लिये पर्याप्त साधन न थे, इसलिये फिर एकवार उनके प्रान्तमें आनेका वचन देकर स्वामीजी वहांसे लौट आये।

वायकोम सत्याग्रह और "लिबरेटर"

इससे अगले वर्ष ही (संवत १९८२ में) कोचीन रियासतके वायकोम नामक स्थानमें अब्राह्मणोंकी ओरसे एक बड़े मन्दिरको आम सड़कों पर चल फिर सकनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिये सत्याग्रह शुरू हो गया। इसलिये स्वामीजी अधिक न ठहरकर उसी समय दक्षिण भारतके लिये रवाना हो गये। उन्होंने मलाबार, तामिलनाड और आन्ध्र तीनों प्रान्तोंमें दौरा लगाया। उनके भेजे हुए उपदेशक जो कार्य कर रहे थे उसका निरीक्षण करके उनका उत्साह बढ़ाया और उनको भावी कार्यके विषयमें हिदायतें दीं। वायकोममें जाकर उन्होंने सत्याग्रहकी परिस्थिति स्वयं देखी और सत्याग्रहियोंको आर्थिक सहायता भी दी। इस वार स्वामीजी दक्षिण भारतसे बड़ी आशाके साथ लौटे थे। एक वार तो उनके मनमें यहां तक आ गया था कि अपना केन्द्र-स्थान देहलीसे उठाकर दक्षिण भारतमें ही किसी स्थानको बनालें।

दक्षिण भारतकी इस वारकी यात्रामें स्वामीजीने इस बातको

अनुभव किया था कि देशके उस भागमें प्रचार करनेके लिये योग्य साहित्यकी बड़ी आवश्यकता है और यह साहित्य या तो अंग्रेजी भाषामें हो और या वहांकी प्रान्तिक भाषामें। प्रान्तिक भाषामें तो साहित्यकी सृष्टिका प्रश्न कठिन था, हाँ, अंग्रेजीमें जल्दी तैयारी हो सकती थी। इसलिये स्वामीजीने संवत् १९८३में "लिबरेटर" नामक साप्ताहिक-पत्र निकालना आरम्भ किया था। परन्तु इसको आरम्भ करनेके कुछ मास बाद ही उन्होंने अपना मानव-शरीर त्याग दिया और दक्षिण भारतके कार्यका भी उनका स्वप्न अधूरा ही रह गया।

कन्या गुरुकुलकी स्थापना

स्वामी श्रद्धानन्दजीके सार्वजनिक कार्य यों तो अनेक हैं परन्तु इस लेखको समाप्त करनेसे पूर्व कन्या गुरुकुलके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। बालकोंके गुरुकुलके समान ही एक कन्या गुरुकुल खोलनेकी स्वामीजीकी बहुत देरसे इच्छा थी, परन्तु कांगड़ी गुरुकुलसे अवकाश न मिलनेके कारण स्वामीजी वैसा नहीं कर सकते थे। संवत् १९७५ के गुरुकुल कांगड़ीके वार्षिकोत्सव पर स्वामीजीके परम भक्त स्व० सेठ रघूमलने कन्या गुरुकुल खोलनेके लिये एक लाख रुपया दान करनेका वचन दिया। इस दानके कारण आशा हुई थी कि अब कन्या गुरुकुल शीघ्र ही खुलेगा। परन्तु उससे अगले वर्ष ही स्वामीजीके संन्यास ले लेनेके कारण यह कार्य पीछे पड़ गया। एक दूसरा कारण इस प्रश्नके पीछे पड़ जानेका

यह हुआ कि स्वामीजी चाहते थे कि कन्या गुरुकुलकी स्वामिनी सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभाको बनाया जाय और अन्य कई आर्यसमाजी कन्या गुरुकुल भी आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाबको ही सौंपना चाहते थे। स्वामीजीने कन्या गुरुकुल खोलनेके लिये देहली शहरसे १०।१२ मीलकी दूरी पर जमीन भी ठीक कर ली थी परन्तु स्वामिनी सभाके विवादास्पद प्रश्नके कारण इसका आरम्भ पीछे पड़ गया। वस्तुतः सार्वदेशिक आर्य्य-प्रतिनिधि सभाके स्थापनका भी सारा श्रेय स्वामी श्रद्धानन्दजी को ही था। उन्होंने बड़ी बड़ी आशाओंके साथ इस सभाका संयोजन इस लिये किया था कि देशकी सब आर्यसमाजोंका और उनके कार्योंका एक सार्वदेशिक संगठन हो सके। इसी प्रयोजनसे उन्होंने दक्षिण भारतमें वैदिक-धर्मका प्रचार आदि कई कार्य्य सार्वदेशिक सभाके नाम पर ही आरम्भ किये थे और अब वह कन्या गुरुकुलको भी इस सभाके सुपुर्द इस कारण करना चाहते थे कि ऐसा करनेसे जहां इस सभाकी शक्ति बढ़ जायगी वहां कन्या गुरुकुलको भी सार्वदेशिक स्वरूप प्राप्त हो जानेसे सब प्रान्तोंके आर्य्य इसकी सहायता करेंगे। परन्तु अवस्थायें कुछ इसी प्रकारकी होती गयी कि स्वामीजीकी यह इच्छा पूर्ण न हुई। सार्वदेशिक सभाके पास धनका कोष पर्याप्त हो जाने पर भी अन्य आर्यसमाजियोंके साथ न देनेके कारण सार्वदेशिक सभाको वह स्थान प्राप्त न हो सका जो स्वामीजी उसे देना चाहते थे। तथापि सार्वदेशिक सभाकी इस

समय जो स्थिति हैं उसे बनानेमें, अधिक नहीं तो, ७५ फी सदी स्वामी श्रद्धानन्दजीका ही हाथ है। मथुरामें संवत १९८२ में श्रीमद्दयानन्द शताब्दीका जो महोत्सव हुआ था उसका प्रबन्ध आदि सार्वदेशिक सभाके अधीन करवानेमें भी स्वामी श्रद्धानन्द जीका ही हाथ था। और वस्तुतः सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रबन्ध होनेके कारण ही श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी उत्सवको इतनी सफलता प्राप्त हो सकी, अन्यथा उस कार्यमें भी प्रांतीयताका भाव घुस जानेके कारण उत्सव वैसी सफलतासे सम्पन्न न हो सकता।

अच्छा, तो हम कह कन्या गुरुकुलके विषयमें रहे थे। स्व० सेठ रघूमलने जो दान दिया था वह यद्यपि दिया स्वामी श्रद्धानन्द जीके व्यक्तित्वसे प्रभावित हो कर था, परन्तु स्वामीजीके संन्यासी हो जानेके अनन्तर उस धन-राशिका उपयोग आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जावके हाथोंमें आ गया। इस कारण स्वामी-जीकी इच्छाके विरुद्ध कन्या गुरुकुल आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाव के स्वामित्वमें देहली शहरमें खोला गया। परन्तु प्रबन्धकी व्यवस्था अपनी इच्छाके विरुद्ध होने पर भी स्वामीजी कन्या गुरु-कुलकी सहायतासे उदासीन नहीं हुए थे। प्रतिनिधि सभाकी प्रार्थना पर संवत् १९८० के आश्विन मासके अन्तमें (९ नवम्बर सन १९२३ को) देहली शहरमें उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे कन्या गुरुकुलकी नींव रखी थी।

कन्या गुरुकुलके सम्बन्धमें यह बात बड़े दुर्भाग्यकी है कि

इसके खुलनेके तीन वर्ष बाद ही इसके दोनों संस्थापक (स्वामी श्रद्धानन्द और सेठ रग्घूमल) अपनी इह लोककी लीला समाप्त कर गये और वे अपनी संस्थाको फलता फूलता न देख सके। सेठ रग्घूमलजी संवत १९८३ के भाद्र मासमें रोगी हुए और रोगारम्भके दो सप्ताहके भीतर ही उनका देहान्त हो गया। अपने रोग-कालमें उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दजीके दर्शन करना चाहा था और स्वामीजीको कलकत्ता पधारनेको उक्त समय पर तार भी दिया गया था परन्तु उनके कलकत्ता पहुंचनेसे पूर्व ही सेठ रग्घू-मलका प्राणान्त हो गया। सेठ रग्घूमल स्वामीजीके अनन्य भक्त थे। उन्होंने स्वामीजीके गुणों पर मोहित होकर ही कन्या गुरु-कुलको एक लाख रुपयेका दान दिया था, देहलीके पास इन्द्रप्रस्थ गुरुकुलके नामसे गुरुकुल विश्वविद्यालयकी शाखा खुलवायी थी और उनके देहलीमें आकर रहने पर उनको एक मकान मुफ्त दे दिया था। स्वामी श्रद्धानन्दजीके स्वर्गवासके अनन्तर सेठ रग्घू-मलके उत्तराधिकारियोंने यह मकान सार्वदेशिक सभाको दे दिया है और उक्त सभाने स्वामीजीके स्मारकमें इसका नाम श्रद्धानन्द मन्दिर रखकर इसमें अपना तथा शुद्धि सभाका दफ्तर खोल दिया है।

वीर संन्यासी श्रद्धानन्द—

स्वर्गीय सेठ रग्घूमलजी।

सतरहवां अध्याय

अन्तके दिन ।
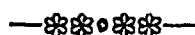
संवत् १९८३ के आरम्भ में स्वामी श्रद्धानन्दजीने भारतीय हिन्दू शुद्धि सभाका प्रधान बनना फिरसे स्वीकार कर लिया था और कार्यको भली भांति चलानेके लिये उन्होंने सभाका कार्यालय आगरेसे उठवा कर देहली ही बुलवा लिया था। शुद्धिके कार्यको नयी शक्ति प्रदान करनेके लिये उन्होंने इसी वर्ष वर्षा ऋतु में संयुक्त प्रान्तका एक दौड़ा भी आरम्भ किया था, परन्तु स्वास्थ्य बिगड़ जानेके कारण उन्हें लखनऊसे ही देहली वापिस चले जाना पड़ा।

असग़री बेगमकी शुद्धि।

यद्यपि स्वामीजी अब बुढापे और स्वास्थ्यकी निर्बलताके कारण दौरोंका काम अधिक नहीं कर सकते थे, तथापि देहली बैठे हुए ही वह इतना काम कर रहे थे कि शुद्धिके विरोधी दांत पीस पीसकर और हाथ मल मलकर रह जाते थे। चैत्रके मध्यमें (२५ मार्च सन् १९२६ को) उन्होंने एक ऐसी शुद्धि की जिससे मुसलिम जगत्में बड़ी हलचल मच गयी। अस-

ग़रो वेगम नामकी एक मुसलमान स्त्री अपने पुत्रों सहित स्वामीजीके पास आयी और उसने शुद्ध होकर हिन्दू बननेकी प्रार्थना की। इसने स्वामीजीको बतलाया कि मेरे माता पिता जातिके पठान हैं मैं देरसे हिन्दू धर्मके विषयमें पुस्तकें पढ़ती रही हूं और आपका नाम सुन कर बहुत दिनोंसे आपके चरणोंमें उपस्थित होनेकी इच्छा रखती थी, परन्तु अपने पति आदिके बन्धनोंके कारण अब तक वैसा न कर सकी थी। इस महिलाको शुद्ध करके इसका नाम शान्तिदेवी रखा गया और इसने स्वामीजीको अपने धर्मपिता रूपमें स्वीकार किया। शुद्ध हो जानेके अनन्तर कई मुल्ला मौलवियोंने एकांतमें ले जाकर शान्तिदेवीको समझा कर फिरसे मुसलमान बनाना चाहा, परन्तु शान्तिदेवी दृढ़ रही। उसके पति और पिता भी उसे समझाने आये। जब वह उनके सामने भी अपने धर्म पर डटी रही और उसने अपने विरोधियोंका निर्भीकतासे मुक़ाबला करनेका साहस दिखलाया तब शान्तिदेवीके पिताने प्रसन्नतासे उसे हिन्दू धर्मके शरणमें रहनेकी आज्ञा दे दी।

परन्तु असग़रीका पति अबदुलहलीम अन्य मुसलमानोंके बहकावेमें आ गया और उसने आषाढ़ संवत् १९८३ में स्वामी श्रद्धानन्द, डा० सुखदेव और अन्य कार्यकर्त्ताओंपर अपनी पत्नी तथा पुत्रोंको भगानेके अपराधमें फौजदारी मुक़दमा चलाया। कई मास तक मुकदमा चलनेके बाद अबदुलहलीम यह मुकदमा हार गया और ४ दिसम्बर सन् १९२६ को स्वामीजी आदि सब अभियुक्तों

को विचारपतिने निर्दोष पाकर अभियोग-मुक्त कर दिया।

ईर्ष्यालु मुसलमानोंमें इससे बड़ा असन्तोष फैला। स्वामीजीको कई गुमनाम पत्र खून करनेकी धमकियोंसे भरे हुए पहुंचने लगे। उनके विरुद्ध हापुड़ मेरठ और देहलीके कई मुसलमानोंने कई पेमफलेट निकाली जिनमें स्वामीजीको मार डालनेकी धमकियां दी गयी थी। ख्वाजा हसन निज़ामीके अखबार "दरवेश" आदिमें भी इसी प्रकारके कई इशारे कई वार किये गये। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्दजी अपने धीर गम्भीर स्वभावके अनुसार इनकी सदा उपेक्षा करते रहे, उन्होंने इन पर कोई कार्रवाई करना तो दूर, ध्यान तक नहीं दिया। देहलीके उर्दू दैनिक 'तेज'ने जनवरी १९२७ के अन्तमें अपना जो 'शहीद नम्बर' प्रकाशित किया था उसके ६७ वें पृष्ठपर इस आशयके कुछेक लेख आदियोंकी ओर निर्देश किया गया था।

अन्तिम बिमारी।

यद्यपि इस समय स्वामीजीके शरीरमें अधिक लम्बे दौरे आदि कर सकनेकी शक्ति नहीं थी तथापि उनका उत्साह कम नहीं हुआ था। वह संवत् १९८३के पौष मासमें गौहाटी कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके बाद शुद्धि आदि कार्यके लिये एक लम्बा दौरा लगाना चाहते थे और उन्होंने इस दौरेका प्रोग्राम बनाकर बहुतसे स्थानों पर अपने आगमन और कार्यकी सूचना भी भेज दी थी, परन्तु उनकी यह इच्छा मनकी मन ही रह गयी। माघके आरंभमें वह गुरुकुल इन्द्रप्रस्थके मुख्याध्यापकके अनुरोध पर एक दिनके

लिये इन्द्रप्रस्थ गये थे। उस समय उनको जुकाम और खांसी पहिलेसे ही थे। रास्तेमें ठण्ढी हवा लगनेके कारण रोग और भी वढ़ गया। देहली पहुंचने पर डाक्टर सुखदेवजीसे शरीर-परीक्षा करवायी। स्वामीजीको डाक्टर सुखदेवजीकी चिकित्सा में पूरा विश्वास था। डा० सुखदेवजीने परीक्षा करके बतलाया कि निमोनिया हो गया है। अगले दिनसे डा० अन्सारीका इलाज शुरू हुआ। उनके इलाजसे शायद शीघ्र आराम हो जाता परन्तु बीचमें ही उनको चार दिनके लिये रामपुर चले जाना पड़ा। रामपुरसे वापिस आनेपर फिर उन्होंने ही स्वामी जीका इलाज किया और तीन दिन तक इलाजके बाद ही स्वामी जी रोग मुक्त हो गये। इससे आगे जो हुआ वह अपनी ओरसे लिखने की अपेक्षा स्वामीजीके पुत्र पं० इन्द्र विद्यावाचस्पतिके शब्दोंमें लिखना अधिक उचित होगा। पं० इन्द्र उस समय देहलीमें ही मौजूद थे। और उन्होंने जो लिखा है आँखों देखा लिखा है। पण्डितजी लिखते हैं:—

स्वामीजीकी अन्तर्दृष्टि—मृत्युका पूर्वाभास।

"बुखारके उतरनेके साथ साथ स्वामीजीमें एक अद्भुत परिवर्तन दिखाई देने लगा। जब तक अधिक रोगी थे, समझते थे कि रोग हट जायगा परन्तु अब निरोग होने लगे तब दिलकी अवस्था दूसरी होगई। स्वामीजोको भान हो रहा था कि अन्तिम समय निकट है। जिस रोज पहले पहल प्रातःकाल बुखार उतरा स्वामीजीने ब्राह्म मुहूर्त में अपने मन्त्रीको भेजकर मुझे, डा० देश-

बन्धु गुप्त, स्वामी रामानन्द और डा० सुखदेवको बुलवाया और कहा कि 'मैंने तुम लोगोंको वसीयत लिखनेके लिये बुलाया है, मैं चाहता हूं कि तुम लोगोंके सामने वसीयत लिख दूं।' हम लोगोंने आपसमें विचार किया। स्वामीजीकी दृष्टि भविष्यमें देख रही थी हम लोग केवल वर्तमानको देख रहे थे। हम लोगोंने सोचा कि इस समय वसीयत लिखानेका स्वामीजी पर यह असर पड़ेगा कि वह रोगको असाध्य समझने लगेंगे। स्वामीजीसे निवेदन किया कि 'महाराज, डाक्टरजी कहते हैं कि अब कोई डर नहीं है। आपकी तबीयत कुछ दिनोंमें अच्छी हो जायगी, उस समय आप जैसी आज्ञा करेंगे वैसा होता रहेगा। जल्दी क्या है।' स्वामीजीने उत्तर दिया "भाई, डाक्टरजी औषधिसे राजस बलको बढ़ा देंगे परन्तु अन्दरसे यह आवाज नहीं उठती कि मैं उठ खड़ा हूंगा। वसीयत लिख लो तो अच्छा है।"

"हम लोगोंने और कोई चारा न देख कर बात दोपहर पर टाल दी।"

"जब मैं दोपहरके समय दर्शनोंको गया तो स्वामीजीने मुझे पास बुलाकर बिठाया और जो थोड़ा सा रुपया बैंकमें पड़ा हुआ था, उसके बंटवारेके विषयमें निर्देश करके अन्तमें कहा, 'इस शरीरका कुछ ठिकाना नहीं, मैं शायद ही उठूं। तुम एक काम जरूर करना। मेरे कमरेमें आर्यसमाजके इतिहासकी सामग्री पड़ी है, इसे संभाल लेना और समय निकाल कर इतिहास जरूर लिख डालना। एक बात और कहता हूं, इतिहासके लिखनेमें मुझे 'स्पे-

यर' (माफ) न करना। मैंने बड़ी बड़ी भूलें की हैं। तुम्हें तो मालूम हैं कि मैं क्या करना चाहता था और किधर पड़ गया।'. इतना कहते कहते स्वामीजीका दिल भर आया और चुप हो गये। अधिक न बोल सके और आंखें बन्द कर लीं।

उन्हीं दिनों डा० सुखदेवजीने हंस कर कहा कि 'स्वामीजी, आपकी तबीयत अच्छी हो रही है, थोड़े दिनोंमें आप उठ खड़े होंगे। दो दिनमें आपको रोटी दे दूंगा और आप बैठने लगेंगे।"

"स्वामीजीने उत्तर दिया 'डाक्टरजी, आप लोग तो ऐसा ही कहते है, परन्तु मेरा शरीर तो अब सेवाके योग्य नहीं रहा। इस रोगी शरीरसे देशका कोई कल्याण न हो सकेगा। अब तो आत्मा में एक ही इच्छा है कि दूसरा जन्म लेकर नये शरीरसे इस जीवनके कार्यको पूरा करूं।

"शहादतसे दो दिन पूर्व व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु शर्मा जी स्वामीजीकी मिजाजपुर्सीको आये। स्वामीजीके लिये उठना कठिन था तो भी आधे उठ कर हाथ मिलाया और बात-चीत होने लगी। व्याख्यान-वाचस्पतिजीने मुस्कराकर कहा कि 'स्वामीजी, मुझसे मालवीयजी एक वर्ष बड़े हैं और उनसे आप एक वर्ष बड़े हैं। अभी हम लोगोंको बहुतसा काम करना है। आप इतनी जल्दी मोक्षकी तैयारी क्यों करने लगे थे? अब तो आप राजी हो जाओगे।"

"स्वामीजीने उत्तर दिया कि 'पण्डितजी, इस कलियुगमें मोक्षकी इच्छा नहीं रखता। मैं तो केवल इतना चाहता हूं

कि चोला बदल दूसरा शरीर धारण करूं। अब इस शरीर-से सेवा नहीं हो सकेगी। इच्छा है कि फिर इसी भारत-वर्षमें उत्पन्न होकर देशकी सेवा करूं।"

"देहान्तसे पहिली शामको स्वामीजीके पुत्र-सम लाला देश-बन्धु गुप्त दर्शनोंको आये। उस समय स्वामीजीकी धर्मपुत्री शांतिदेवी भी वहीं थी। देशबन्धुजीने पूछा कि 'डाक्टर लोग कहते हैं कि आपकी तबीयत अच्छी हो रही है, क्या आपको भी ऐसा अनुभव होता है?' स्वामीजीने उत्तर दिया कि 'डाक्टर लोग चाहे कुछ कहें, पर मुझे तो आत्माका यही शब्द सुनाई देता है कि अब यह शरीर कामका नहीं रहा मैं इस समय जानेके लिये बिलकुल तैयार हूं।"

"२६ दिसम्बरको दोपहरको, गोली लगने से कुछ घन्टे पूर्व स्वामी चिदानन्दजी राजा सर रामपालसिंहका एक तार लेकर आये, जिसमें स्वामीजीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें पूछा था। स्वामी चिदानन्दजीने प्रश्न किया कि मैं क्या उत्तर दूं। स्वामी-जीने उत्तर लिखा दिया। उत्तरकी अन्तिम पंक्तियां इस आशय की थीं कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण करके शुद्धिके अधूरे कामको पूरा करूं।"

"इस प्रकार स्वामीजी चार पांच दिन तक अनुभव करते रहे कि उनका अन्त समय समीप है। हम लोगोंकी छोटी दृष्टियां वहां न पहुंच सकीं, जहां तपस्वीकी अन्तर्दृष्टि पहुंच सकी थी। उन्हें बुलावा आ रहा था। वह उस समयके लिये तैयार थे। हम लोग अपनी छोटी बुद्धियोंसे यही सोचा करते थे कि स्वा-मीजी इतने आशावादी होते हुए भी इस समय निराशाकी बातें क्यों कर रहे हैं!"

पौष कृष्ण चतुर्थी—बलिदानका दिन।

"मैं दोपहरके समय प्रति दिन स्वामीजीके दर्शनोंको जाया करता था। उस दिन जब डेढ़ बजेके लगभग ऊपर गया तो स्वामीजी सो रहे थे। चारपाईके पास ही दरी पर धर्मसिंह सो रहा था, और रातको सेवासे थका स्नातक धर्मपाल पासके कमरे में सोया पड़ा था। घरमें सब सोये पड़े थे। यह देख कर मैं आश्चर्यान्वितसा हुआ, परन्तु यह समझ कर कि किसी को नींदसे उठाना अच्छा नहीं, नीचे उतर गया, और एक लड़केको जो स्वामीजीके पासके कमरेमें रहता था और ईसाईसे आर्यसमाजी बना था, ऊपर भेज दिया कि स्थान अरक्षित न रहे। दिलमें यही सोचा कि फिर शामको आकर दर्शन करूंगा।"

"लगभग ढाई बजे डा० सुखदेवजीके अतिरिक्त कन्या गुरुकुलकी आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ, स्वामीजीजीके अनन्य भक्त लाला जमनादास तथा कई अन्य महानुभाव दर्शनोंको आ बैठे, और लगभग पौने चार बजे तक बैठे रहे। वह स्वामीजीके निवृत्त होनेका समय था। स्वामीजीने सब लोगोंसे कहा कि 'आप लोग अब जाइये और केवल सेवक धर्मसिंह रह जाय।' सब लोग इशारा समझ गये और उठकर नीचे चले गये। धर्मसिंहने आकर चारपाईके पास कमोड रख दी। स्वामीजी शौच गये और हाथ मुंह धो शुद्ध और सावधान होकर मसनदके सहारे; मानो बलिदानका अमृत पीनेके लिये तैयार होकर बैठ गए।"

"धर्मसिंह कमोडको उठाकर पासकी कोठरीमें रख आया और हाथ धोनेके लिए बाहिर गया। इतनेमें सीढ़ियोंपर एक मुसलमान दिखाई दिया। स्वामीजीके पास डाक्टरने आना जाना बन्द कर दिया था। सेवकने जाकर रोक दिया। वह कहने लगा कि स्वामीजीके दर्शन करूंगा। नौकर रोकता रहा पर

शव-यात्राका दृश्य।

अन्त्येष्टि संस्कार ।

स्वामीजीने आवाज सुन ली और सेवकसे कहा 'कौन है, अन्दर आने दो।' सेवकने मुसलमानको अन्दर बुला लिया। अन्दर आकर उसने स्वामीजीसे कहा कि 'स्वामीजी मैं आपसे इस्लाम के मुतल्लिक कुछ गुफ्तगू करना चाहता हूं।' स्वामीजीने कहा, कि 'भाई मैं बीमार हूं। तुम्हारी दुआसे राजी हो जाऊंगा तो बातचीत करूंगा।' इसपर उसने पानी मांगा। स्वामीजीने सेवकसे कहा 'पानी पिला दो'। इसपर धर्मसिंह उस मुसलमानके साथ बाहिर चला गया और पानी पिलाया। पानी पी कर वह मुसलमान फिर कमरेके अन्दर आगया। उसके पीछे स्वामीजीका सेवक भी आया।"

उस मुसलमानने अन्दर आते ही पिस्तौल निकाल कर स्वामीजी पर फायर किया। स्वामीजी मसनदके सहारे बैठे हुए थे। पहिले गोली स्वामीजीकी छातीमें लगी, प्रतीत होता है कि वह फेफड़ेमें जाकर लगी, क्योंकि उसी दम स्वामीजीकी आंखें बन्द हो गई। हत्यारेने दूसरी गोली फिर छोड़ी। दोनो गोलियां आंख झपकनेमें चल गईं। इतनेमें धर्मसिंह सेवकने लपककर पीछेसे हत्यारेको पकड़ लिया। हत्यारेने फिर स्वामीजीपर तीसरा फायर किया। यह देख धर्मसिंहने जानकी ममता छोड़ आगेसे आ कर कातिलके हाथसे पिस्तौल छीननेकी चेष्टा की, छीना झपटीमें हत्यारेने एक फायर धर्मसिंहपर भी किया। गोली उस की रानमें लगी। वह बेचारा गोली खाकर लड़खड़ा गया और कातिल भाग निकलता कि उस समय स्वामीजीके प्राइवेट सेक्रेटरी स्नातक धर्मपालने झपटकर हत्यारेके दोनों हाथ पकड़ लिये और अड़ंगा डालकर उसे गिरा दिया। धर्मपालजीने बड़ी हिम्मतका काम किया कि रिवाल्वरके साथ उस हत्यारेको लगभग आधा घन्टा तक दबाये रक्खा।

"बेचारा धर्मसिंह उसी घायल अवस्थामें लुड़कता पुड़कता

बाहिर गया, और चारों ओर आवाजें दीं। इसपर स्वामी चिदानन्दजी भागे हुए आए, थोड़ी देरमें मास्टर रमनजी, डा० सुखदेवजी, प्रो० इन्द्र, लाला बलराम, तथा अन्य बहुतसे लोग पहुंच गये। खबर शहर भरमें हवाकी तरह फैल गई। स्वामीजीके कमरेके सामने हजारों भीड़ इकट्ठी हो गई। थोड़ी देरमें डा० अन्सारी तथा डा० अबदुर्रहमान आ गये। उनसे पूर्व ही डा० चिमनलाल किकानी भी आकर स्वामीजीकी परीक्षा कर चुके थे। डा० अन्सारीने खूब अच्छी तरह परीक्षा करके सूचना दे दी कि स्वामीजीका शरीर ठंडा हो चुका है।

"४ बजे गोली चली थी। लगभग ४॥ बजेके सब इन्स्पेक्टर सरदार चेतसिंह कुछ सिपाहियोंके साथ मौके पर पहुंचे। उन्होंने पहिला काम यह किया कि अपना रिवाल्वर मुलिजमके सामने तानकर पिस्तौल बरामद की और धर्मपालजीसे उसे छुड़वाकर सिपाहियोंके सुपुर्द किया। थोड़ी देरमें सीनियर सुपरिण्टेंडेंट पुलिस मि० आई० मार्गन, तथा शेख नजरूल हक भी आ पहुंचे और पुलिसकी तहकीकात शुरू होगई।

"इस तरह तपस्वी स्वामी श्रद्धानन्दजीने धर्मपर अपना शरीर बलि चढ़ाया। वह जैसा अन्त चाहते थे, परमात्माने वह उन्हें दे दिया। भाग्योंका चक्र यह है कि एक मुसलमानने उन्हें मौतके मुंहसे बचाया और दूसरेने तमंचेके घाट उतार दिया। परमात्माकी अद्भुत लीला ऐसे ही रूपोंमें अपने आपको प्रगट करती है। डा० अन्सारी और अब्दुलरशीद मनुष्य जातिके रोशन और स्याह पहलुओंके नमूने हैं। आर्य संसार दोनों नमूनोंसे उपदेश ग्रहण किया करेगा।"